समसामयिक हिन्दी-साहित्य

उपलब्धियाँ

प्रधान सम्पादक

श्री मन्मथनाथ गुप्त

सम्पादक

डॉ० सुषमा प्रियदर्शिनी   श्री रमेशचन्द्र गुप्त



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

समसामयिक हिन्दी-साहित्य
उपलब्धियाँ

प्रधान सम्पादक
श्री मन्मथनाथ गुप्त

सम्पादक
डॉ० सुषमा प्रियदर्शिनी   श्री रमेशचन्द्र गुप्त



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण
जुलाई १९६७

मूल्य रु० १ ५०

प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
'चन्द्रलोक' जवाहर नगर, दिल्ली ७
बिक्री-केन्द्र नई सड़क, दिल्ली ६

मुद्रक भारत मुद्रणालय दिल्ली ३२

सम्पादकीय

साहित्य में मतमतान्तरों का अन्त नहीं है। इसमें निर्भ्रान्त होने वालों को यह तसल्ली भी जाती है कि यह साहित्य की उर्वरता सूचित करता है। प्रत्येक मतवाद की आँखों में छिपी या प्रकट एक कसौटी है जिसके कम्प्यूटर पर साहित्य को कसा जाता है और हम यह बताना है कि इसमें इतना सोना है और इतना खोट। अजीब बात यह है कि एक जिसे सोना कहता है वह बार दूसरा उसे खोट बतलाता है। एक उदाहरण लिया जाए तो टाल्सटाय जैसे महाप्रतिभाशाली कलाकार शेक्सपियर को कभी पचा न सके। इस प्रकार श्रेष्ठ साहित्य का निरूपण टेढ़ी खीर है।

फिर भी परम्परा से एक सर्वमान्य कसौटी है जिस पर कोई उंगली नहीं उठाता और न उसके कोई दोष ही गिनता है। वह है महाकाल वाली कसौटी। कहा जाता है कि समय बड़ा क्रूर है और वह दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है और हर साहित्य का उसका उपयुक्त स्थान प्रदर्शित कर देता है। हम इस सर्वमान्य कसौटी से अपनी आलोचना का सूत्रपात करेंगे। क्या यह सच है कि जो साहित्य हजार दो हजार वर्ष से चालू है और अभी तक नहीं मरा वही सबसे ऊँचा साहित्य है। जैसा कि मैंने बतलाया इस कसौटी की तरफ किसी ने आँख उठा कर नहीं देखा इसलिए हमारी आलोचना का सूत्रपात यहीं से होना चाहिए। क्या वेद, महाभारत, रामायण, दूसरे देशों में जायें तो बाइबिल, कुरान आदि सबसे श्रेष्ठ साहित्य हैं? क्या इन साहित्यों के दीर्घजीवी होने में साहित्येतर तत्त्व ही प्रधान नहीं हैं? इलियट ने कहा है— मेरे मतानुसार शुद्ध कलात्मक मूल्यांकन, यदि वह एक मरीचिकामात्र नहीं है तो कम से कम आदर्श है। ऐसा होना तब तक लाजिमी भी है जब तक कला का मूल्यांकन सामयिक और अल्पकालस्थायी स्थान और काल में मौजूद मनुष्यों का उपक्रम है। कलाकार और उसकी कला के उपभोक्ता भी सीमित हैं। हर युग और हर कलाकार के लिए एक प्रकार का स्तर जरूरी है ताकि वह कला के [illegible] सामयिक हो सके। मजे की बात है कि हर युग दूसरे युग के [illegible]

अपना ही स्वाद पसन्द करती है।

इस प्रकार शुद्ध कसौटी तो उसी प्रकार से एक काल्पनिक वस्तु है जैसे शुद्ध जाति। हम लोग वेदादिकों को श्रेष्ठ साहित्य मानते आये हैं। उनमें साहित्येतर स्वाद कहाँ तक है इसकी थाह लगाने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि उन पर महाकाल का लेबल चिपका था। वेद उस समय का साहित्य है जब लिपि का विकास नहीं हुआ था। इसलिए वे श्रुति के रूप में मौजूद थे। कुरान को जिन्होंने हिफ्ज़ कर लिया है ऐसे लोग हाफिज़ कहलाते हैं। इसी प्रकार बहुत-से लोग मिलेंगे जो महाभारत, रामायण, बाइबिल आदि के बहुत बड़े अंश स्मृति से उद्धृत कर सकते हैं। इसके साथ यह तथ्य मिलाइए कि बाइबिल की अंग्रेजी श्रेष्ठ और अनुकरणीय मानी जाती है। अभी अभी हाल में बाइबिल का एक नया अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। कहा जाता है कि वह पहले से अच्छा अनुवाद है। पर वह कब इस रूप में मान्य होगा इसमें बड़ा सन्देह है। मैंने कुरान के विशेषज्ञों से बात की तो उन्होंने कहा कि कुरान अरबी साहित्य का सबसे सुन्दर नमूना है। महाभारत, रामायण आदि का नाम मैं इस प्रसंग में इसलिए नहीं लेना चाहता कि इनको साहित्य के रूप में श्रेष्ठ कहने वाले तो घर घर में मौजूद हैं और भारत में इस सम्बन्ध में किसी को सन्देह का अवकाश नहीं है।

पर इन सारी बातों पर जब हम धैर्य के साथ विचार करते हैं तो स्वतः एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या बात है कि हर जाति में धार्मिक पुस्तकें ही मुख्यतः साहित्यिक दृष्टि से सबसे ऊँची कृतियाँ मानी गईं। हम यह नहीं कहते कि धार्मिक लोगों ने इस सम्बन्ध में कोई षड्यन्त्र किया जिससे उनके दायरे में आने वाली कृतियाँ ही सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ मानी गईं। पर किसी पर किसी प्रकार की बेईमानी का आरोप बिना किये यह कहा जा सकता है कि इन कृतियों ने ही अपने अपने दायरे में साहित्यिक मानक स्थापित किया। यह उसी प्रकार की बात है कि अपनी माँ या दादी की बनाई तरकारियाँ या पकवान सबसे अच्छी लगती हैं और बुद्धिमान पत्नी यदि वह पति को रिझाना चाहे तो अपनी सास से यह सीख लेती है कि पति को द्रवित करने के कौन-से नुस्खे हैं।

समय की दृष्टि से ये धार्मिक पुस्तकें बहुत प्राचीन होने के कारण उनको माँ के पकाये हुए व्यंजनों की तरह यह सुविधा थी कि वे व्यक्ति के लिए मानक बन जाएँ। यदि महाभारत, रामायण, बाइबिल, कुरान को लोग सैकड़ों वर्षों से पढ़ते आ रहे हैं इसलिए साहित्यिक रुचिबोध एवं विचार शैली इनसे प्रभावित हुआ — इसमें कोई सन्देह नहीं। इसको एक दूसरे रूप में भी कहा जा सकता है कि बच्चा लोरियों के रूप में जो भाषा सीखता है, वह एक तरह से उनके लिए

भाषा-सौष्ठव का एक मानक बन जाती है। इसलिए विशषज्ञ यह कहते हैं कि किसी भाषा में निष्णात होना हो तो उस लोरियों से शुरू करके सीखो न कि आठवीं श्रेणी से। अस्तु।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाल की कसौटी अन्ततोगत्वा शायद उतनी शुद्ध कसौटी नहीं है जितनी कि हम अब तक मानते आये हैं और इस स्वतःसिद्ध करके मान ली हुई स्थापना की सत्यता में सन्देह की गुंजाइश है। दीर्घजीवी होना अपने में एक बड़ा गुण है पर केवल दीर्घजीवी होने के कारण न तो साहित्य कोई ऊंचा साहित्य हो जाता है और न कोई दीर्घजीवी व्यक्ति महापुरुष हो जाता है। इस सम्बन्ध में व्यक्ति का प्रसंग उठाने पर साहित्य के मानक के सम्बन्ध में भी अच्छी रोशनी पड़ सकती है। धर्म के कारण राम, कृष्ण आदि पौराणिक व्यक्तित्व तथा बुद्ध, महावीर, मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि ऐतिहासिक व्यक्तित्व अभी तक हमारे सामने मौजूद हैं और हम उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हैं जब कि समय की दृष्टि से हमारे अधिक निकट पचीसियों को हम कम जानते हैं। कल्पना कीजिए कि भारत से किसी कारण से हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्म लुप्त हो गए होते, तो क्या उस हालत में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर से हम उसी प्रकार परिचित होते जैसे आज हैं और उसी प्रकार प्रभावित होते जैसा कि स्पष्ट है हम प्रभावित हैं। मुझे तो डर है कि बहुत थोड़े लोगों को ही पता होता कि ऐसे लोग भी हुए थे। चार्वाक जैसे महान और मौलिक चिन्तक को हमारे शास्त्रीय चिन्तक निगल गए, हां, उनकी डकारों से (जो सैकड़ों वर्ष तक जारी रही) यह पता चलता रहा कि ऐसा भी कोई महापुरुष जन्मा था।

अपने देश के सम्बन्ध में लोगों को पूर्वाग्रह होने के कारण बात समझ में कम आयेगी इसलिए हम इस प्रश्न को लेकर अरब प्रायद्वीप में उड़ जाते हैं। मान लीजिए वहां जो तीन बड़े-बड़े धर्म पैदा हुए यानी यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम संसार से एकदम लुप्त हो जाते तो क्या मूसा, ईसा और मुहम्मद का नाम उसी प्रकार से उजागर रहता जैसा कि आज है? क्या यह सच नहीं है कि इस प्रकार के जितने भी धार्मिक नेता या महापुरुष हुए हैं उन सभी की ख्याति इस कारण है कि उनका मतवाद (शिष्यों द्वारा कई बार अत्यन्त इतरीकृत) अपने इर्द गिर्द लाखों-करोड़ों लोगों को राह (परम्परा के अनुसार पूरा गुमराह) दिखा सका।

मैं भारत से अधिक उदाहरण नहीं सूझा, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा जब अपने पूर्वाग्रह पर चोट पड़ती है तो सरल बात भी समझ में नहीं आती। इसलिए मैं पूछूंगा कि क्या मूसा, ईसा, मुहम्मद इत्यादि के शिष्यों में ही या उनकी

निन्द्य मण्डलियों में शामिल कर दिए गए उस लोग धन्य नहीं था जिनसे इतनी जि गया। के कारण पूजा होती है व गुण उनसे ज्यादा नहीं तो उनके समान थे ? पर उन लोगों को और उनकी पुस्तकों को वह ख्याति और वह ऐतिहासिक महत्त्व क्यों नहीं प्राप्त हुआ ? बस इसका एक ही कारण है वह यह कि ये महात्मा अपने ढंग के इतने कट्टर गिरोहबन्दी नहीं कर सके या उसका प्रयत्न करना नहीं चाहा। इस प्रकार महाकाव्य वाली कसौटी के साथ यही बात मिली कि गुट या गिरोह सफलतापूर्वक बनाना ही सफलता प्राप्त करना है, नहीं तो मूसा ईसा मुहम्मद से बड़े या उनके तुल्य कई महापुरुष हो गए पर उनके नाम पर न कोई सवाल उठता है और न कहता है कि यह अमुक शरणं गच्छामि।

किसी भी हालत में ऊपर हमने जो आलोचना की उससे यह स्पष्ट हो गया कि महाकाव्य की कसौटी कोई उतनी निरपेक्षित और शुद्ध मानक नहीं है जिससे हम साहित्य को नाप जोख और जांच कर सकें। सैकड़ों ग्रन्थ सैकड़ों वर्ष से जीवित हैं। उनका अध्ययन भी होता है पर इस कारण वे ग्रन्थ श्रेष्ठ साहित्य में सम्मिलित नहीं माने जा सकते। मैं ऐसा उदाहरण इसलिए नहीं देना चाहता कि विज्ञ पाठक स्वयं इन उदाहरणों को प्रस्तुत कर सकते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि महाकाव्य कोई सम्पूर्ण विश्वास-योग्य कसौटी नहीं है तो आखिर साहित्य की कसौटी क्या है? इस प्रसंग में निकोलसन? पाइकराफ्ट ने कविता के सम्बन्ध में जो बात कही है उससे सारे साहित्य के सम्बन्ध में स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। वह कहता है कि हर युग की कविता अगले युग को सन्तुष्ट नहीं करती बल्कि हर नई पुस्त (पुरानी कविता की उपेक्षा करती हुई भी) ऐसी कविताओं की मांग करती है जो अधिक विचित्र और विशिष्ट रूप से उस युग की भावना समस्याओं तथा आशा आदि को अभिव्यक्त करें।

इसी को अनियन्त्रित न मानो दूसरे शब्द में कहा है कोई भी पुस्तक सदा से इसी प्रकार की जिज्ञासा लेकर पढ़ी जाय कि और पुस्तक रचता है। पर पुस्तक हर व्यक्ति की तरह कला के कुछ रूप के साथ अपनी विभाजन प्रस्तुत करता है कला में अपना भाग पूरा करती है और कला का उपयोग भी उसकी शक्ति में सफल बनाता है।

इस प्रकार कला में यह भाषा है जिसे पुस्तक अलग-अलग वस्तु की मांग करता है। साहित्य के पारखियों ने जो ऐतिहासिक एवं कलाकार के सम्बन्ध में यह कहा है कि हर युग अपनी रचनाओं को अलग-अलग आदर्श में सराहता रहा है इसी सम्भावना के कारण ऐतिहासिक महत्त्व है। इससे यह कसौटी निकलती

गई है कि महान साहित्य वह है जिसको अलग अलग युग अलग अलग कारणों से सराहें। यदि हम इस कसौटी को लेकर महाभारत और रामायण पर लौट जायें तो ऐसा लगता है कि यह कसौटी उनके धर्मेतर अंश पर लागू होती है। महाभारत रामायण और इसी प्रकार ग्रीक पुराणों में बहुत से अंश ऐसे हैं जिनका धर्म से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है बल्कि यह कहा जा सकता है कि धार्मिक नेताओं ने उन अंशों का उपयोग अपने मत के प्रतिपादन और प्रचार में एक हद तक जबरदस्ती किया है जैसा कि पुरोहित रूप, रस गंध धूप दीप, नैवेद्य, सुन्दर भवन आदि के द्वारा धार्मिक विचारों को पुष्ट करता है। ट्राटस्की ने दिखलाया है कि धार्मिक प्रचार में इन अवान्तर वस्तुओं का क्या स्थान है। इस प्रकार एक कसौटी यह तो निकल ही सकती है कि हम इस रूप में उन पुस्तकों को लें कि उन धर्मों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं या यह हिसाब लगायें कि जिस युग में ये धर्म न होंगे उस युग में इन पुस्तकों की क्या हैसियत होगी। प्रत्येक धर्म के साथ संसार को देखने का एक तरीका वेल्टानशाउंग एक विश्व दृष्टि बंधी हुई है। इस विश्व दृष्टि के दायरे से निकल कर विचार करें, जैसे कि आर्किमिडीज़ गुरुत्वाकर्षण के दायरे से निकल कर पैर रखने का एक स्थान चाहते थे, तभी हम महाकाल का आशीर्वाद प्राप्त साहित्य कहां तक सोना है और कहां तक खोट, यह जान सकते हैं।

फिर एक दूसरी बात लीजिए। महाभारत रामायण आदि साहित्य के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि वह धार्मिक विश्व दृष्टि का प्रतिपादन करता है पर विश्लेषण करने पर उन ग्रंथों में बहुत से अंश ऐसे मिलेंगे जो उस विश्व दृष्टि से बिलकुल अलग जाते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने महाभारत के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए कुछ वाक्य लिखे थे जो इस सम्बन्ध में बहुत प्रासंगिक हैं। उन्होंने लिखा—'इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न युगों में महाभारत विभिन्न लोगों के हाथों में पड़ा। उस पर अवान्तर आघातों का अन्त नहीं था उसकी बनावट असाधारण रूप से मजबूत थी इसलिए वह टिक गया। स्पष्ट है कि भीष्म का चरित्र धर्म-नीति प्रवण है—यथास्थान आभास में और इंगित में कुछ इस तरह आलोचना में विरुद्ध चरित्र और स्थिति के साथ द्वन्द्व में यह परिचय मिलने पर भीष्म का व्यक्ति रूप इससे उज्ज्वल होकर उभरना चाहिए। काव्य पढ़ते समय हम यही चाहते हैं। पर देखा जाता है कि किसी एक काल में हमारे देश में चरित्र की नीति के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह विशेष कारणों से अत्यन्त प्रबल था। इसलिए पाठक को आपत्ति का मौका दिये बिना कुरुक्षेत्र के इतिहास में शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म के साथ एक लम्बा-सा पर बाँधकर उस नीतिकथा में प्लावित

दूर किया जाता है। नतीजा यह है कि भीष्म का चरित्र अनेक महापुरुषों की भीड़ के नीचे दब जाता है। भगवद् गीता आज भी पुरानी नहीं हुई, शायद कभी पुरानी न पड़े। पर कुरुक्षेत्र के युद्ध का अवसर पर सारी गीता की आवृत्ति करना साहित्य के आदर्श के अनुसार निम्नदर्जे का अपराध है। श्रीकृष्ण के चरित्र को गीता की भावना से प्रभावित करने की साहित्यिक प्रणाली हो सकती है, पर महाभारत के प्रसंग में उसका व्यतिक्रम किया गया है तथा कहा जाए तो उसमें गीता की ज्योति नहीं होती। अयोध्या काण्ड तक रामायण में राम का जो रूप दर्शन को मिलता है उसमें उनका चरित्र प्रकाशित है। उसमें अच्छी निष्ठा भी है, बुरी निष्ठा भी है, आत्मखण्डन भी है। कमजोरियाँ भी यथार्थ हैं। यद्यपि राम प्रधान नायक हैं फिर भी श्रेष्ठता के किसी खास प्रचलित कठोर नियम में उन्हें अस्वाभाविक रूप से जकड़ कर दिखाया नहीं गया, अर्थात् किसी एक शास्त्रीय मत का प्रतिपादन कराने के काम में उन्हें पात्र का [illegible] के सामने खड़ा कर [illegible] के रूप में खड़ा नहीं किया गया। पिता के सत्य की रक्षा करने के उत्साह में पिता की प्राणहानि किसी हद तक शास्त्रीय बुद्धि की दृष्टि से ठीक हो सकती है पर बाली का वध न तो शास्त्रीय है न धार्मिक। इसके बाद रामचन्द्र ने [illegible] सन्देह में सीता के सम्बन्ध में लक्ष्मण पर जिन कठोरोक्तियों का प्रयोग किया है उसमें भी श्रेष्ठता का आदर्श अक्षुण्ण नहीं रहा। रामायण के कवि ने किसी एक मत से गढ़ित बढ़ान के साँचे में राम के चरित्र का निर्माण नहीं किया, बल्कि जो चित्र निर्मित हुआ है वह स्वभाव का है, साहित्य का है, कहानी का है। पर उत्तरकाण्ड विनय युग की इलबरदारी बहुत आया।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि स्वयं रामकथा रवीन्द्र के अनुसार भी रामायण और महाभारत में धर्म साहित्य पर शासन का कुप्रभाव करता है। यदि इतना मान लिया जाए कि आज जो बहुत-सा नया साहित्य के नाम से खोजबीन का प्रश्न उठाकर समझते हैं कि वे उन्नत [illegible] आकर प्रश्न उठा साधना का वध कर रहे हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि धर्म ने शासन कर तो साहित्य, संगीत और कला का बहिष्कार किया। सारा साहित्य धार्मिक था। सारी कलाएँ धार्मिक थीं। फिर भी यह कोई नहीं कह सकता कि उसमें श्रेष्ठ उच्च साहित्य या ऊँची कला का सृजन नहीं हुआ। धार्मिक संस्कार के बावजूद व्यास वाल्मीकि सरीखे प्रतिभाशाली उत्पन्न हुए। मन्दिरों की भित्तियों पर [illegible] नाम [illegible] समाचार अपना जीवन लिखा है। इसमें से कुछ ऐसा है, जिसे धर्म स्वयं भी [illegible] और कला की हत्या नहीं कर पाता। इसी रूप में हम यह कहते हैं कि यदि धर्म

किसी कारण से लुप्त हो जाए, जैसा कि संसार के सारे से अधिक हिस्से में हो चुका है, तो भी धार्मिक साहित्य का एक अंश जीवित रहेगा क्योंकि वह कई बार एक बड़ी हद तक साहित्य भी बना है और जिस हद तक वह साहित्य है वह जीवित रहेगा।

चलते हुए एक दूसरे विषय को भी छू दिया जाए जिसे रवीन्द्र ने छुआ है। वह यह कि केवल हमारे देश के पुराणों में ही नहीं सभी देशों के पुराणों में व्यक्ति को उसके समग्र रूप में, काले उजले रूप में, पेश किया जाता है, न कि केवल जैसा कि रवीन्द्रनाथ ने कहा, धार्मिक उपपत्तियों के कटघरे में खड़े एक गवाह के रूप में। दुःख है कि आधुनिक हिन्दी में जो भी जीवनियाँ लिखी जाती हैं उनमें व्यक्ति के काले उजले रूपों को दिखलाने की परिपाटी नहीं है। उनके असली जीवन के आलोक में परखने की चेष्टा नहीं की जाती बस होनहार बिरवान के होत चीकने पात वाक्य शुरू किया जाता है और एक आदर्श का मूर्त रूप प्रस्तुत किया जाता है।

ऊपर जो कुछ हमने कहा उससे युगों से चले आए हुए साहित्य को फिर से परखने और उसकी थाह लेने का मुकदमा स्पष्ट हो गया। प्राचीन साहित्य में भी कई तत्व ऐसे हैं जो आधुनिक हैं और उनसे आधुनिक युग भी अनुप्रेरणा ले सकता है जैसा कि मैंने जीवनी रचना के क्षेत्र में इंगित किया। धर्म ने साहित्य को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करना चाहा और किया पर वह उसे सम्पूर्ण रूप से पचा सका ऐसा नहीं कहा जा सकता। महाभारत और रामायण में ऐसी अनन्त सी कथाएँ और चरित्र हैं जिन्हें पचाने के लिए बहुत तरह की अन्य कथाएँ गढ़नी पड़ी हैं। इसका प्रत्येक पाठक पर इतना बाहुल्य है कि हम इसके ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं। इसीलिए ऐसा लगता है कि महाभारत, रामायण तथा ग्रीक पुराणों पर आधारित होमर, वर्जिल आदि के महाकाव्य आदि मानव जाति के अत्यन्त प्राचीन साहित्य उस समय भी जीवित रहेंगे जब धर्म नहीं रहेगा। इसका कारण यह है कि महाभारत और रामायण एक तरफ जहाँ धार्मिक हैं वहाँ वे अधार्मिक भी हैं जैसे द्रौपदी के ५ पति, कुन्ती के ७ पति इत्यादि। ग्रीक पुराण इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। अब ग्रीस में वह प्राचीन धर्म प्रचलित नहीं है जिसमें ओलिम्पिया के देवताओं की पूजा होती थी फिर भी ग्रीक पुराण की कहानियाँ न केवल ग्रीक जाति की सम्पत्ति है बल्कि सारे संसार की सम्पत्ति है और वे तब तक पढ़ी जायेंगी जब तक मनुष्य जाति मौजूद है। स्कैण्डिनेविया के पुराण के सम्बन्ध में भी यह बात कही जा सकती है। इसके विपरीत तालमुद, बाइबिल और कुरान के बहुत थोड़े अंश के

सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है। इन धर्मों ने अपने धर्म ग्रन्थों को धर्मेतर सामग्रियों के आक्रमण से यथासाध्य सुरक्षित रखा। नतीजा यह है कि जब तक ये धर्म हैं तभी तक ये ग्रन्थ संग्रहालयों के बाहर दिखाई पड़ेंगे।

साहित्य के विषय में किस प्रकार से हम साहित्येतर कारणों से प्रभावित होते हैं यह हम कुछ हद तक पहले स्पष्ट बता चुके हैं और यह दिखा चुके हैं कि बहुत सा साहित्य साहित्येतर कारण से महाकाल का आशीर्वाद प्राप्त कर सका। अब हम मूल्यांकन सम्बन्धी एक दूसरी विडम्बना के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। कबीर नानक चैतन्य आदि बहुत बड़े चिन्तक माने जाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि बुद्ध के बाद इन लोगों ने एक नई वाणी दी। पर क्या इनके साहित्य का सही और अन्तिम मूल्यांकन हो चुका है? एक बात तो यह है कि इन लोगों के साथ एक एक सम्प्रदाय भी जुड़ गया है इसके सम्बन्ध में जो कुछ कहना है उसे हम पहले ही कह चुके और उसी कारण उनके साहित्य या वाणी को जिस प्रकार अन्य उसी प्रकार के लोगों की वाणियों के मुकाबले में अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई इसका सूत्र भी हम पहले ही बता चुके हैं। यहां एक दूसरी दृष्टि से इनके पुनर्मूल्यांकन की बात पर विचार करेंगे। इन तीनों महापुरुषों की विशेषता यह थी कि उन्होंने विदेशी आक्रमण को मानकर यह आवाज उठाई कि धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में इन विदेशी आक्रान्ताओं के विचारों के साथ इस आधार पर समझौता किया जाय कि तू भी भला और मैं भी भला। कबीर ने इसके साथ इतना और जोड़ दिया कि तू भी बुरा और मैं भी बुरा। उन्होंने कंकर पत्थर जोड़ कर मस्जिद बनाकर उस पर बांग देने वाले मुल्ला की यदि इस कारण निन्दा की कि खुदा पर बहरे होने का आरोप लगता है तो दूसरी तरफ उन्होंने हिन्दुओं को भी यह चुनौती दी कि यदि पत्थर पूजने से भगवान प्राप्त होते हैं तो मैं पहाड़ पूजूंगा। तर्क बहुत सरल और सीधा चोट करने वाला था। कुछ भी हो कबीर ने भी किसी आक्रमण का राजनैतिक विरोध नहीं किया। कल के वे विदेशी आक्रान्ता आज को भारतीय बन गये और हम उन्हें पचाना चाहते हैं (यद्यपि पचाने की प्रक्रिया में शरीर का एक विराट अंश शरीर से कटकर पाकिस्तान का निर्माण हो गया)। इसलिए हम ऐसे सभी सन्तों चिन्तकों और राजनीतिज्ञों का स्वागत करते हैं जो हमारे वर्तमान आदर्श को बल पहुंचाते हैं। इसलिए हमें लगता है कि कबीर नानक चैतन्य आदि का अन्तिम मूल्यांकन अभी होना है। यह स्मरणीय है कि उस समय मुसलमान विदेशी थे और हम उनको उसी रूप में देख रहे हैं। जिसने विदेशी धर्म के साथ अपने धर्म के लिए समझौते या सह अस्तित्व का नारा दिया उसने असल में क्या किया यह हम तभी समझ सकते

हैं जब हम इनको सभी दृष्टियों से तोलें।

स्पेन में इस्लाम जोरावर होकर गया और उसे वहाँ से मार खाकर लौटना पड़ा। मान लीजिए वहाँ ऐसे कुछ सन्त कवि होते जिन्होंने अपनी कृतियों में इस्लाम की व्याख्या और हिन्दी आशाओं-आकांक्षाओं को एक पराये पर रखा होता और लोगों के मनोमन्दिर का वर्णन उठाया होता तो स्पेन से इस्लाम के निष्कासित होने के बाद उन कवियों, सन्तों और चिन्तकों को क्या समझा जाता? इधर हाल के इतिहास से एक उदाहरण लें। मान लीजिए हिटलर का विश्वविजय वाला स्वप्न पूरा होता तो फ्रांस में जर्मनी की अधीनता मानकर फ्रेंच गणतन्त्र और ऐतिहासिक भावना से रहित मार्शल पेताँ क्या समझे जाते? क्या उनके सम्बन्ध में हम वह विचार रखते जो आज रखते हैं यानी क्या हम उन्हें गद्दार-देशद्रोही समझते? यदि हिटलर की विजय हो जाती तो मार्शल पेताँ एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ मान लिये जाते जैसा कि वह अवश्य मान जाते। इसी अनुपात से द गाल आदि गुप्त रूप से जर्मनों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध करने वाले लोगों के मूल्य में अन्तर आ जाता। अधिक से अधिक द गाल ऐसे लोग अव्यावहारिक आदर्शवादी या स्वप्नद्रष्टा अराजकतावादी मान जाते। यह अनन्य ही ढंग से मगन इसमें ही बड़ी बात है कि उनका ठीक मूल्यांकन न हो पाता।

इसी प्रकार यदि भारत में आये हुए मुस्लिम धर्मावलम्बी विजयी निकाल दिये जाते तो उन सन्तों और चिन्तकों की क्या हालत होती, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। आज हमें उन सन्तों और चिन्तकों की आवश्यकता है (स्मरण रहे साहित्येतर कारण से) इसलिए हम उनको जरूर अपनाएँ, पर यह कहना कि उस युग में इन लोगों की विचारधारा सम्पूर्ण रूप से शुद्ध थी यह बिल्कुल दूसरी बात होगी।

इससे ऊपर जो तर्क फैलाये उनसे किसी साहित्यिक सत्य की स्थापना की बात तो दूर रही सारे मूल्य अजीब तरीके से उखड़-पुखड़ गये। पर जैसा कि हमने इस दौरान बार-बार कहा है कि क्या महाभारत क्या रामायण क्या कालिदास क्या होमर क्या यूरीपीडिस क्या [illegible] सभी जीवित साहित्य में कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो तब सही थे और आज भी उपयोगी हैं। हम अधिक उदाहरण नहीं देंगे। रामायण महाभारत हमारे सामने हैं। ईसा और बुद्ध का बलिदान भी हमारी आँखों के सामने मौजूद है और हमेशा रहेगा। पर इसका यह नहीं कि मैंने बताया कि ईसा की करुणा व्याख्या के प्रचार-कार्य मिथ निर्माण में इतना बड़ा स्थान रखना पड़ेगा जो शायद सम्भव नहीं है। व्यक्ति के सम्बन्ध में कही हुई बात साहित्य के विषय में भी कही जा सकती है। महाभारत, रामायण या जो भी प्राचीन

साहित्य है यहां तक कि कालिदास की रघुवंश आदि कृतियों को भी, धार्मिक प्रचार शाप और मित्र निर्माण की प्रक्रिया में अलग करके देखना है। खुशी की बात तो यह है कि ऐसा करने पर भी हम धरोहर से बिल्कुल शून्य नहीं हो जाते, बल्कि जैसा कि मैंने कहा प्राचीन विश्व-साहित्य में बहुत-से ऐसे तत्त्व जहां-तहां बिखरे मिलते हैं जिनसे आधुनिक युग अनुप्रेरणा भी ले सकता है।

हावर्ड फास्ट ने यह दिखलाया है कि कहां यूरीपिडिस एक प्राचीन ग्रीक कवि और कहां अमरीका में स्त्रियों के अधिकारों के लिए लन्दनवासियों ने यूरीपिडिस से अनुप्रेरणा ली। एक नजी महिला एडिथ हैमिल्टन ने यह लिखा—'प्रगति के लिए युद्ध में वह सदा आगामी कतार में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो आधुनिक समय लाइफाटक विनाशक हों शायद ही किसी कवि में पायी जाती हैं। वह विद्रोही ही नहीं युद्धशील है कभी पराजय स्वीकार नहीं करता।

इस ओर ब्यौरे में नहीं जाएंगे। महाभारत से ऐसे बहुत-से प्रसंग निकाले जा सकते हैं जिनसे किसी भी नये आन्दोलन के लिए आदर्श वाक्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक ऐसा वाक्य लीजिए—देवायत्तम कुले जन्म ममायत्तम तु पौरुषम। फिर बुद्ध की वह वाणी—इहासन शुष्यतु मे शरीर त्वगस्थि मांसम ।' ईसा की वह वाणी—भले ही एक ऊंट सुई के छेद में निकल जाये पर धनी व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जा सकता। —इसलिए मैंने महाकाल की कसौटी पर सच शायद भी जो तेज रोशनी डाली उसके फलस्वरूप बहुत सी धरोहर शायद धराशायी हो जाए फिर भी नये रूप निकलते हैं बहुत कुछ बचता है और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि मनुष्य अपनी यात्रा के समुद्र मंथन के दौरान न जाने क्या-क्या लक्ष्मी और अमृत उपार्जित कर चुका और उसने न जाने क्या क्या निर्माण किया है भले ही वह निर्माण सही शुद्ध रूप में न मिलता हो।

इस प्रकार थोड़े में एक ताना बाना प्रस्तुत करने के बाद जब हम आधुनिक साहित्य पर आते हैं तो हमें उस सम्बन्ध में भी ऐसा लगता है कि जो जैसा दीख रहा है शायद वह वैसा नहीं है। यदि प्राचीन साहित्य के साथ कुछ दूसरे तत्त्व चिपटे हैं जिनसे हम उन्हें सही रूप में नहीं देख पाते हैं तो आधुनिक साहित्य के साथ भी कई उपसर्ग लगे हैं और इसके लिए बड़े-बड़े षड्यन्त्र किये जाते हैं कि हम साहित्य को ठीक से न समझ पायें और प्रचार में वह बह जायें। हम संसार के सबसे समृद्ध देश अमरीका को लेते हैं। वहां के सम्बन्ध में जानकार जो कुछ बताते हैं उसमें कुछ इत्मीनान नहीं होता। जब एक पुस्तक प्रकाशित होती है तो पब्लिशर्स वीकली में यानी प्रकाशकों की पत्रिका में उसके सम्बन्ध में बड़ा जबर

दस्त प्रचार-कार्य किया जाता है। प्रत्येक पुस्तक के प्रचार के लिए कुछ हज़ार डालर के विज्ञापन पहले से तय हो जाते हैं जिससे उसकी माँग तैयार की जाती है। समालोचक जानते हैं कि क्या करना है क्योंकि वे ज़्यादातर किराये के होते हैं। कुछ साहसी आलोचक भी होते हैं पर इसमें भी चाल यह है कि किसी पुस्तक को प्रसिद्ध बनाने के लिए कुछ विरोधी आलोचना भी कराई जाती है। एक तरफ जहाँ उस पुस्तक के सम्बन्ध में यह दावा किया जाता है कि वह युगान्तरकारी है, बेजोड़ है, मानदण्ड है वहाँ दूसरी तरफ अन्य प्रकार के सुर भी अलापे जाते हैं। हॉवर्ड फास्ट ने इसका बहुत ब्योरेवार वर्णन किया है। जब पुस्तक एक पण्य है उस पर पूँजी लगाई जाती है उससे कितना मुनाफा होगा यह कूता जाता है तो मुनाफा बढ़ाने के लिए भी तरीके किए जाते हैं जिस तरह से और मालों के सम्बन्ध में किया जाता है। इस प्रकार साहित्य में दुकानदारी के तत्त्व भी बहुत प्रबल रूप से घुसपैठिये के रूप में आ चुके हैं।

हमारा देश पिछड़ा हुआ है इसलिए अभी दुकानदारी के ये तत्त्व हमारे मूल्यों पर और मूल्यांकन पर उतने ज़बरदस्त तरीके से हावी नहीं हो सके पर यह कहना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है कि हमारे यहाँ भी साहित्य का मूल्यांकन सही ढंग से हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे यहाँ जो पुरस्कार दिये जाते हैं वे सही लोगों को ही मिलते हैं या सब सही लोग पुरस्कार पाते ही हैं।

यदि इस निम्न दायरे से निकल भी आयें तो भी यह कहना सम्भव नहीं है कि साहित्य का मूल्यांकन ठीक से होता है और यह मूल्यांकन हो भी कैसे जबकि सारी व्यवस्था बिगड़ी हुई है और भ्रष्टाचार हमारे देश में अपवाद नहीं बल्कि नियम बन चुका है।

साहित्य के सम्बन्ध में स्थानाभाव के कारण केवल थोड़ी-सी बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। कहने को कला कला के लिए या कला समाज के लिए यह विवाद कब का पुराना पड़ चुका है, पर चाहे यह जितना पुराना पड़े, वह नये-नये नक़ाब ओढ़कर हमारे सामने आता है। अब भी साहित्य पर जितना जो-कुछ विचार हो रहा है उसमें वही पुरानी अन्तर्धाराएँ नये जन्म पाकर सामने आती रहती है। अब यह कुछ फैशन-सा हो गया है कि सारे मूल्य नकारे जायें और उनकी हँसी उड़ाई जाय। इस सम्बन्ध में अब नवलेखक का चेहरा स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आता है। फिर अणुबम के कारण अब स्थिति यह हो गई है कि हम उन्नीसवीं सदी के तरीके से यह सोचने में असमर्थ हैं कि अन्ततोगत्वा अन्तिम संग्राम में सत्य की ही विजय होगी। स्थिति तो यह है कि

साहित्य है यहा तक कि कालिदास की रघुवश आदि कृतियों को भी, धार्मिक प्रचार न्याय और मिथ निर्माण की प्रक्रिया से अलग करके देखना है। खुशी की बात तो यह है कि ऐसा करने पर भी हम धरोहर से बिल्कुल शून्य नहीं हो जाते बल्कि जैसा कि मैंने कहा प्राचीन विश्व-साहित्य मे बहुत-से ऐसे तत्त्व जहा-तहा बिखरे मिलते हैं जिनसे आधुनिक युग अनुप्रेरणा भी ले सकता है।

हावर्ड फास्ट ने यह दिखलाया है कि कहा यूरीपिडिस एक प्राचीन ग्रीक कवि और कहा अमरीका मे स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़नेवालियों ने यूरीपिडिस से अनुप्रेरणा ली। एक नीग्रो महिला एडिथ हैमिल्टन ने यह लिखा—प्रगति के लिए युद्ध मे वह सबसे आगामी कतार मे दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो आधुनिक मथक तोड़फोड़क विनाशक हो शायद ही किसी कवि मे पायी जाती है। वह विद्रोही ही सदा युद्धशील है कभी पराजय स्वीकार नहीं करता।

हम और ब्यौरे मे नहीं जाएगे। महाभारत से ऐसे बहुत-से प्रसग निकाले जा सकते है जिनसे किसी भी नये आन्दोलन के लिए आदर्श वाक्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक ऐसा वाक्य लीजिए— दैवायत्तम कुले जन्म मदायत्तम तु पौरुषम। फिर बुद्ध की वह वाणी— इहासन शुष्यतु मे शरीर त्वगस्थि मासम । ईसा की वह वाणी— भले ही एक ऊँट सूई के छेद मे निकल जाय पर धनी व्यक्ति स्वर्ग मे नहीं जा सकता। —इसलिए मैंने महाकाल की कसौटी पर सब शाइट की जो तेज रोशनी डाली उसके फलस्वरूप बहुत सी धरोहर शायद धराशायी हो जाए फिर भी नये रूप निकलते हैं बहुत कुछ बचता है और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि मनुष्य अपनी यात्रा के समुद्र-मन्थन के दौरान न जाने क्या क्या लक्ष्मी और अमृत उपार्जित कर चुका और उसने न जाने क्या क्या निर्माण किया है भले ही वह निर्माण कहीं शुद्ध रूप मे न मिलता हो।

इस प्रकार थोड़े मे एक ताना बाना प्रस्तुत करने के बाद जब हम आधुनिक साहित्य पर आते हैं तो हम उस सम्बन्ध मे भी ऐसा लगता है कि जो जैसा दीख रहा है शायद वह वैसा नहीं है। यदि प्राचीन साहित्य के साथ कुछ दूसरे तत्त्व चिपटे हैं जिनसे हम उन्हे सही रूप मे नहीं देख पाते हैं तो आधुनिक साहित्य के साथ भी कई उपसर्ग लगे हैं और इसके लिए बड़े-बड़े षडयन्त्र किये जाते हैं कि हम साहित्य को ठीक से न समझ पायें और प्रचार मे बह न्ह जायें। हम ससार के सबसे समृद्ध देश अमरीका को लेते है। वहा के सम्बन्ध मे जानकार जो कुछ बताते हैं उससे कुछ इत्मीनान नहीं होता। जब एक पुस्तक प्रकाशित होती है तो परिणाम वीकली मे यानी प्रकाशकों की पत्रिका मे उसके सम्बन्ध मे बड़ा ज़बर

दस्त प्रचार-व्यय किया जाता है। प्रत्येक पुस्तक के प्रचार के लिए कुछ हजार डालर के विज्ञापन पहले से तय हो जाते हैं जिससे उसकी माँग तैयार की जाती है। समालोचक जानते हैं कि क्या करना है क्योंकि वे ज्यादातर किराये के होते हैं। कुछ साहसी आलोचक भी होते हैं, पर इसमें भी पोल यह है कि किसी पुस्तक को प्रसिद्ध बनाने के लिए कुछ विरोधी आलोचना भी कराई जाती है। एक तरफ जहाँ उस पुस्तक के सम्बन्ध में यह दावा किया जाता है कि वह युगान्तरकारी है बेजोड़ है, मानुमेंटल है, वहाँ दूसरी तरफ अन्य प्रकार के सुर भी अलापे जाते हैं। हावर्ड फास्ट ने इसका बहुत ब्योरेवार वर्णन किया है। जब पुस्तक एक पुण्य है, उस पर पूँजी लगाई जाती है उसमें कितना मुनाफा होगा यह कूता जाता है, तो मुनाफा बढ़ाने के लिए भी तरीके किए जाते हैं जिस तरह से और मालों के सम्बन्ध में किया जाता है। इस प्रकार साहित्य में दुकानदारी के तत्त्व भी बहुत प्रबल रूप से घुसपैठिये के रूप में आ चुके हैं।

हमारा देश पिछड़ा हुआ है इसलिए अभी दुकानदारी के ये तत्त्व हमारे मूल्यों पर और मूल्यांकन पर उतने जबरदस्त तरीके से हावी नहीं हो सके, पर यह कहना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है कि हमारे यहाँ भी साहित्य का मूल्यांकन सही ढंग से हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे यहाँ जो पुरस्कार दिये जाते हैं वे सही लोगों को ही मिलते हैं या सब सही लोग पुरस्कार पाते ही हैं।

यदि हम निम्न स्तर से निकल भी आयें तो भी यह कहना सम्भव नहीं है कि साहित्य का मूल्यांकन ठीक से होता है और यह मूल्यांकन हो भी कैसे जबकि सारी व्यवस्था बिगड़ी हुई है और भ्रष्टाचार हमारे देश में अपवाद नहीं, बल्कि नियम बन चुका है।

साहित्य के सम्बन्ध में स्थानाभाव के कारण केवल थोड़ी-सी बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। 'कला कला के लिए या कला समाज के लिए' यह विवाद बड़ा पुराना पड़ चुका है, पर चाहे वह जितना पुराना पड़े यह नये-नये लबादे ओढ़कर हमारे सामने आता है। अब तो साहित्य पर जितना जो-कुछ विचार हो रहा है उसमें वही पुराना द्वन्द्व [illegible] नये जन्म पाकर सामने आता रहता है। अब यह कुछ फैशन-सा हो गया है कि सारे द्वन्द्व नकारे जायँ और उनकी हँसी उड़ाई जाय। इस सम्बन्ध में अब नवोन्मेष का प्रश्न स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आता है। फिर, अणुयुग के कारण अब स्थिति यह हो गई है कि हम उन्नीसवीं सदी के तरीके से यह सोचने में असमर्थ हैं कि अन्ततोगत्वा अन्तिम संघर्ष में भलाई की ही विजय होगी। [illegible]

शायद मसाद की विजय हो पर वह विजय ऐसी हो कि उसमें उसकी टाँग टूट जाय, वह आँख से अन्धी हो जाय उसकी गाँठ में कुछ न रहे, वह एक अपाहिज की तरह अपनी इच्छा के विरुद्ध एक भयानक अंधकारपूर्ण गड्ढे की ओर लुढ़कती चली जाय। ऐसी स्थिति में न तो साम्राज्यवाद विरोध का नारा ही हमें रोशनी पहुँचा सकता है और न समाजवाद ही हमें बहुत लुभावना मालूम होता है। अणुबम ने उन्नीसवीं सदी से चले आते हुए अति सरल आशावाद की कमर तोड़ दी। फिर भी हम खाते हैं और हम जी रहे हैं। मनुष्यता में हमारा विश्वास है इसलिए ऐसी स्थिति में अस्तित्ववाद की तरह दर्शनशास्त्र का उदय होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है—जो यह कहता है कि आकबत की खबर खुदा जाने हम आज जीते हैं तो जीएँ अच्छी तरह जीएँ। अणुबम से तथा सारी अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्थिति में स्वयं यह स्थिति उसी तरह से निकलती है जैसे गंगोत्री से गंगा। पर कहीं यह उपमा गलत अर्थ में न ली जाए इसलिए कहा जाए कि जैसे शहर की सारी गन्दगी पीठ पर लाद कर शहर से पनाले निकलते हैं वहाँ न शुद्ध गंगा है न शुद्ध स्थिति। स्थिति है सो भी क्षणिक और शुद्धता नदारद।

उक्त अस्तित्ववादी किस्म के दर्शनशास्त्र में फिर भी दो स्थितियाँ हो सकती हैं। एक तो यह कि हम साहित्यकारों का कोई हाथ नहीं है हम चस-दुक्क कुछ नहीं कर सकते साहित्यकार की आवाज़ संसार की तो दूर रहा किसी भी स्थिति को बदलने में असमर्थ है, इसलिए हम स्वार्थ के साथ जीएँ और जैसी भी दुनिया है उसमें मौज करें और मौज करने के लिए रोज़ नए-नए सिद्धान्तों का गुब्बारा उड़ा दें। पर एक दूसरी स्थिति भी ऊपरवाली स्थिति से निकल सकती है कि बड़ी बुरी स्थिति है पर भलाई है तो इसी में है कि सारे संसार में लोकतन्त्र और समाजवाद की स्थापना हो। हमें इसके लिए निरन्तर चिंतन और कार्य करना चाहिए भले हो वह देर में हो या न हो। हमारी यात्रा ही बहुत बड़ी चीज़ है मंजिल नहीं। सार्त्र को लोग न चाहें जो कुछ समझा हो पर उनका जीवन इसी दूसरी स्थिति का संदेशवाहक है। सार्त्र दूसरे महायुद्ध के समय गुप्त स्वातन्त्र्य योद्धा और बराबर समाजवाद के मुजाहिद रहे।

अफसोस यह है कि हमारे यहाँ नवलेखन के उपासकों ने पहली स्थिति ही अपनाई है मानो हर आदमी अपने लिए और शैतान सबसे पीछे वाले आदमी को अपने पंजे में दबोच ले। इसी के अनुसार कहीं यह प्रचार है कि हम किसी प्रकार

न मवम-सम्ब धो वचन रखने की जरूरत नहीं।

निश्चित रूप से यह सब दिग्भ्रान्ति है। यह तो समझ में आता है कि लोग हर विषय पर खुलकर वाद विवाद करें, क्योंकि वाद विवाद से असली तथ्य का बोध होता है, पर केवल विवाद नहीं उस पर तथ्यों की गवाही लें, एकतरफा क्रिया से यह साहित्य का बचाव रहता अच्छा है। विशेषकर उस हालत में, जब उनका इस सम्बन्ध में ज्ञान कुछ भी नहीं के बराबर है और उनका सारा उद्देश्य केवल सनसनी के फन पर सवार होकर नवयुग का कृष्ण बनकर सरेआम रागनी में आना और अपनी ढफली बजाकर मियां मिट्ठू बनना है।

बहुत तरह की विचित्र बातें सुनने को मिलती हैं। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है लोगों में यह एक मर्ज और हो गया है कि जिस तरह भी हो सके, घर फाड़कर छप्पर फाड़कर प्रसिद्ध हुआ जाय। इस रुग्ण मनोवृत्ति में लोग इतना बहक जाते हैं और अपने को नया साबित करने के लिए इस तरह बरगर हैं कि वे कई बार बड़ी हास्यास्पद बात कह जाते हैं। उदाहरणस्वरूप एक ही सांस में समाजवाद की बातें करना और अनाचार या व्यभिचार को बढ़ावा देना एक ऐसा ही प्रयास है। समाजवाद में और कोई भी बात सम्भव हो पर यह सम्भव नहीं है कि लोग एक साथ दो या इससे अधिक स्त्रियों का भोग करें। बात यह है कि समाजवाद में हर हालत में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर माना जाता है। लेखकों को यह समझना चाहिए कि समाजवादी समाज में स्त्रियों के शोषण की कोई गुंजाइश नहीं है। यह तो उस प्रकार की विचारधारा में सम्भव है जिसमें पुरुषों में ही आत्मा की कल्पना की जाती है और स्त्रियों के लिए कहा जाता है कि उनमें आत्मा है ही नहीं या स्त्रियों को पुरुषों की पसलियों से उत्पन्न माना जाता है या स्त्रियों में आत्मा मानते हुए भी उन्हें बहु विवाह का अधिकार नहीं दिया जाता पर पुरुषों के लिये चाहे जितने भी विवाहों का अधिकार हो। समाजवादी परम्परागत परिवार के पक्ष में नहीं हैं पर साथ ही वह परिवार को आर्थिक न्याय से मुक्त सच्चे प्रेम का एक नया आधार देना चाहता है। उसमें तलाक आदि के लिए भी गुंजाइश है पर बार-बार तलाक देनेवाला समाजवादी कोई अच्छा आदमी नहीं समझा जाएगा, यह भी साफ कर दिया गया है। तलाक तो दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से इलाज का एक तरीका मात्र है जो बहुत ही अपवाद वाले मामले में होना चाहिए। इसलिए वह लोग तो जो नया बनने के लिए अपने को प्रगतिशील या समाजवादी करार देते हैं और साथ ही अपने साहित्य में तथा अपने आचरण में व्यभिचार को खुले आम प्रोत्साहन देते हैं, न तो नए हैं और न प्रगतिशील ही हैं।

१६

कहना न होगा कि ऐसे लोग भले ही थोड़े दिनों के लिए आँधी में धूल की तरह ऊपर हो जाएँ और मुगालते के बादल बरसा कर पर अन्ततोगत्वा उन्हें अपना सही स्थान मालूम हो जायगा जो सतह पर ही है। किसी को ऐसे लोगों की बनावटी बातों में गुमराह नहीं होना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सेक्स की गुत्थियों को सुलझाने में तो न कहूँगा बल्कि इस सम्बन्ध में उघाड़ना शब्द ही अधिक उपयुक्त होगा नवलेखन में बहुत साहस का परिचय दिया गया है। यद्यपि यह स्मरण रहे कि यह साहस किसी भी अर्थ में नया नहीं है और प्राचीन वाम मार्ग में इस प्रकार के सभी प्रयत्न किए जा चुके हैं।

मुझे इस सम्बन्ध में एक अफसोस यह होता है कि कुण्ठा, अस्वाभाविकता, निराशा आदि को साहित्य का एकमात्र उपजीव्य बनानेवाले लोग सेक्स के मामले में तो साहस दिखाते हैं पर अन्य अधिकतर आवश्यक मामलों में साहस क्यों नहीं दिखाते? देश में फैले हुए भ्रष्टाचार और अन्याय के प्रति वे अंधे क्यों हैं? भारत का बहुत बड़ा हिस्सा पूरी तरह कुसंस्कारों में डूबा हुआ है। रूढ़ियाँ इतनी प्रबल हैं कि मनुष्य कोई कदम उठाने का साहस नहीं करता। धर्म के नाम पर कितने कुचक्र चल रहे हैं, समाज के नाम पर कितने अन्याय होते हैं, सरकार और शासन तन्त्र की ओर से जो कुछ हो रहा है वह सामने है। तो यह क्या बात है कि क्रान्तिकारित्व और युगान्तरकारित्व बस एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाते हैं, वह यह कि सेक्स की गुत्थियाँ खोली जायँ, मैथुन का चित्रण किया जाए। गलत न समझा जाऊँ इसलिए कह देना जरूरी है कि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो जीवन के इस महत्त्वपूर्ण अंग पर पर्दा, सो भी बहुत मोटा, लिजलिजा और काला पर्दा डालकर रखने का प्रतिपादन करते हैं। यौन सिद्धान्तों को छोड़ने की बात नहीं हो रही है पर दिन दहाड़े होने वाले भ्रष्टाचार और बेईमानी पर ध्यान न देना कहाँ का क्रान्तिकारित्व है? क्या यह खुला सत्य नहीं है कि रुपया तथा अन्य तरह-तरह की बीमारियों ने लोकतन्त्र को व्यर्थ कर दिया है? क्या आज कोई गरीब आदमी चुनाव लड़ सकता है? यदि नहीं तो क्या यह लोकतन्त्र का ढोंग मात्र नहीं है? ऐसे ही बहुत से प्रश्न हैं जिनमें हमारे लेखक साहस दिखला सकते हैं? पर वे केवल उन मामलों में और उन क्षेत्रों में साहस का प्रदर्शन करते हैं जिनमें सरकार से संघर्ष में आने का खतरा नहीं है। यह कोई अच्छी बात नहीं है। मैं पहले ही इस सम्बन्ध में माघ का उदाहरण दे चुका हूँ और हमारे देश में भी स्वराज्य से पहले सभी लेखक किसी न किसी रूप में स्वातन्त्र्य योद्धा थे। इसमें बंकिमचन्द्र से लेकर

प्रमचन्द तक सभी को गिनाया जा सकता है। व अपनी विधाओं तक ही रहते थ, पर स्वातन्त्र्य आन्दोलन का जोर पहुचाते थे।

इस ग्रन्थ के विषय मे

अत म इस ग्रन्थ के सम्बन्ध म दो शब्द। हिन्दी म इधर जो उत्कृष्ट काम हुआ है, उसके कुछ मील के पत्थरो को इस ग्रन्थ के जरिये सामने लाने का प्रयत्न किया गया है। श्रेष्ठ ग्रन्थो के चयन का काम आसान नही है। यदि यह काय किसी एक व्यक्ति पर ही छोड दिया जाता तो सम्भव है कि एकाध ग्रन्थ, जिसका इसम समावेश किया गया है वह, इसम न होता और उसके स्थान पर दो एक अन्य रचनाओ का विवेचन होता। पर, इस तरह का मतभेद हमेशा हुआ करता है और वयक्तिक मत से सामूहिक मत हमेशा ठीक न हो, पर ऐसे काय म उस पर चलना ही सही होता है।

वस्तुत इस ग्रन्थ म स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रकाशित ऐसी कृतियो का ही मूल्याकन किया गया है जो इस अल्पावधि म ही प्रतिष्ठापित हो चुकी है। कृतियो की समीक्षा भिन्न भिन्न विद्वानो द्वारा की गई है, अत मूल्याकन के दृष्टिकोण म अन्तर होना स्वाभाविक है, किन्तु हमारा प्रयास यही रहा है कि कृति की समीक्षा पूणत निष्पक्ष हो।

कृतियो का चयन करते समय हमने कृतिकार के व्यक्तित्व की अपेक्षा कृति की उपलब्धि को ध्यान मे रखा है, यद्यपि कृतिकार के समग्र कृतित्व को भी एक सीमा क भीतर महत्त्व अवश्य दिया है। प्रयास यह रहा है कि ऐसी कृतिया ही चुनी जाए जिनम हिन्दी साहित्य क परम्परागत विकास और नवीन प्रयोग, दोनो का दशन हो सक।

समसामयिक हिन्दी साहित्य पर कुछ अन्य ग्रथ भी उपलब्ध है परन्तु उनम प्राय परिवश प्रवृत्ति तथा कलाकार का विवेचन एव मूल्याकन ही प्रमुख है। इनस भिन्न प्रस्तुत ग्रन्थ का वशिष्ट्य यह है कि इसम उपलब्धि क मूल्याकन का आधार केन्द्र कृति ही रही है। और, उपलब्धि की परिभाषा भी हमारी व्यापक है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय भाषाओ म विशेषकर हिन्दी म सजन क साथ निर्माण का काय भी बड वग म हुआ है। और सजनात्मक साहित्य की अपेक्षा ज्ञान क साहित्य की उपलब्धि वतमान युग म कम नही मानी जा सकती। इसी कारण प्रस्तुत ग्रन्थ म मूल्याकन क लिए हमन कवल सजनात्मक या ललित साहित्य का ही चयन नही किया वरन् ज्ञान के साहित्य को भी समान महत्त्व दिया है कोश या अन्य सन्दभ ग्रथो का समावेश इसी

व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है।

हम विश्वास है कि समसामयिक हिन्दी साहित्य की उपलब्धियों का यह कृतिपरक अथवा वस्तुपरक अध्ययन भारतीय साहित्य के व्यापक सन्दर्भ में हिन्दी पाठक के आत्मविश्वास का निश्चय ही परिपोष करेगा।

—मन्मथनाथ गुप्त

डी १४, निजामुद्दीन ईस्ट
नई दिल्ली १३

अनुक्रमणिका

सृजन

निर्माण

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

१

जयभारत राष्ट्रकवि के साहित्यिक विकास का प्रतीक

कृष्ण द्वैपायन व्यास विरचित महाभारत के घटना-संकुल ऐतिहासिक एवं पौराणिक विराट आख्यान की सुपरिचित पृष्ठभूमि पर जयभारत काव्य की रचना हुई है। महाभारत के विशाल कथानक का इस रीति-नीति में काट-छाँट कर सच-यन किया गया है कि मूल कथा का आवश्यक भाग ही रक्षित रहा है अनावश्यक विस्तार (या अवान्तर क्षेपक अंश) छूटता गया है। कथा के त्याग और ग्रहण में कवि ने प्रमुख चरित्रों को अक्षुण्ण रखते हुए उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ही चयन किया है जिनके आधार पर कौरवों पांडवों से सम्बद्ध महाभारत-कथा आज तक ग्रन्थों में ही नहीं—अनुश्रुतियों में भी जीवित है। कुछ प्रसंग मेरे इस कथन के अपवाद हो सकते हैं, किन्तु उनकी स्थिति महाकाव्य के विशाल कलेवर में असह्य नहीं है। महाभारत के विराट आख्यान में सैकड़ों पौराणिक उपाख्यान कल्लोल की भाँति संग्रथित हैं, उनका विच्छेद और चयन सचमुच दुष्कर है। फिर भी कहना न होगा कि वस्तु-क्रम में पारखी गुप्तजी ने उन सभी प्रसंगों के चुनने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है जो प्रबन्धकाव्य में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। कथा प्रसंग को सतत गतिशील रखते हुए जहाँ कहीं कवि ने संक्षेप किया है वहाँ प्रसंग की अन्विति का ध्यान रखा है किन्तु इस सतर्कता के बावजूद भी कुछ स्थलों पर प्रवाह में व्याघात आ गया है। यह व्याघात पौराणिक अन्तर्कथाओं के कारण आया है। कथा का अध्याहार करके उसकी अन्विति बिठाने के लिए पाठक को यदि तनिक भी श्रम करना पड़े तो यह भटका उसकी रसानुभूति में बाधक होगा ही।

'जयभारत' में नहुष से प्रारम्भ करके पांडवों के स्वर्गारोहण तक समस्त कथानक सैंतालीस सर्गों (प्रकरणों) में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण का शीर्षक सम्बद्ध

व्यक्ति या घटना के नाम पर है। सम्पूर्ण काव्य का रचना-काल एक न होने से शैली में वैविध्य है। गुप्तजी ने अपने सुदीर्घ रचना-काल में महाभारत के विभिन्न प्रसंगों पर यथासमय जो कुछ लिखा उसमें से ही कतिपय प्रसंगों का इस कृति में परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ समावेश किया है। अपने निवेदन में कवि ने इस हेर फेर और परिष्कार को अपनी लेखनी का क्रम विकास ही माना है। महाभारत के जयद्रथ वध प्रसंग पर गुप्तजी ने द्विवेदी युग में जो खण्डकाव्य लिखा था उसका उपयोग इस महाकाव्य में नहीं किया। जयद्रथ वध प्रसंग नये सिरे से संक्षेप में लिखा है। कदाचित् कवि को अपनी प्रौढ़ि पर पहुँचकर किशोरावस्था की कृति के प्रति मोह नहीं रहा। चूंकि इस महाकाव्य के विभिन्न प्रसंगों की सृष्टि विभिन्न कालों में हुई, अतः उनकी अभिव्यंजना शैली में भेद होना स्वाभाविक है। प्रारम्भिक रचनाओं में वर्णनात्मक (इतिवृत्तात्मक) व्यास पद्धति का आश्रय लिया गया है परवर्ती रचनाओं में समास शैली के साथ वाक्यों में कसाव और विचारों में गाम्भीर्य लक्षित होता है। कथा प्रवाह भी आद्योपान्त एक सा नहीं है—कहीं कथा कहने का आग्रह है तो क्षिप्रता आ गई है कहीं किसी प्रसंग को नवीन रूप देना अभीष्ट हुआ तो कवि की चित्तवृत्ति उसमें रम गई है और प्रवाह में मंथरता आ गई है। प्रायः उन्हीं प्रसंगों में तीव्रता आई है जहाँ संक्षेप और समाहार शैली से कथा को समेटा गया है। कौरव पाण्डव परीक्षा लाक्षागृह इन्द्रप्रस्थ अतिथि और आतिथेय आदि प्रकरण इसके प्रमाण हैं। कल्पना का पुट देकर जिन घटनाओं को नूतन उद्भावना के साथ लिखा गया है उनमें एकलव्य हिडिम्बा द्यूत सीयवाशा कुन्ती और कर्ण द्रौपदी और सत्यभामा युद्ध तथा स्वर्गारोहण आदि हैं। वस्तुतः इन्हीं प्रसंगों के नवनिर्माण में जयभारत के रचयिता की कृतकार्यता लक्षित होती है।

काव्य का मूल ध्येय मानव महत्त्व की स्थापना

जयभारत महाकाव्य शैली की प्रबन्ध रचना है। इसका मूल ध्येय नर (मानव) का महत्त्व प्रदर्शित करना है। नर की कर्त्तव्य निष्ठा और धर्म साधना जब चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है तब उसमें से एक ऐसी दिव्य आभा प्रस्फुटित होती है जो लोक परलोक सबको अपनी दीप्ति से आलोकित कर देती है। महाभारत में—न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् कह कर व्यासमुनि ने इसी नर महिमा की ओर संकेत किया है। जयभारत के कवि ने भी अपने काव्य के मंगलाचरण में इसी उद्देश्य से नमो नारायण नमो नर प्रवर पौरुषकेतु कहकर नर को नमस्कार किया है। इसके बाद काव्य का प्रारम्भ (उपक्रम) भी नारायण नारायण साधु नर साधना द्वारा होता है। उपसंहार में भी युधिष्ठिर (गायक) भगवान् से यही

याचना करते हैं— हे नारायण ! क्या और कहूँ तू निज नरमात्र मुझे रखना। मनुष्य जन्म को ही साधना की सफलता समझने वाले युधिष्ठिर के समक्ष भगवान् ने प्रकट होकर यही कहा

"सस्मित नारायण प्रकट हुए
आओ हे मेरे 'नर' आओ।
जो कुछ है जहाँ तुम्हारा है
मुझको पाकर सब कुछ पाओ।"

नर-रूप में मानव की गौरव गरिमा से मण्डित युधिष्ठिर को देखकर यही लगता है कि नर जन्म से बढ़कर इस संसार में और कुछ काम्य नहीं, मानव धर्म से बढ़कर कुछ साध्य नहीं, मानवता की उपासना से बढ़कर कुछ उपास्य नहीं। सच्ची नर साधना ही ऐहिक एवं आमुष्मिक सुख शान्ति की जननी है। मानवात्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है।

यथार्थ मानव प्रतीक युधिष्ठिर का चरित्रांकन

धर्मराज युधिष्ठिर का चरित्रांकन जयभारत में नरत्व के प्रतीक यथार्थ मानव के रूप में हुआ है। धर्मप्राण युधिष्ठिर की कर्तव्य निष्ठा का आधार कोरी शास्त्र-मर्यादा न होकर लोक-मर्यादा है जो आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् तथा स्वस्य च प्रियमात्मनः' का मानदंड सामने रखकर आत्म सुख को 'पर कल्याण' में पर्यवसित कर देती है। इसीलिए 'आरम्भ' को परास्त से देखते हुए सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् के उर्जस्वित स्वर में युधिष्ठिर ने युद्ध और हिंसा के प्रति अपना उद्वेग प्रदर्शित करते हुए कहा है

"राम, अब भी मैं यही कहता हूँ मन से
कामना नहीं है मुझे राज्य की या स्वर्ग की,
किंवा अपवर्ग की भी, चाहता हूँ मैं यही
ज्वाला हो जुड़ा सकूँ, मैं अपना के दुःख की,
भोगूँ अपनों का सुख, मेरा पर कौन है?
सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हों—
सब शुभ पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी।"

मानवमात्र को एक ही परमात्मा का अंश मानते हुए सब में समभाव रखते हुए युधिष्ठिर कहते हैं

"सुनो तात, हम सभी एक हैं भवसागर के तीर,
हो शरीर-यात्रा मे आगे पीछे का व्यवधान,
परमात्मा के अंश रूप हैं आत्मा सभी समान,
एक लक्ष्य तो मनुज सुखी हो सुलभ सबका भाग,
मैं सुरपुर मे भी न रहूँगा निज कूकर तक त्याग ।"

धर्म के प्रति जैसी अटल आस्था युधिष्ठिर के सांसारिक कृत्यों के बीच दृष्टिगत होती है वैसी राम के चरित्र को छोड़कर भारतीय साहित्य म अन्यत्र नहीं है। जयभारत के कवि ने उसी प्रत्यय को व्यावहारिक क्षेत्र मे यथार्थ की भूमि पर अवस्थित करके मानव की महिमा का बार-बार यशोगान किया है। युधिष्ठिर का जीवन विरोधी शक्तियों के भीषण आक्रमणों से उत्तरोत्तर कांतिमय होता गया है। पल-पल पर संयम और धैर्य की परीक्षा देते हुए युधिष्ठिर न तो विचलित होते हैं और न हतप्रभ ही। संसार के सुख भोग के प्रति गहरी अनासक्ति उनके भीतर पैठी हुई है और यथार्थ म वही उनकी शक्ति बल, तेज सब कुछ है

"जीवन, यश, सम्मान, धन, संतान, सुख सब मर्म के,
मुझको परंतु शलाका भी लगते नहीं निज धर्म के ।"

द्यूत 'तीर्थयात्रा' युद्ध और 'स्वगारोहण' इस काव्य के ऐसे सर्ग हैं जिन म युधिष्ठिर सांसारिक दृष्टि से मान अपमान सुख दुःख हर्ष विषाद और उत्थान पतन के चरम बिंदुओं तक पहुंचे है। किंतु भौतिक द्वंद्व और संघर्ष की वेला मे उनकी वृत्तियाँ न तो कुंठित हुई है और न परास्त ही। किसी प्रकार का अतिरेक उनके व्यापारों म नहीं है। दुःख को वे आनंदपूर्वक वैसे ही स्वीकार करते हैं जैसे समुद्रमंथन म उद्भूत कालकूट को भगवान् शंकर ने ग्रहण करके देवताओं को विपत्ति से बचाया था। सुख को अपनी व्यक्ति सीमाओं म न बाँधकर स्वस्थ संयत भाव से जन जन म बाँट देते हैं। निःस्वार्थ निष्कपट निरीह और निस्पृह भाव के साथ जीवन लीला का विस्तार करते हुए मानवता के आदर्श की स्थापना करना ही जैसे उनके तितिक्षामय जीवन का ध्येय हो। दुर्योधन की कुचालों से पराजित होकर वन जाते समय उन्हें सिंहासन छूटने का रंचमात्र भी खेद इसलिए नहीं है कि वहाँ कुशासन सुलभ होगा प्रजा का शासन छोड़कर वन म आत्म शासन का सुअवसर प्राप्त होगा।

युधिष्ठिर के मानव भाव की प्रशंसा

युधिष्ठिर के चरित्र की महिमा का वर्णन जयभारत के उन प्रमुख पात्रों

द्वारा भी कराया गया है जिनके प्रति पाठक की पूज्य बुद्धि बनी हुई है। श्रीकृष्ण भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र और स्वयं नारायण भी उनके उदात्त चरित्र का गुण गान करते हुए उन्हें श्रेष्ठ मानव समझते हैं। द्रौपदी भीम और अर्जुन भी धर्मराज को श्रेष्ठतम मानव मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में युधिष्ठिर की मान्यताओं को स्वीकार करते हुए कृष्ण द्रौपदी से कहते हैं

'निज साधना से अधिक नरकुल को युधिष्ठिर से मिला,
क्या स्वर्ग में भी सुलभ यह जो सुमन धरती पर खिला।'

'तीर्थयात्रा' प्रसंग में विलक्षण रूप में हनुमान से भीम की भेंट का वर्णन है। वहाँ हनुमान ने भीम का प्रबोधन करते हुए यही कहा है कि पांडवों का संकट क्षणिक है क्योंकि युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा सफल होगी—यतोधर्मस्ततोजयः।

"है युधिष्ठिर की युगोपरि धर्मनिष्ठा।
भावना राजत्व ही उनसे प्रतिष्ठा।"

मानव रूप में युधिष्ठिर के चरित्र का विकास क्रमिक रूप से दिखाया गया है। प्रारम्भ में उनके औदार्य, त्याग और तितिक्षा का वर्णन है बाद में समता वत्सलता अनासक्ति और धर्म निस्संगता विकसित हुई है। स्वर्गारोहण के प्रसंग का वर्णन कवि ने मानवतावाद के चरम उत्कर्ष के स्तर पर पूरी प्रौढ़ता के साथ किया है। इस सर्ग की प्रत्येक पंक्ति उनकी धर्मनिष्ठा को व्यक्त करती हुई धर्मराज का त्याग, प्रेम समता, बन्धु-वत्सलता, सौजन्य वैराग्य और अनासक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है। 'गुनवमाधी' का अपने साथ स्वर्ग ले जाने के आग्रह में जिस कोटि की निर्मल शरणागत भावना की रक्षा हुई है वह परमात्मा के प्रति की समत्व भाव में पूजा सर्वा है। आत्मीयों के साथ नरक-वास का आह्लाद के साथ स्वीकार करने में भी उनकी मानवता का उन्नयन ही है। धीर प्रशान्त नायक के समस्त गुणों से उपेत युधिष्ठिर को अन्तिम सर्ग में कवि ने मानवता के जिस उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया है वह भारतीय राजर्षि का वरण्य आसन है। तीन बार उनकी परीक्षा होती है और तीनों बार वे सहज रूप से अपना वही मार्ग ग्रहण करते हैं जो मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर स्थित एक कर्मयोगी को ग्रहण करना चाहिए। फलतः उनको तो परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होनी ही है किन्तु उनके साथ समस्त मानवता का पथ भी प्रशस्त होना है।

कथा का पुनराख्यान और युगधर्म की प्रतिष्ठा

गुप्तजी प्रयत्नपटु कवि हैं। अपनी समृद्ध कल्पना द्वारा वे प्राचीन वस्तु को जिस शैली से नवीन रूप देकर आकर्षक और मरम बनाते हैं उसका उदाहरण

'साकेत' और 'यशोधरा' के उन प्रसगो मे है जहा उर्मिला, कैकेयी, यशोधरा, आदि नारी पात्र परम्परा प्राप्त कथानक से भिन्न रूप म मार्मिक व्यजना करके पाठक को मुग्ध कर लेते है। इतिहास की अनुश्रुति मे पात्रो का जो चरित्र मिलता है उसे सर्वथा भुलाकर नवीन सृष्टि नही की जा सकती किन्तु युग के विवेक का ध्यान रखकर अतिप्राकृत और अतिमानव शक्ति पर आधृत घटनाओ को औचित्य के धरातल पर समर्थित किया जा सकता है। दूसरे युग धर्म को दृष्टि मे रखकर पुरातन घटनाओ का पुनराख्यान भी आवश्यक हो जाता है। कला की पूर्ण अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह पुन सृजन या पुनर्आख्यान इसलिए भी करना होता है कि पुरानी कथा को ज्यो की त्यो न तो कहने की प्रवृत्ति होगी और न पाठक उसे पढकर रस ग्रहण करेगा। नवनिर्माण की अपेक्षा पुनर्निर्माण की यह पद्धति कठिन है इसके लिए प्रबन्ध क्षमता अनिवार्य है। जो कवि प्रबन्धधारमक शैली की कल्पना से रहित हो उन्हे इस फेर म न पडना चाहिए। गुप्तजी प्रबन्ध कल्पना के समर्थ कवि है अत वे सनातन को नूतन करने के लिए अनेक मार्मिक स्थल ढूढ लेते हैं।

जयभारत म ऐसे ही कई मार्मिक स्थलो को चुनकर उनकी नवीन शैली से बुद्धिगम्य व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अपने इस कथन की पुष्टि म यहाँ तीन चार प्रसगो का उल्लेख करता हू। भीम और हिडिम्बा का विवाह महाभारत की एक साधारण सी घटना है। भीम का हिडिम्बा के प्रति आकर्षण और परिणय सामाजिक मर्यादा म अपराध कोटि मे आयगा। महाभारत पढकर हिडिम्बा के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति उत्पन्न नही होती प्रत्युत् उसके राक्षसी होने के कारण पाठक का मन एक विचित्र विद्रूप और विकर्षण से भर जाता है। किन्तु 'जय भारत' की हिडिम्बा राक्षसी होने पर भी सहज सुन्दरी उदात्त गुणशील-समन्विता, बुद्धि विवेक परिपूर्णा नारी है। उसके हृदय की सवेदनशीलता इतनी व्यापक है कि वह अपने सम्पर्क म आने वालो का सहज ही अपने स्नेहपाश मे बाँधने म समर्थ है। भीम उसे देखते ही देवि सम्बोधन से पुकार उठे किन्तु हिडिम्बा न उत्तर मे स्पष्ट कहा कि मैं देवि नही दानवी हू। राक्षसी जानने पर भीम के मन म उसके प्रति जातिगत अवमा भाव पैदा हुआ और उसके राक्षसी रूप पर व्यग्य करने लगे। हिडिम्बा ने भीम को जिस सन्तुलित भाषा म उत्तर देकर निरुत्तर किया वह गुप्तजी की कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकता है। भीम हिडिम्बा का वह वार्तालाप वर्तमान युग की बौद्धिक चेतना के अनुकूल और सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओ के अनुरूप है। इसी कारण आज के बुद्धिवादी पाठक को हिडिम्बा का चरित्र निर्दोष और नीति-सगत प्रतीत होता है। सच बात तो यह है कि 'जयभारत' म कवि की कलापूर्ण लेखनी के पारस-स्पर्श से ही हिडिम्बा आदर

बन गई है। भीम द्वारा अपने भाई का वध किये जाने पर प्रतिशोध की बात न सोचकर वह अहिंसा के परम तत्त्व को हृदयंगम करती हुई यही कहती है :

"वैर की यथार्थ शुद्धि वैर नहीं प्रेम है,
और इस विश्व का इसी में छिपा नेम है।"

कुन्ती के प्रति हिडिम्बा की उक्ति तो उच्चतम मानव आदर्श की शिक्षा से ओतप्रोत है। मानव तभी सफल है जब वह अपनी पावनता से दानव का भी उद्धार कर सके :

"यदि तुम आर्य हो तो दो हमें भी आर्यता,
अपनी ही उच्चता में कैसी कृतकार्यता ?"

× × ×

"होकर मैं राक्षसी भी अन्त में तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जो भी रहूँ जाति से तुम्हारी हूँ।"

हिडिम्बा ने कुन्ती के समक्ष केवल आदर्श की बात ही नहीं की वरन् युक्ति, तर्क और प्रमाण द्वारा अपनी पात्रता सिद्ध कर दी। फलतः कुन्ती की गोद में हिडिम्बा को वधू का सम्मान मिला। इस प्रसंग के नूतन सृजन का प्रयोजन स्पष्ट है। भीम-हिडिम्बा-परिणय तब तक पाठक को विधेय न लगता जब तक हिडिम्बा को रूप-गुण-शील-समन्विता नारी के रूप में अंकित न किया जाता। हिडिम्बा के चरित्र का यह नवनिर्माण केवल भीम की वासनावृत्ति का ही परिमार्जन नहीं करता वरन् इस अनमेल विवाह को सामाजिक मर्यादा में ग्रथित करके नैतिक मान्यता भी प्रदान करता है। इस प्रसंग में गुप्तजी ने दानव और मानव की प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए तटस्थ दार्शनिक के समान जो विचार व्यक्त किये हैं वे उनके कवि-दार्शनिक रूप के द्योतक हैं।

अतिप्राकृत और अतिमानव शक्ति पर आधृत घटनाओं की विवेक-सम्मत व्याख्या भी 'जयभारत' में बड़ी वैज्ञानिक शैली से हुई है।

महाभारत के सभा पर्व में वर्णित द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग को 'जयभारत' में कवि ने द्यूत सर्ग में युग विवेक के आधार पर नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। मूल कथा में कोई परिवर्तन न करके केवल अतिप्राकृत शक्ति के उपयोग को (जो आज के वैज्ञानिक और बुद्धिवादी युग में अव्यवहार्य लगता) हटाकर औचित्य की सीमा-मर्यादा में विवेक का प्रयोग किया है। व्यास ने कौरवों के पाप को गहन करने के लिए पहले तो द्रौपदी के अपार वस्त्र का वर्णन किया है, बाद में भगवान की अतिप्राकृत शक्ति के कारण द्रौपदी का वस्त्र असमाप्त बना दिया है। इस वस्त्र-राशि को खींचते-खींचते परिश्रान्त और लज्जित होकर दुःशासन बैठ जाता है

यदातु वाससा राशि सभामध्ये समाचित ।
तदा दु शासन श्रान्तो व्रीडित समुपाविशत ॥

इसके आगे धृतराष्ट्र की आत्मग्लानि और दुर्योधन के प्रति आक्रोश-वचन का महाभारत मे वर्णन है। किन्तु 'जयभारत' म द्रौपदी असहाय दशा मे भगवान का स्मरण करती हुई आततायी दु शासन को धिक्कारती हुई उसके अन्तर मे पाप की भीति भी उत्पन्न करती है। उसके वचन को सुनकर दु शासन पाप पक्ष की विभीषिका से सिहर उठता है और उसे अपने चारो और अन्धकार दिखाई देने लगता है। उसे द्रौपदी के वस्त्र के ओर छोर का पता न रहा वह भयभीत होकर काँपने लगा और स्तम्भित होकर वही बैठ गया

"सहसा दु शासन ने देखा अन्धकार सा चारो ओर,
जान पडा अम्बर सा वह पट जिसका कोई ओर न छोर।
आकर अकस्मात अति भय-सा उसके भीतर बैठ गया,
कर जड हुए और पद काँपे, गिरता सा वह बैठ गया।"

इसके आगे सभा को सावधान करने के लिए कवि ने गान्धारी का प्रवेश कराया है। नारी के अपमान के क्षणो मे किसी वृद्धा नारी की कातर वाणी का प्रयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अधिक समीचीन और सामयिक है। गान्धारी ने सभा मे आते ही सबसे पहले अपने अन्धपति को प्रबोधा और फिर आत्मग्लानि के साथ भाई के कुत्सित आचरण के कारण अपने पितृ-कुल और पुत्रो की अनतिकता के कारण अपने पति-कुल के कलकित होने की बात कही। अपनी अन्तर्व्यथा को चरम बिन्दु तक पहुँचाने के लिए उसने लोक लाज की दुहाई दी और कातर भाव से पुकार उठी

"हाय! लोक की लज्जा भी अब नही रह गई रक्षित क्या।
आज वधू का तो कल मेरा कटि पट नहीं अरक्षित क्या?"

नि सन्देह गान्धारी के उपयुक्त वचनो मे किसी भी नराधम को त्रस्त करने की, पाप-कर्म से विरत करने की अद्भुत क्षमता है। महाभारत मे यह काम धृतराष्ट्र ने किया है और उसने बार बार दुर्योधन को कोसा है किन्तु धृतराष्ट्र की भर्त्सना मे न तो इतना बल है और न श्रोताओ को लज्जावनत करने की ऐसी क्षमता।

ऐसा ही एक और प्रसग महाभारत म उस समय आता है जब अज्ञातवास के समय पाण्डव द्रौपदी सहित राजा विराट के यहाँ वेष बदल कर समय काट रहे थे। रानी का भाई कीचक स । सैरन्ध्री के रूप म द्रौपदी दासी का काय कर रही थी। रानी का भाई कीचक द्रौपदी के रूप पर आसक्त हो गया। असहाय द्रौपदी ने आत्मरक्षा के लिए भीम की शरण ली। जयभारत के कवि ने इस प्रसग म द्रौपदी को विराट की सभा

में भावर अपील करने का अवसर दिया है। उसने केवल आत्मरक्षा की अपील ही नहीं की, प्रत्युत वह राजा के शासन धर्म को भी ललकारती हुई स्त्रण भाव का सकेत देकर उसे लज्जित कर गई

"लज्जा रहनी अति कठिन है, कुलवधुओं की भी जहाँ।
हे मत्स्यराज किस भांति तुम हुए प्रजारजक वहाँ ?"

× × ×

"तुमसे निज पद का त्याग भी भलीभांति चलता नहीं,
अधिकार - रहित इस छत्र का भार तुम्हें खलता नहीं ?"

द्रौपदी के चारित्रिक विकास में सतीत्व और निर्भीकता को उदघाटित करने के लिए गुप्तजी की यह नूतन उद्भावना श्लाघ्य है।

पुन सर्जन में युगादर्श का भाव

चौथा एक और प्रसग इस विषय में उल्लेखनीय है, वह है धर्मराज युधिष्ठिर का द्रोणाचार्य को युद्ध विरत करने के लिए असत्य भाषण। 'अश्वत्थामा हत नरो वा कुजरो वा' की युक्ति में छल और कतव का जो अंश है उसके दोष में युधिष्ठिर को अलिप्त नहीं किया जा सकता। औचित्य और नीति की किसी भी व्यवस्था में युधिष्ठिर का यह असत्य भाषण दोषपूर्ण ही ठहरेगा। महाभारत में गुरुभक्त अर्जुन ने क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर की इस कार्य के लिए प्रत्यक्ष रूप में निन्दा की है। किन्तु उन निन्दा-वचनों का उत्तर देने हुए भीम ने कौरवों के छल, कपट अनीति और अन्याय का वर्णन करके युधिष्ठिर के इस कार्य का उचित बता कर पाठक के मन को हल्का करने की चेष्टा की है। जयभारत' में कवि ने पाठक की भावनाओं का साथ दिया है और पाप को पाप कह कर सत्य की प्रतिष्ठा की है। पाप को पाप कहने के लिए युधिष्ठिर की वाणी का उपयोग हुआ है। पाप की मुक्त कण्ठ से स्वीकृति (वनपर्व्व)में ही उन्हें अपनी निष्कृति दृष्टिगत हुई। इस स्वीकृति से एक ओर पाठक के क्षुब्ध मन को सान्त्वना मिली दूसरी ओर युधिष्ठिर का चरित्र और अधिक उज्ज्वल हुआ

"बोले धर्मराज, भाई भीम तू शान्त हो,
सिद्ध नहीं होता शुद्ध साधन से साध्य जो,
उसकी विशुद्धता भी शकनीय होती है,
तात, मेरा पक्षपात योग्य नहीं इतना,
पाप जो हुआ है उसे मानना ही चाहिए।"

युधिष्ठिर के चरित्र के इस लाछन का परिमार्जन 'वनपर्व्व' के माध्यम से

युगोचित विषय-बुद्धि की दृष्टि से सगत और शोभन है। कवि की निष्पक्ष दृष्टि म सत्य का आग्रह जिस रूप मे प्रतिफलित हुआ है वह धमराज के अनुरूप है।

महाभारत की प्राचीन कथा के अन्तगत असगत या असमाव्य प्रतीत होने वाली घटनाओ को विवेक-सम्मत बनाने तथा उनमे युगोचित सामजस्य लाने के लिए स्थान-स्थान पर सम्बद्ध पात्रा द्वारा आत्मग्लानि एव पश्चाताप प्रकट करने की ममस्पर्शी "ाना भी अपनायी गई है। जयभारत' म कवि ने अपनी कल्पना द्वारा ऐसे अनेक अवसर ढूढ निकाले हैं जब सदवृत्त तथा दुवृत्त दोनो कोटि के पात्र आत्मग्लानि की आच म तप कर पाठक की मनस्तुष्टि करने मे सफल हुए हैं। महाभारत के पात्र इस प्रकार आत्मग्लानि स सतप्त नही हुए, फलत वहाँ शोक और विलाप तो है किन्तु ग्लानि की पीडा नही। उदाहरण के लिए दो एक मार्मिक स्थला का सकेत ही पर्याप्त होगा। द्रौपदी के अपमान म साझीदार होने पर कण को मनस्ताप हुआ और वह अपन ऊपर खीज कर आत्मग्लानि मे विगलित होकर वह उठा

'मैंने अपना एक कम ही अनुचित माना,
कृष्णा का अपमान, किन्तु तब क्या यह जाना,
यह है मेरी अनुज वधू, अब कहाँ ठिकाना,
इसका प्रायश्चित मृत्यु के हाथ बिकाना ॥"

दुर्योधन की अनीतिपूण हठधर्मिता से खिन्न होकर धृतराष्ट्र और गाधारी अपने भाग्य को बार-बार कोसते है। गाधारी तो दुर्योधन सा पुत्र पदा करके अपनी पुत्रवत्ता को ही धिक्कारती है। यह आत्म धिक्कार उसके अन्तर का विद्रोह है जिसे वह कृष्ण के समक्ष व्यक्त करती है

'मैं भी हे गोविन्द अन्तत अबला नारी।
पाडु सुतो को देख मुझे भी डाह हुई थी,
एक एक पर बीस बीस की चाह हुई थी।
दुर्योधन मे विकसित हुई घनीभूत यह डाह ही।
क्या कर सकती हूँ मैं भला, भर सकती हूँ आह ही ॥"

कुन्ती की आत्मग्लानि तो सचमुच उसे पश्चाताप की वह्नि म सतप्त करके भस्म सा किये दे रही है। कण के प्रति अपराधिनी कुन्ती का स्वर अश्रु विगलित होकर इतना करुण विह्वल हो गया है कि पाठक की समवेदना एक साथ उसे ममता के आलवाल म घेर लेती है। कुन्ती अपने आप को नागिन कह कर कण के प्रति किये गये दुव्यवहार का स्वीकार करती है। साकेत की कैकेयी और 'जय भारत की कुन्ती म आत्मग्लानि की यह समता देखकर गुप्तजी की कल्पना की

सराहना करनी पडती है। कुन्ती का पश्चात्ताप शब्द शब्द से फूटा पड रहा है

"देवी नहीं, नहीं आर्या हूँ, मैं नागिन सी जननी हूँ,
सबसे ऊँचा पद पाकर भी, स्वय स्वगौरव हननी हूँ।
मा से माँ न कहे तो कुछ भी कहे पुत्र, वह गाली है,
किन्तु दोष दू कसे तुझको जो स्वकर्म गुणशाली है।"

मानवतावाद की स्थापना

जयभारत' म युग धर्म के साथ कवि ने 'मानवतावाद की व्यापक दृष्टिकोण मे स्थापना की है। मानवतावाद के विधायक तत्त्व समता प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि का स्थान स्थान पर विशद वर्णन किया है। मानव मात्र म उस परमात्मा का अश देखना और जन्मगत जाति बन्धना की अवहेलना करके सयम समभाव से ममत्व रखना गुप्तजी के काव्य म युगीन प्रभाव की छाया है। व्यक्ति का अहभाव ही यथार्थ म सकीर्णता की सृष्टि करके उसे सीमित बनाता है। इस 'अह की परिधि यदि व्यापक हो सके—एक बार अह के भीतर समस्त समाज समा सके तो मानवतावाद का सिद्धान्त चरितार्थ हो सकता है। कृष्ण न कौरवो को समझाते हुए कहा था

"वह अह 'हमीं हम' तो नहीं, 'हम भी' उसका अर्थ है,
जो सबको लेकर चल सके सच्चा वही समर्थ है।"
× × ×
"अपना क्षेम तभी सम्भव है जब हो औरो का भी क्षेम।"

एकलव्य, कर्ण और युयुत्सु जस पात्रो का चरित्राकन करते समय कवि ने इस बात का बडी सतर्कता स ध्यान रखा है कि जन्मगत जाति का आरोप कहीं इनके चारित्रिक गुणो को आवृत न कर ले। 'गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिंग न च वय' के आधार पर इनके व्यक्तिगत गुणो की प्रतिष्ठा म ही मानवता की प्रतिष्ठा कवि को अभीष्ट है। 'कुल स नहीं शील ही से तो होता है कोई जन मान्य'—कह कर समाज निर्मित वर्णगत भेदभाव का परिहार किया गया है। एकलव्य ने तो स्पष्ट रूप स गुरु द्रोणाचार्य से यही जिज्ञासा प्रकट की है—

'गुरुवर नहीं अराजन्या मे क्या ईश्वर का अश,
और नहीं है क्या उनका भी वही मूल मनुवंश ?"

अपने मातृवश की हीनता व सामाजिक लाछन की चिन्ता न करके युयुत्सु भी आत्मा की एकता म विश्वास प्रदर्शित करता हुआ यही कहता है कि जन्मगत जाति-भेद मिथ्या है

"यदि है यह दोष दम्भकन है, आत्मा से कौन अनादृत है,
होता प्रदीप से कज्जल ज्यो, कदम से शत-सहस्त्रदल ज्यो।"

मानवतावाद के विरोधी तत्वो का सकेत

मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हुए कवि के अन्तमन पर उन विरोधी शक्तियो का प्रभाव सतत बना रहा है जो मानव मानव के बीच वैर विद्वेष की खाई खोद कर उसे मनुष्यता की समतल भूमि पर खडा नही होने देती। युद्ध लिप्सा और राज्य लाभ इन विरोधी शक्तियो के प्रतीक है। आज के युग मे यह युद्ध लिप्सा अपनी विकरालता मे इतनी भयावह हो उठी है कि मानव के समस्त प्रयत्न, ज्ञान विज्ञान प्रसूत अखिल आविष्कार उसे सर्वनाश के पथ पर खीचे लिए जा रहे हैं। स्रष्टा की सुन्दरतम रचना मानव आज अपने ही बौद्धिक निर्माण से नृशस दानव बन कर सहार के बीज बो रहा है। कवि को ऐसे मानव के प्रति जो अमर्ष है उसे व्यग्यमयी भाषा मे व्यक्त किया गया है। द्रौपदी के अपमान की बात सुनकर घटोत्कच कहता है—

"हाय म दुष्कर्म असम्भव दानवो से,
हम निशाचर ही भले तुम मानवो से।"

मानव की निरीहता पर व्यग्य करती हुई हिडिम्बा कहती है

"देवो की अपेक्षा दत्य हमसे निकट हैं,
नर तो निरीहता मे दोनो से विकट हैं।"

स्वार्थरत मनुष्य की विच्छेद भावना पर युधिष्ठिर की यह मार्मिक उक्ति भी कम व्यग्य भरी नही है

"हाय जल मे भी मनुज कुल आज बिछडा,
जल मिला जल से, मनुज से मनुज बिछडा।"

मानव की युद्ध लिप्सा की निन्दा करते हुए कवि ने 'युद्ध सर्ग' मे जो विचार व्यक्त किये हैं उन पर गाधीवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। मनुज मे युद्ध लिप्सा दनुज के रक्तबीज का द्योतक है और मनुष्य की मनुष्यता क्या अमानुषिकता मे ही है? स्वर्गारोहण के समय पाडवो ने शस्त्रो को निस्सार समझ कर विसर्जित कर दिया था। पाडव शस्त्रो की अनर्थकारी शक्ति से पूर्णतया अवगत हो गये थे। किन्तु खेद! मानव जाति की युद्ध प्रियता ने क्या शस्त्रो को रसातल मे जाने दिया? अपार धन राशि व्यय करके आज भी मानव शस्त्र निर्माण-लीन है। युद्ध के दुष्परिणामो का वर्णन करते हुए कवि ने करुण और वात्सल्य भाव की भूमि पर जो सुन्दर सृजना की है वह युद्ध की निस्सारता भीषणता और

अनयता का प्रत्यक्ष मूर्तिमान कर देती है —

"बैठ जिन कंधों पर नगर में खेले थे
काट डाला यौवन में प्राण उन्हें क्रूरों ने
कंधों पर जिन्हें चढ़ाये फिरे प्यार से
करके हताहत गिराया उन्हें धूलि में,
धिक् ! यह धीर कर्म, धर्म कहाँ इसमें
धिक् ! नर नागरों के अंध की अनयता ।।"

भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का उन्मेष

जयभारत भारतीय संस्कृति के उन आदर्शों का व्यावहारिक चित्र प्रस्तुत करता है जो सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं या परम्पराओं को चुनौती देकर व्यक्ति विशेष के आचरण से स्थापित होते हैं। महाभारत को यथार्थवादी कोटि का काव्य इसलिए कहा जाता है कि उसमें कोरी सनातन शास्त्र मर्यादा का आग्रह न होकर यथार्थ जीवन के कर्तव्य-कर्म का अनुरोध है। यह होते हुए भी गुप्तजी ने अपनी सांस्कृतिक विचारधारा को उसी शैली में व्यक्त किया है जैसे उन्होंने 'साकेत और यशोधरा' में वैष्णव धर्म की पृष्ठभूमि पर किया था। उन्होंने समाज, देश, जाति, नारी, पाप पुण्य, धर्म अधर्म आदि विषयों पर जो भाव प्रकट किये हैं उनमें मौलिक विचार प्रायः एक-से ही हैं। भारतीय नारी के सम्बन्ध में उनकी जो मान्यता और पूज्य बुद्धि रही है उसको जयभारत में और अधिक स्पष्ट रूप में अंकित किया है। अबला जीवन की कहानी कहते हुए 'यशोधरा' में जो चित्र अंकित किया है ठीक वैसा ही यहाँ मिलेगा

"नारी लेने नहीं लोक में देने ही आती है,
प्रभु-पद रखकर वह उनसे प्रभु-पद पा जाती है।
पर देने में विनय न होकर जहाँ गर्व होता है,
तप-त्याग का फल हमारा वहीं सब होता है ।।"

भारतीय परिवार-संस्था, विवाह प्रथा, दाम्पत्य भाव की मर्यादा, गृहस्थाश्रम से एकाश्रय की स्वाभाविक परिणति आदि सामाजिक विषयों पर 'जयभारत' में जो विचार कवि ने प्रकट किये हैं उनका मूलाधार भारतीय जीवन-दर्शन ही है।

'जयभारत' का प्रतिपाद्य विषय और मुख्य रस

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से जयभारत का समीक्षा करते हुए उसके भाव पक्ष पर ऊपर की पंक्तियों में जो कहा गया है वह ध्यान देने योग्य है। रस

निष्पत्ति, अलकार विधान छन्द योजना आदि विषया पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जा सकता है। चरित्र चित्रण, रूप-वणन, दृश्यावन आदि भी इस प्रसग मे उल्लेख्य समझे जायेंगे। किन्तु प्रस्तुत निबन्ध के सीमित कलेवर म इन सब विषया का सविस्तर समावेश मम्भव नही अत मैं यहा कुछ विशिष्ट तथ्या का ही सकेत मात्र करूगा।

जसा कि मने प्रारम्भ म लिखा है कि जयभारत विभिन्नकाल की रचनाओं का सकलन होने से राष्ट्रकवि का प्रतिनिधि ग्रन्थ है जिसमे उनके कवि-कृतित्व को पूणता प्राप्त हुई है। भाषा भाव और शली सभी म समानता न होकर स्पष्ट परिलक्षित होन वाली भिन्नता और विविधता है, अत समग्र भाव से इन तत्वा पर एक साथ विचार नही किया जा सकता। महाभारत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धम की जय और मुख्य रस शात है। जयभारत' म भी शात रस की ही मुख्यता है अन्य रस उसके अग बनकर आये है। प्रतिपाद्य विषय मानव की श्रेष्ठता और मानव प्रतीक धमराज युधिष्ठिर की जय है। युधिष्ठिर 'जय भारत' का धीर प्रशान्त नायक है। युधिष्ठिर के प्रवत्तिजन्य क्रिया व्यापारा के बीच निवृत्ति की जो अन्त सलिला धारा प्रवाहित हो रही है वही निर्वेद को सीचती है। आजीवन कत्तव्यरत रह कर जीवन की अन्तिम घडिया म सब कुछ छोडकर जब पाडव हिमालय पवत पर देह पात के लिए चले तब उनके अन्तस मे कवल शात रस ही था— रस एव शात रस अन्तस मे विष सा विषयो का त्याग कर। स्वर्गारोहण सग म जिस निर्लिप्त भाव से युधिष्ठिर की चित्तवत्ति स्वग और नरक को ग्रहण करती है वही शम भाव—निर्वेद की सर्वोच्च स्थिति है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि स काव्य म कवि का पूवग्रह स्पष्ट परिलक्षित होता है। जिन पात्रा का चरित्र महाभारत म हय और तिरस्कार योग्य है उन्ह भी गुप्तजी ने किसी न किसी प्रकार उठाने की चेष्टा की है। द्रौपदी का चरित्र बहुत ही ऊर्जस्वित और प्राणवान् रखा है। दुर्योधन को अन्तिम क्षणा म एक ऐसी भाव भूमि पर कवि ने खडा कर दिया है कि उसम दुष्टता के होन पर भी दशक या पाठक का मुग्ध करने की शक्ति आ गई है। दुशासन को भी मातृभक्ति स परिपूण कर दिया गया है। कण और अर्जुन के चरित्रा म उदात्त गुणा या आधान किया गया है। चरित्र चित्रण का मूल मानवतावाद का आदश है, अत दुष्ट पात्रा म गुप्तजी ने अपना काव्य प्रतिभा से गुणा का सधान कर लिया है। युधिष्ठिर द्रौपदी हिडिम्बा और कण इस काव्य के सुन्दर चरित्र हैं जिनके चित्रण म कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

रूप-सौंदर्य का अंकन

रूप-वर्णन और दृश्यांकन की दृष्टि से काव्य में अनेक सुंदर, सजीव और आकर्षक स्थल हैं जिन्हें पढ़ते ही नेत्रों के सामने मनोरम व्यक्ति या दृश्य खचित हो जाता है।

एकलव्य का रूप-वर्णन

"कसी गँसी थीं मांसपेशियाँ, श्यामल चिकना चर्म,
बना आप ही था जो अपना जन्मजात वर वर्म।
भाल ढँका सा था बालों से, ढाल बना था वक्ष,
धर्षित भी भुजदंडों से थे उत्कर्षित युग कक्ष।
कर में धनु था, भ्रू, अधरों पर भी रक्खे था वह चाप,
दृष्टि प्रखर थी किन्तु मृदुल था उसका सरलालाप।"

हिडिम्बा का सौंदर्य-वर्णन

"उत्थित वसुंधरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमती राका थी।
अंग मानो फूल, कच भृंग, हरीशाटिका,
कर-पद-पल्लवा थी, जंगम सी वाटिका।"

श्रीकृष्ण का वर्णन 'रणनिमंत्रण' सर्ग में प्राचीन परम्परा भुक्त अलंकार शैली में किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है। प्रकृति वर्णन के भी दो-तीन स्थल पठनीय हैं।

भाषा पर संस्कृत का प्रभाव

भाषा के सम्बन्ध में केवल एक बात का ही उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। महाभारत की प्राचीन कथा पर आधृत होने पर भी 'जयभारत' में संस्कृत श्लोकों का अनुसरण नहीं किया गया। किंतु कहीं-कहीं कवि संस्कृत की सूक्ति और सुभाषिता को अनूदित करने का लोभ संवरण नहीं कर पाया है। अपने इस कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत करता हूँ —

१—भोगने से कब घटे हैं रोग रूपी राग,
और बढ़ती है निरंतर ईंधनों से आग।

संस्कृत—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्धते॥

२—विविध श्रुति स्मृतियाँ कल्याणी,
भिन्न भिन्न मुनियों की वाणी,
गूढ़ धर्म गति, पूछूँ किससे,
पथ वह गये महाजन जिससे।
संस्कृत—श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोविभिन्ना,
नेको मुनियस्यमत न भिन्नम्।
धर्मस्य तस्य निहित गुहायां।
महाजनो येन गत स पन्थ ॥
३—एक स्वजन को त्याग करे कुल कष्ट निवारण,
ग्राम हेतु कुल तजे, ग्राम जनपद के कारण,
जनपद जगती सभी तजे आत्मा के हित में।
संस्कृत—त्यजदेक कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत्।
ग्राम जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥
४—पर आत्मरक्षा इष्ट है,
धन से तथा दारादि से भी सर्वथा।
संस्कृत—आत्मान सतत रक्षेत् दारैरपि धनैरपि।

कवि की सूक्तियाँ

संस्कृत के सुभाषित वाक्यों के अतिरिक्त कवि के अपने वाक्य विन्यास भी ऐसे है जो सूक्ति की कोटि मे आते है जिनकी भाव व्यजना इतनी सीधी सरल और अर्थपूर्ण है कि उन्हे टकसाली बनने म देर नही लगेगी। यदि इस तरह की सुदर सूक्तियों का सकलन किया जाय तो उनकी सख्या शताधिक होगी। उदाहरणार्थ दो चार सूक्तियाँ नीचे दी जाती हैं

१—मिलना ही आनन्द, बिछुड़ना खेद है,
पुर्नमिलन ही इष्ट जहाँ विच्छेद है।
२—रस के विरल घूट ही अच्छे अधिक भोग मे रोग है।
३—होता सदा है मानियों को मान प्यारा प्राण से।
यश के धनी हैं जो उन्हें भय क्या कराल कृपाण से ॥
४—कीर्तिमान जन मरा हुआ भी अमर हुआ जग मे जीता।
५—निराश तो जीवित ही मरा है,
उत्साह ही जीवन का प्रतीक है।

अलकारो की दृष्टि से इस काव्य म उपमा उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त और

रूपक की प्रधानता है। उपमा को इस काव्य का प्रमुख अलकार कहा जा सकता है। छदो की विविधता से तो काव्य भरा हुआ है। प्रत्येक सग म नया छद ग्रहण किया गया है। मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छदो का प्रयोग है। 'युद्ध सग मुक्त छद का सुदर निदर्शन है।

महाभारत और जयभारत

महाभारत को सस्कृत साहित्य म 'पचम वद की सज्ञा दी गई है। ज्ञान विज्ञान की व्यापक परिधि को घेर कर व्यास मुनि न उसकी वस्तु का विस्तार किया है। सामान्य लौकिक व्यवहार नीति से लेकर पारलौकिक चिन्तन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयो पर दार्शनिक दृष्टि से महाभारत म विचार विमर्श हुआ है। किन्तु 'जयभारत म न तो वसी व्यापकता है और न गूढता। गभीर विषयो का जहा कही प्रसग आया है कवि न उस शास्त्रीय विमर्श की कोटि तक न पहुँचा कर बौद्धिक मथन तक ही सीमित रखा है। मेर कहन का तात्पय यह न समझा जाय कि 'जयभारत म गूढ विषयो पर विचार व्यक्त नही किय गय किन्तु उन्ह शास्त्रीय रूप नही दिया, यही मुझ अभीष्ट है। वस्तु पात्र रस और उद्देश्य म 'जयभारत की महाभारत स समानता है। परिधि विस्तार को सीमित रखन के कारण वस्तु की काट छाट करके त्याग बहुत अधिक करना पडा है। जयभारत क कवि न न तो महाभारत की कथा का आनुपूर्वी अनुकरण किया है और न पर्वों क विभाजन की शली को अपनाया है। स्वतत्र रूप मे खण्ड-कथा की शली म लिखे गय विभिन्न प्रसगो को बाद म महाकाव्य क शरीर म सग्रथित किया गया है अत एक सग का दूसर सग स आकाक्षा परक सम्बन्ध नही है। सभी सग स्वतन्त्र और एक तरह स अपन म पूण हैं। औत्सुक्य की दृष्टि म यह बात महाकाव्य म त्रुटि ही समझी जायगी। महाभारत म पाठक का औत्सुक्य और कथा की आकाक्षा सतत बनी रहती है। क्षपक और अवान्तर कथा प्रसगो के होत हुए भी उसम पाठक समग्र कथावस्तु को साथ लेकर आग बढता है। जयभारत' म यह सम्बन्ध प्रारम्भ क तीन सर्गों म तो कुछ जुडता है बाद म सभी प्रकरण स्वतन्त्र हो जात है। हाँ इतना अवश्य है कि सम्पूर्ण काव्य को पढ़न क बाद महाभारत की—कौरव पाडवो की—मूल कथा का व्यापक बोध हो जाता है।

एक बात और। महाभारत का आख्यान इतना समृद्ध विशाल, शक्तिशाली और विस्मय है कि गुप्तजी सदृश प्रबन्ध-काव्य की प्रतिभा वाल कवि स उसक पृष्ठाधार पर महाकाव्य लिखन समय अधिक प्राजल प्रौढ गम्भीर, शक्तिशाली और प्रवाहपूर्ण रचना की आशा करना स्वाभाविक है। भारत क तत्कालीन

सास्कृतिक सघष का यथाथ की भूमि पर जसा सजीव वणन व्यास न किया,
वसा जयभारत म नही है। जयभारत का कवि उसका आभास द सका, यही
उसकी सफलता समभी जानी चाहिय। युगादश, युगधम और युगोचित विवेक की
रक्षा करन मे भी कवि पूण सफल हुआ है। पुरातन कथा का नवनिर्माण करन म उसन
सद्धम की जय का ही प्रतिष्ठित किया है किन्तु धम की प्रतिष्ठा भगवान् के प्रयत्न
स न होकर मानव (युधिष्ठिर) के प्रयत्न से हुई है।

महाभारत और रामायण हमारी पैतृक सम्पत्ति हैं। इस सम्पदा का उपयोग
करन का उत्तराधिकार हम वश परम्परा स उसी तरह प्राप्त है जसे वपौती का
स्वत्व बटे को सहज ही म मिल जाता है। यदि श्रीकृष्ण क द्वारा जयभारत' मे
धम रक्षा की जाती तो नर का गौरव आज हमार सामने न होता नारायण की
पूजा म ही हमारी समस्त शक्ति शेष हो जाती। कदाचित इसीलिए कवि न धम
की प्रतिष्ठा का भार नर के कधोपर रखकर उसके नरत्व को ऊँचा ही नही बनाया,
वरन् उसके महत्त्व को गौरव गरिमा से दीप्तिमान भी कर दिया है।

जयभारत म कवि न चरित्र चित्रण म कुछ अधिक स्वतन्त्रता से काम लिया
है, इसलिए महाभारत क पात्रो की आत्मा के अक्षुण्ण रहते हुए भी उनक रूप म
कहीं-कही परिवतन दष्टिगत होता है। महाभारत के चरित्र जिस सहज भाव से
जीवन क राग-द्वेष सुख-दुख पाप पुण्य को स्वीकार करक अपनी गतिविधि का
परिचय दत है उतनी सहजता हम जयभारत क पात्रो म नही दिखाई दती। एक
प्रकार की जागरूक सतकता बौद्धिकता और विवेकपरायणता स अनवरत उद्बुद्ध
य चरित्र जिस विकास पथ का अनुगमन करते है उसका सूत्र कवि अपन हाथ
म रखता है। पाठक को वह उन्ह तब सौंपता है जब उसक वांछित चरित्र गुण
उनम (पात्रो म) उभर आते हैं। कवि की यह सृष्टि पाठक के लिए सदव आनन्द
मयी हो—यह आवश्यक नही है। किन्तु गुप्तजी जस प्रबुद्ध कवि की कलम विवक
का सन्तुलन नही खाती इसी कारण उनकी पात्र सृष्टि भी सदा पाठक को मुग्ध
किय रहती है। पात्रो के उन्नयन की प्रक्रिया बौद्धिक होन पर भी कही तक हीन
नही है। इसीलिए सवदनशील पाठक उनम रम जाता है। किन्तु उन्नयन की मानवी
यता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाया जा सकता है। महाभारत म सभी प्रमुख पात्रो क
चरित्र विकास की चरम सीमा तक पहुचे है किन्तु जयभारत म युधिष्ठिर ही
एक ऐसा पात्र है जो सभी दृष्टियो म पूणता पा सका है। शेष चरित्र अद्धविकसित
रह गय हैं। स्त्री पात्रो म द्रौपदी क चरित्र को उदात्त और दुद्धष बनान म कवि
का सफलता मिली है द्रौपदी क प्रति कवि न अतिशय औदाय रखा है और उस
स्त्री रूप का आदश बनाना चाहा है। हिडिम्बा एक ही सग म वह सब-कुछ दकर

धन्यता की भागी बन जाती है जो द्रौपदी को दीघ सघर्ष के बाद उपलब्ध हुआ है। भीष्म और श्रीकृष्ण के चरित्र अपने तेज, बल पराक्रम, और शक्ति की दृष्टि से सर्वथा अप्रस्फुटित हैं।

शान्ति पर्व का अवतारणा न करके कवि ने उस विषय को छोड़ ही दिया है जो महाभारत की चिन्ता धारा का स्रोत है। शान्ति पर्व की विवेचन पद्धति 'जय भारत' में नहीं है—कथा भी दो तीन पक्तियों में कह दी गई है। शान्ति पर्व की धर्म नीति और राष्ट्र-नीति कवि को क्योंकर आकृष्ट न कर सकी, यह आश्चर्य का विषय है। शान्ति पर्व भारतीय जीवन दर्शन का एक ज्वलन्त पक्ष प्रस्तुत करता है उसकी पीठिका पर गुप्तजी सदृश नीतिवादी समर्थ कवि सुन्दर भाव-विधान कर सकता था। काव्य की यह त्रुटि इस काव्य में सबसे अधिक खटकने वाली प्रतीत होती है। इन त्रुटियों के रहते हुए भी मूल ध्येय की प्राप्ति में कवि सफल हुआ है। अन्तिम सर्ग में कवि ने 'जयभारत' 'जय जय भारत' और 'जय जय जय भारत' कहकर तीन बार युधिष्ठिर की जय का ही उद्घोष किया है। यह जयनाद युधिष्ठिर की जय के रूप में मानव की जय का प्रतीक है। काव्य और कवि-कर्म की पूर्णता की दृष्टि से 'जयभारत' में 'युद्ध' और 'स्वर्गारोहण' प्रकरण ही गुप्तजी के यश को चिरस्थायी बनाने के लिए पर्याप्त है। युद्ध सर्ग में मानव की रागात्मक प्रवृत्तियों का अन्तर्द्वन्द्व और स्वर्गारोहण सर्ग में मानव की उत्कर्ष साधना का जो रूप परिलक्षित होता है वह क्रमशः लोक (मर्त्य) और परलोक (स्वर्ग) की कल्पना में भलीभाँति मिल जाता है। युद्ध सर्ग पर काव्य को समाप्त करने पर भी मर्त्य लोक के सघर्ष द्वन्द्व का चित्र पूरा हो जाता, किन्तु स्वर्गारोहण पर समाप्त करने पर लोक परलोक दोनों की पूरी झाँकी कथा के उपसंहार के साथ सामने आती है।

सक्षेप में, 'जयभारत' राष्ट्रकवि के अर्द्धशताब्दि के साहित्यिक अनुष्ठान का क्रमिक विकास अंकित करता हुआ उनके कवि कृतित्व को पूर्णता पर पहुँचाने वाला महाकाव्य है। राष्ट्रकवि के कृतित्व का समग्र रूप में यदि एक ही रचना में परिचय पाना हो तो 'जयभारत' को ही प्रतिनिधि रचना के रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

डॉ० नगेन्द्र

२
उर्वशी : अंतर्मन्थन का काव्य-रूपक

आलोचना की प्रक्रिया के मूलत तीन अंग या सोपान है —

१ प्रभाव ग्रहण २ व्याख्यान विश्लेषण, और ३ मूल्यांकन। आज कविता और आलोचना दोनों के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं और एक ओर जहा 'नई कविता' का जोर है, वहा दूसरी ओर उसी के वजन पर 'नई आलोचना' भी जोर पकड रही है। उर्वशी का प्रकाशन इस साहित्यिक सत्य का अवश्य प्रमाण है कि कविता को 'अच्छी या बुरी' कहना जितना आसान है उतना आसान 'नई' या 'पुरानी' कहना नहीं है। इसी तर्क से मेरे लिए आलोचना का कार्य-क्रम और आलोचना की प्रक्रिया आज भी वही है। उर्वशी का मैं एक सहृदय पाठक की तरह अपने कवि मुख से सुनकर और बाद में स्वय मनोयोग के साथ पढ़कर, रस ले चुका हू और अब इस स्थिति में हू कि उसकी आलोचना कर सकू।

प्रभाव ग्रहण

'उर्वशी' के अधिकाश प्रसगों को पढने में मुझे निश्चय ही रस मिला। भाव, कल्पना और विचार से परिपुष्ट उर्वशी की कविता में भावो को आन्दोलित करने, प्रबुद्ध कल्पना के सामने मूर्त अमूर्त के रमणीय चित्र प्रस्तुत करने और विचारो को उद्बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता है। नर-नारी का प्रेम—दर्शन की शब्दावली में काम तथा काव्यशास्त्र की शब्दावली में रति—मानव जीवन की सबसे प्रबल वृत्ति है और 'उर्वशी' काव्य का यही आधार विषय है। काम की अनुभूति के सूक्ष्म प्रवर कोमल कठोर तरल प्रगाढ़, मादक-पीडक, उद्वेगकर और सुखकर, दाहक और शीतल मृण्मय और चिन्मय अनेक रूपो का उर्वशी में अत्यन्त मनोरम चित्रण है और सबसे अधिक आकर्षक है प्रेम की उस चिर अतृप्ति का चित्रण जो भोग में त्याग और त्याग में भोग अथवा रूप से अरूप और अरूप से रूप की

और भटकती हुई मिलन तथा विरह मे समान रूप से व्याप्त रहती है। भाव-संवेदन की यह अनेकरूपता अपने आप मे भी कम काम्य नही है, किन्तु इससे भी अधिक महत्त्व है उस अन्तर्दान का जो अवचेतन या अर्धचेतन मे घुमड़ने वाले इन अर्धे संवेदनों को चेतन मन के आलोक मे प्रस्तुत करता है और कदाचित् इससे भी अधिक महत्त्व है कवि की उस प्रतिभा का जो इन अरूप अनुभूतियों को कल्पना रमणीय रूप प्रदान करती है। इन सभी प्रसंगों के उदाहरण देना यहाँ संभव नहीं है—केवल तीन उद्धरण देकर मैं अपने मत को पुष्ट करता हूँ, जो क्रमशः संवेदन की सूक्ष्मता, तीव्रता और अगाढ़ शक्ति को चित्रित करते हैं

१—(क) देह डूबने चली अतल मन के अकूल सागर मे,
किरणें फेंक अरूप रूप को ऊपर खींच रहा है।

(ख) जब भी तन की परिधि पार कर मन के उच्च निलय मे
नर-नारी मिलते समाधि-सुख के निश्चेत शिखर पर
तब प्रहर्ष की अति से यों ही प्रकृति काँप उठती है,
और फूल यों ही प्रसन्न होकर हँसने लगते हैं।

२—(क) यह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की
नींद टूट जाती, रोमों मे दीपक बल उठते हैं?
यह आलिंगन अंधकार है, जिसमे बँध जाने पर
हम प्रकाश के महासिन्धु मे उतराने लगते हैं?
और कहोगे तिमिर शूल उस चुम्बन को भी जिससे
जड़ता की ग्रन्थियाँ निखिल तन-मन की खुल जाती हैं?

(ख) जला जा रहा अग्र सत्य का सपनों की ज्वाला मे,
निराकार मे, आकारों की पृथ्वी डूब रही है।
यह कैसी माधुरी? कौन स्वर लय मे गूँज रहा है
त्वचा जाल पर, रक्त शिराओं मे, अकूल अन्तर मे?
ये ऊर्मियाँ! अगाध नाद! उफ री बेबसी गिरा की!
बोले कोई शब्द? कहूँ क्या कहकर इस महिमा को?

३—उफ री यह माधुरी! और ये अधर विकच फूलों-से।
ये नवीन पाटल के दल आनन पर जब फिरते हैं,
रोम कूप, जानें, भर जाते किन पीयूष-कणों से।
और सिमटते ही कठोर बाँहों के आलिंगन में,
चढ़ इस एक पर एक उष्ण ऊर्मियाँ तुम्हारे तन की
मुझमें कर संक्रमण प्राण उन्मत्त बना देती हैं।

अनुभूति का विचार भी कम रमणीय नहीं होता—परन्तु वह सबके लिए सम्भव नहीं है। भाव का दर्शन सहजानुभूति की, जिसे दिनकर ने सम्बुद्धि कहा है प्रौढता की अपेक्षा करता है। उर्वशी के कवि की प्रतिभा इस विशिष्ट गुण से समृद्ध है। उसके अनुभूति और चिंतन-पक्ष, दोनों ही समृद्ध हैं इसलिए आवेग को विचार में अर्थात संवेदना को प्रत्ययों में और विशेष अनुभव को सामान्य ज्ञान में परिणत करने की कला में वह सिद्धहस्त है

१—प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीडा है।
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीडा है॥

२—गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देह की खोकर,
पर, हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर।

३—रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं तो और क्या है?
स्नेह का सौंदर्य को उपहार
रस चुम्बन नहीं तो और क्या है?

४—बुद्धि ग्रहण करती बखान सागर तट की सिकता का,
पर, तरंग चुम्बित सैकत में कितनी कोमलता है,
इसे जानती केवल सिहरित त्वचा नग्न चरणों की।

५—नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा शान्ति, करुणा है।
इसीलिए, इतिहास पहुँचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या कि फिर कविता बन जाता है।

इस प्रकार के प्रसंगों अथवा सूक्तियों की मार्मिकता का रहस्य यह है कि इनमें विचार अनुभूत होकर या अनुभव तर्क में पुष्ट होकर सामने आता है। केवल भावना प्राय तरल होकर बह जाती है और केवल तर्क मस्तिष्क के आकाश में तरंगें पैदा कर विलीन हो जाता है—वह हृदय का स्पर्श नहीं करता। किन्तु जब कल्पना के द्वारा इनका समन्वय हो जाता है तो दोनों का ही विशेष उपकार होता है भाव तर्क से शक्ति और तर्क भाव से रस पाकर रमणीय बन जाते हैं।

'उर्वशी' की बिम्ब-योजना अत्यन्त समृद्ध है। उसमें शब्द रूप रंग और स्पर्श के छोटे-बड़े अनेक बिम्ब हैं। इन बिम्बों की रेखाएँ कहीं सूक्ष्म-तरल कहीं तीखी और दृढ़, कहीं विराट एवं सघन हैं—इनके रंग चित्र विचित्र और भास्वर हैं। समृद्धि और वैचित्र्य में यदि व पन्त के बिम्बों से हीनतर हैं तो आयाम में उनसे बढ़कर भी हैं। इसी प्रकार यदि प्रसाद और निराला के बिम्ब विधान अपने आयाम के कारण दिनकर के बिम्ब विधान से भव्यतर हैं तो समृद्धि में

दिनकर की बिम्ब योजना भी उनसे कम नहीं है। छायावादी कवियों की अपेक्षा दिनकर का बिम्ब विधान अधिक मूर्त, प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य है। उसमें चित्रकला के साथ मूर्तिकला के गुण विद्यमान हैं—वह वायवी कम और लौकिक अधिक है। नई कविता के बिम्बों का वैविध्य, रूपरेखा की स्पष्टता और दृढ़ता तो इन बिम्बों में है किन्तु दिनकर की शुद्ध कवि रुचि ने उन्हें विद्रूप-वीभत्स, विशृंखल तत्वों से सर्वथा मुक्त रखा है। गोचर होने पर भी वे स्थूल नहीं हुए, पुनरावृत्ति दोष से मुक्त होने पर भी वैचित्र्य के मोह में वे अनगढ़ और भद्दे नहीं बने। वस्तुतः 'उर्वशी' की बिम्ब योजना अत्यन्त समृद्ध है—विराट और कोमल, उदात्त और मधुर बिम्बों का ऐसा अपूर्व संकलन आधुनिक युग के बहुत कम काव्यों में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक रंगीन चित्रशाला है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यंजनाओं से अंकित नगचित्र, रसचित्र, रंगचित्र, तलचित्र और विराट भित्ति चित्र जगमग कर रहे हैं। उर्वशी की विषय-वस्तु ऐहिक और स्थूल न होकर सूक्ष्म तथा मनोमय है, इसलिए 'उर्वशी' के कवि को उसे बिम्बित करने में सामान्य से अधिक आयास करना पड़ा है और उसका कौशल एवं सिद्धि उसी अनुपात से अधिक श्लाघ्य है।

१—रात्रि के वैभव का एक मूर्त चित्र देखिए

सम्राज्ञी विभ्राट्, कभी जाते इसको देखा है
समारोह प्रांगण में पहने हुए दुकूल तिमिर का
नक्षत्रों से खचित, फूल-कौलित झालरें विभा की,
गुँथे हुए चिकुरों में सुरभित दाम श्वेत फूलों के ?
और सुना है वह अस्फुट मर्मर कौशेय वसन का,
जो उठता मणिमय अलिन्द या नभ के प्राचीरों पर
भुकता भर, लम्बित दुकूल के मन्द मन्द घर्षण से,
राज्ञी जब गर्वित गति से ज्योतिर्विहार करती है !

२—अब आनन्द के क्षण को मूर्तित करने वाला एक बिम्ब देखिए

प्रिय ! उस पयस को समेट लो जिसमें सभय सनातन,
क्षण, मुहूर्त, संवत, शताब्दि की बूँदों में अंकित है।
बहने दो निश्चेत शान्ति की इस अकूल धारा में,
देश-काल से परे, छूट कर अपने भी हाथों से।
किस समाधि की शिखर चेतना जिस पर ठहर गई है ?
उड़ता हुआ विहंग अम्बर में स्थिर-समान लगता है।

७—और अत म एव अत्यत सूक्ष्म बिम्ब का निरीक्षण और कीजिए। अपन ही घर की भयकर उथल-पुथल का निरीह भाव मे देखन वाली औशीनरी कहती है

जो कुछ हुआ, देख उसको मैं कितनी मौन रही हू।
कोलाहल के बीच मूकता की अकम्प रेखा-सी।

बिम्ब-योजना की इस समृद्धि के लिए कल्पना के साथ ही दिनकर की समथ भाषा भी कम उत्तरदायी नही है। इस शती के चौथ दशक म छायावादी भाषा की अमामान्यता के विरुद्ध विद्रोह करते हुए उसको व्यवहार की भाषा के निकट लान का सफल प्रयत्न जिन कवियो ने किया था, दिनकर और बच्चन उनम अग्रणी थे। दोनो न सीधी अथ व्यक्ति के लिए भाषा को तयार किया किन्तु बच्चन की भाषा जहा जनभाषा का नकटय प्राप्त करने क प्रयास म सस्कृत के अपार रत्नकोष म वचित हो गई वहाँ दिनकर ने उसका भी भरपूर उपयोग किया। फलत उसम छायावाद की लाक्षणिक समृद्धि के साथ-साथ व्यावहारिक भाषा के प्रत्यक्ष प्रभाव का भी यथोचित समावेश हो गया और एक नई शक्ति एव स्फूर्ति आ गई

१—पर, सोचो तो, मर्त्य मनुज कितना मधुरस पीता है।
दो दिन ही हो, पर कैसे वह धधक धधक जीता है।
२—जाने, कितनी बार चन्द्रमा को बारी बारी से
अमा चुरा ले गई और फिर ज्योत्स्ना ले आई है।
३—पर यह परिरम्भण प्रकाश का मन का रश्मि रमण है।
४—और वक्ष के कुसुम-कुज सुरभित विश्राम भवन ये,
जहाँ मृत्यु क पथिक ठहर कर श्रान्ति दूर करते हैं।
५—हारी मैं इसलिए, कि मेरे मोहाविकल दृगों में,
खुली धूप की प्रभा, किरण कोलाहल की गडती थी।

इन उदाहरणो की भाषा म सौन्दय-समृद्धि क साथ एक माद्दव ताजगी है जो छायावादोत्तर काव्य भाषा की काम्य उपलब्धि है। किन्तु जहाँ कवि म व्यवहार की भाषा या जनभाषा का आग्रह काव्य रुचि का अतिक्रम कर उमडा है वहाँ अभिव्यक्ति नगी हो गई है

१—लगना है यह जिसे, उसे फिर नींद नहीं आती है
दिवस रुदन मे, रात आह भरने मे कट जाती है।
२—अच्छी है यह भूमि यहाँ बूढ़ी होती है नारी।

दिनकर की बिम्ब योजना भी उनसे कम नहीं है। छायावादी कवियों की अपेक्षा दिनकर का बिम्ब विधान अधिक मूर्त प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य है। उसमें चित्र कला के साथ मूर्तिकला के गुण विद्यमान हैं—वह वायवी कम और लौकिक अधिक है। नई कविता के बिम्बों का वैविध्य, रूपरेखा की स्पष्टता और दृढ़ता तो इन बिम्बों में है किन्तु दिनकर की शुद्ध कवि रुचि ने उन्हें विद्रूप-वीभत्स, विशृंखल तत्त्वों से सर्वथा मुक्त रखा है। भास्वर होने पर भी वे स्थूल नहीं हुए, पुनरावृत्ति-दोष से मुक्त होने पर भी वैचित्र्य के मोह में वे अनगढ़ और भद्दे नहीं बने। वस्तुतः 'उर्वशी' की बिम्ब योजना अत्यंत समृद्ध है—विराट और कोमल, उदात्त और मधुर बिम्बों का ऐसा अपूर्व संकलन आधुनिक युग के बहुत कम काव्यों में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक रंगीन चित्रशाला है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यंजनाओं से अंकित नग्नचित्र, रेखाचित्र रंगचित्र तैलचित्र और विराट भित्ति चित्र जगमग कर रहे हैं। उर्वशी की विषय-वस्तु ऐहिक और मूर्त न होकर सूक्ष्म तथा मनोमय है इसलिए 'उर्वशी' के कवि को उन्हें बिम्बित करने में सामान्य से अधिक आयास करना पड़ा है और उसका कौशल एवं सिद्धि उसी अनुपात में अधिक स्तुत्य है।

१—रात्रि के वैभव का एक मूर्त चित्र देखिए

सखाओ विभ्राट, कभी जाते इसको देखा है
समारोह प्रांगण में पहने हुए दुकूल तिमिर का
नभभ्रा से खचित, फूल कीलित झालरें शिखा की,
गुंथे हुए चिकुरों में सुरभित दाम श्वेत फूलों के ?
और सुना है वह अस्फुट मर्मर कौशेय वसन का,
जो उठता मणिमय अलिन्द या नभ के प्राचीरों पर
मुक्ता भर, लम्बित दुकूल के मन्द मन्द घर्षण से,
रात्रि जब गर्वित गति से ज्योतिर्विहार करती है।

२—घन आनन्द के क्षण को मूर्तित करने वाला एक बिम्ब देखिए

प्रिय! उस पत्रक को समेट लो जिसमें समय सनातन
क्षण, मुहूर्त, संवत, शताब्दि की मुद्रा में अंकित है।
बहने दो निश्चेत शान्ति की इस अकूल धारा में,
देश-काल से परे, छूट कर अपने भी हाथों से।
किस समाधि की निस्तर चेतना जिस पर ठहर गई है ?
उड़ता हुआ विनिल अम्बर में स्थिर-समान लगता है।

३—और अन्त में एक अत्यन्त सूक्ष्म बिम्ब का निरीक्षण और कीजिए। अपने ही घर की भयंकर उथल पुथल को निरीह भाव से देखने वाली औशीनरी कहती है

जो कुछ हुआ, देख उसको मैं कितनी मौन रही हूं।
कोलाहल के बीच मूकता की अकम्प रेखा-सी।

बिम्ब-योजना की इस समृद्धि के लिए कल्पना के साथ ही दिनकर की समर्थ भाषा भी कम उत्तरदायी नहीं है। इस शती के चौथे दशक में छायावादी भाषा की असामान्यता के विरुद्ध विद्रोह करते हुए उसको व्यवहार की भाषा के निकट लाने का सफल प्रयत्न जिन कवियों ने किया था दिनकर और बच्चन उनमें अग्रणी थे। दोनों ने सीधी अभिव्यक्ति के लिए भाषा को तैयार किया किन्तु बच्चन की भाषा जहाँ जनभाषा का सान्निध्य प्राप्त करने के प्रयास में संस्कृत के अक्षय रत्नकोष से वंचित हो गई वहाँ दिनकर ने उसका भी भरपूर उपयोग किया। फलत उसमें छायावाद की लाक्षणिक समृद्धि के साथ-साथ व्यावहारिक भाषा के प्रत्यक्ष प्रभाव का भी यथोचित समावेश हो गया और एक नई शक्ति एवं स्फूर्ति आ गई

१—पर, सोचो तो, मर्त्य मनुज कितना मधुरस पीता है।
दो दिन ही हो, पर कैसे वह धधक धधक जीता है।
२—जाने, कितनी बार चन्द्रमा को बारी बारी से
अमा चुरा ले गई और फिर ज्योत्स्ना ले आई है।
३—पर यह परिरम्भण प्रकाश का मन का रश्मि रमण है।
४—और वक्ष के कुसुम-कुंज सुरभित विश्राम भवन थे,
जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रांति दूर करते हैं।
५—हारी मैं इसलिए, कि मेरे क्रीडा विकल दृगों में,
खुली धूप की प्रभा, किरण कोलाहल का गहना था।

इन उद्धरणों की भाषा में सौन्दर्य-समृद्धि के साथ एक शक्ति आ गयी है जो छायावादोत्तर काव्य भाषा की काम्य उपलब्धि है। किन्तु जहाँ कवि ने उर्दू की भाषा या जनभाषा का आग्रह काव्य रुचि का अतिक्रमण कर उठता है वहाँ अभिव्यक्ति नंगी हो गई है

१—लगता है यह जिसे, उसे फिर नींद नहीं आती है,
दिवस रुदन में, रात आह भरने में कट जाती है।
२—अच्छी है यह भूमि यहाँ बूढ़ी होती है नारी।

३—तूने भी रभे निर्धिन ! क्या बातें बतलाई हैं।
४—नित्य नई सुन्दरताओ पर मरते ही रहते हैं।
—और आप ध्यान रखें कि ये उक्तिया कल्पना विलासिनी अप्सराओ की हैं ग्रामीणाओ की नहीं।

व्याख्यान विश्लेषण

उर्वशी का मूल प्रतिपाद्य क्या है? यह प्रश्न स्वभावत प्रत्येक जागरूक पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है। जसा कि कवि ने अपनी भूमिका मे स्पष्ट किया है उर्वशी का मूल विषय काम या प्रेम है—यह काव्य दर्शन और मनोविज्ञान के द्वारा जीवन के काम पक्ष की व्याख्या करता है। काम या प्रेम के अनेक रूप हैं। एक उर्वशी का प्रेम है जो शुद्ध ऐन्द्रिय भोग का प्रतीक है—उर्वशी देवलोक म मानवलोक म केवल ऐन्द्रिय सुख के सम्पूर्ण उपभोग के लिए आती है। देवसृष्टि का काम अतीन्द्रिय है जो चेतना भर उत्पन्न करता है किन्तु परितृप्ति की तन्मयता उसम नही है। ऐसा लगता है जसे उर्वशी के प्रेम द्वारा कवि ने अपने पूर्ववर्ती छाया वादी काव्य के अतीन्द्रिय शृंगार के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उर्वशी की भावना के चित्रण म कवि पर फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का भी गहरा प्रभाव है—फ्रायड की काम चेतना (लिबिडो) विषयक मौलिक धारणा उर्वशी के स्वरूप विश्लेषण म स्थान-स्थान पर मुखरित हो उठी है (देखिए पृष्ठ ६०)। काम का दूसरा रूप मिलता है पुरूरवा म। पुरूरवा का प्रेम जैसा कि मैंने अभी स्पष्ट किया है सहज मानवीय प्रेम है। मानव चेतना के आधार-तत्त्व तीन हैं—इन्द्रिया, मन और चतन्य आत्मा। इनम प्रथम दो सवस्वीकृत हैं तीसरे के विषय म मत भेद है। पुरूरवा का स्रष्टा तीसरे तत्त्व म विश्वास करता है अत प्रस्तुत प्रसग म उसे भी मान चलना होगा। आत्मा की सत्ता स्वीकार कर लेने पर इतिहास और पुराण म वर्णित शरीर और आत्मा के चिर द्वन्द्व की समस्या सामने आ जाती है। शरीर का काम विष है और आत्मा का काम अमृत है—उपनिषद के रहस्य द्रष्टा ने आत्मा के काम का उच्छ्वसित वाणी म उद्गीथ किया है—मध्य युग के मधुरासक्त भक्त न भी विरह के प्राधान्य म ही सही इसका स्तवन किया है और शरीर के काम की गर्हणा। किन्तु मानव चेतना का सम्पूर्ण इतिहास तो शरीर के काम म उद्वेलित है। फिर सत्य क्या है? दिनकर न दोनो के समन्वय म इसका अनुसन्धान किया है—समन्वय ही नही के दोनो के तादात्म्य की प्रतिष्ठा करते हैं। पुरूरवा जिस मानवीय काम का प्रतीक है वह ऐन्द्रिय होकर भी आत्मिक है पार्थिव होकर भी अपार्थिव है—अर्थात् अभिन्न मृण्मय और चिन्मय दोनो

हो है। काम का तीसरा रूप है औशीनरी का प्रेम जो निर्भोग समर्पण का प्रतीक है सम्पूर्ण आत्मदान का प्रतीक है। इसमें काम का भोग-पक्ष अनुपस्थित है केवल त्याग की ही महिमा है। अतः यह विरह प्रधान है, इसमें काम की तृप्ति नहीं उत्पन्न है। साहित्य की शब्दावली में यही आदर्श प्रेम (प्लेटानिक लव) है। सुकन्या के प्रेम में काम का एक और ही रूप मिलता है—यह काम का सफल (फलयुक्त) रूप है गार्हस्थिक रूप—जिसमें काम का पूर्ण उपभोग तो है पर वह स्वतन्त्र न होकर धर्म का ही अंग है। काम यहाँ सिद्धि नहीं है साधन है। वह अपनी सत्ता धर्म को समर्पित कर सफल हो जाता है अतः वह पूर्ण तृप्त भी है क्योंकि अतृप्ति के लिए उसमें अवकाश नहीं रह जाता।

उर्वशी में काम के ये चार प्रतिनिधि रूप हैं। कवि इनमें से किसको अन्ततः स्वीकार करता है? अर्थात् काम की इस समस्या का जो मानव-जीवन की चिरंतन समस्या है कवि क्या समाधान प्रस्तुत करता है? स्वभावतः 'उर्वशी' का अध्येता अन्त में यह माँग करता है।

काव्य की नायिका है उर्वशी—उसी से आरम्भ कीजिए। (क) उर्वशी दिव्य या अतीन्द्रिय प्रेम से कुण्ठित होकर मानव प्रेम की पूर्णता का सुख भोगने आती है—वायव्य गगन में रमकता भूमि का आनन्द लेने स्वर्ग छोड़कर पृथ्वी पर आती है। यदि उसके पक्ष को स्वीकार किया जाए तो प्रश्न का उत्तर यह बनता है कि अतीन्द्रिय प्रेम भावना और कल्पना का प्रेम सर्वथा अपूर्ण है यह चेतना में एक व्यथाभरी रिक्तता उत्पन्न कर रह जाता है परितोष नहीं कर पाता—चेतना का परितोष तो इस प्रेम में है जो अपनी पूर्णता में तन मन की समन्वित तृषा-पूर्ति का पर्याय है। काव्य में उर्वशी की प्रमुखता के आधार पर समस्या का यह एक समाधान माना जा सकता था परन्तु उर्वशी के प्रेम का अन्त तो चिरवियोग में होता है अतएव स्पष्ट है यह कवि का समाधान नहीं है। काव्य को दुःखान्त मान कर यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता था कि उर्वशी का पक्ष पूर्वपक्ष मात्र है उसका चिरवियोग अन्ततः यह सिद्ध करता है कि ऐन्द्रिय काम पूर्ण या सफल काम नहीं है। किन्तु स्वर्ग में उर्वशी की दारुण व्यथा फिर इसका निषेध कर देती है। (ख) पुरूरवा का प्रेम चिर द्वन्द्वमय मानव प्रेम है जो अरूप से रूप की ओर और रूप से अरूप की ओर भटकता रहता है। इस द्वन्द्व के कारण मिलन के तन्मय क्षणों में भी पुरूरवा बेचैन है। यह बेचैनी बराबर बनी रहती है और अन्त में पुरूरवा संन्यास ले लेता है। इससे निष्कर्ष यह हो सकता था कि मानव प्रेम अपने सहज रूप में शान्तिकर नहीं हो सकता—जब तक उसमें सूक्ष्म अन्त

विद्यमान रहेगा तब तक वैषम्य या उद्वेग बना रहेगा, सामरस्य की सिद्धि के लिए मृण्मय अंश का संन्यास अनिवार्य है। उपनिषद-काल के ऋषि और मध्ययुग के मधुरोपासक भक्त लौकिक प्रेम को स्वीकार करते हुए भी अंततः साधु ही हो जाते थे। उर्वशी काव्य को पुरूरवा की दुःखांत कथा मान लेने पर यह समाधान प्राप्त हो सकता है। किन्तु उर्वशी' काव्य की परिसमाप्ति पुरूरवा के संन्यास के साथ नहीं होती अतः कवि का यह भी अभीष्ट नहीं है। (३) तीसरा पक्ष है औशीनरी का निष्काम प्रेम ही काम की सिद्धि है—इष्ट के प्रति सम्पूर्ण आत्मदान का प्रतीक यह निर्भोग प्रेम आत्मलाभ का ही पर्याय है। स्वदेश विदेश के लौकिक प्रेमाख्यान इसी का माहात्म्य गान करते हैं और मनोविश्लेपण शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। किन्तु उर्वशी में औशीनरी की बेबसी का विस्तृत वर्णन क्या इसको स्वीकार करने देता है? (४) अन्त में सुकन्या का प्रेम है जो स्वतन्त्र न होकर धर्म (गृहस्थ धर्म) का ही अंग है—सिद्धि न होकर साधन है। उसमें उपभोग है पर उद्वेग या द्वंद्व नहीं है इसलिए वह तृप्त है। आयु के राज्यारोहण में काव्य का अंत इसकी ओर संकेत करता है कि कदाचित सुकन्या का पक्ष कवि को ग्राह्य है किन्तु काव्य में उर्वशी तथा पुरूरवा के पक्ष इतने प्रबल हैं कि उनकी तुलना में यह पक्ष बड़ा मुलायम और कमज़ोर पड़ जाता है। सुनिए—

> और पुन-कामना कहो तो, यद्यपि, यह सुखकर है,
> पर, निष्काम काम का, सचमुच वह भी ध्येय नहीं है।
> निरुद्देश्य निष्काम काम सुख की अचेत धारा में,
> सन्तानें अज्ञात लोक से आकर खिल जाती हैं।
> वारि वल्लरी में फूलों-सी, निराकार के गृह से
> स्वयं निकल पड़नेवाली जीवन की प्रतिमाओं सी।

अन्त कवि का मन्तव्य हम उर्वशी या पुरूरवा के शब्दों में ही ढूँढना होगा। उर्वशी का समाधान है

> प्रकृति नित्य आनन्दमयी है जब भी भूल स्वयं को
> हम निसर्ग के किसी रूप (नारी, नर या फूलों) से
> एकतान होकर खो जाते हैं समाधि निस्तल में,
> खुल जाता है कमल, धार मधु की बहने लगती है,
> दैहिक जग को छोड़ कहीं हम और पहुँच जाते हैं
> मानो, मायावरण एक क्षण मन से उतर गया हो।

× × ×

पर, खोजें क्यों मुक्ति ? प्रकृति के हम प्रसन्न अवयव हैं,
जब तक शेष प्रकृति, तब तक हम भी बहते जाएँगे
लीलामय की सहज, शान्त, आनन्दमयी धारा में।

और उधर पुरूरवा का समाधान है

देह प्रेम की जन्मभूमि है, पर, उसके विचरण की
सारी लीला भूमि नहीं सीमित है रुधिर-त्वचा तक।
यह सीमा प्रसरित है मन के गहन, गुह्य लोकों में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छवि आँका करती है,
और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी मुखमण्डल में
किसी दिव्य, अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है।

× × ×

यह अतिक्रान्ति वियोग नहीं, शोणित के तप्त ज्वलन का
परिवर्तन है स्निग्ध, शान्त दीपक की सौम्य शिखा में।
निन्दा नहीं, प्रशस्ति प्रेम की छलना नहीं समर्पण,
त्याग नहीं, संचय, उपत्यकाओं के कुसुम-द्रुमों को
ले जाना है यह समूल नगपति के तुंग शिखर पर,
यहाँ जहाँ कैलास प्रान्त में शिव प्रत्येक पुरुष है,
और शक्तिदायिनी शिवा प्रत्येक प्रणयिनी नारी।

'उर्वशी का पक्ष प्रकृति का पक्ष है—उसके लिए प्रकृति अर्थात् ऐन्द्रिय धरातल पर काम-सुख ही पूर्ण सत्य है, उसके आगे कुछ और का अनुसन्धान अनावश्यक है। यह सहज आनन्द अर्थात् प्रकृति के प्रति पूर्ण आत्मार्पण ही अपने सहज रूप में जीवन की सिद्धि है। सहज का अर्थ है निर्बाध और निष्काम। कामना या वासना से दूषित होकर सहज काम रूप यह अमृत गरल में परिणत हो जाता है। अतः निष्काम भाव से ऐन्द्रिय काम का आनन्द ही जीवन का चरम साध्य है। मोक्ष का अर्थ प्रकृति से मोक्ष नहीं है, कामना से मोक्ष—निष्काम आत्मार्पण ही वास्तविक मोक्ष है—शेष प्रवंचना है। पुरूरवा की भी ऐन्द्रिय काम में पूर्ण आस्था है। किन्तु उसके लिए यह साधन है सिद्धि नहीं है। वह आत्मवादी है, ऐन्द्रिय रति को वह आत्म रति की साधना मानता है—अर्थात् प्रकृति की आराधना वह ईश्वर की ही आराधना के निमित्त करता है। इस प्रकार उर्वशी और पुरूरवा के दृष्टिकोण में अन्तर यह है कि दोनों ही निष्काम आत्मार्पण को जीवन का चरम सत्य मानते हैं, भेद यह है कि उर्वशी के लिए अन्तिम सत्ता प्रकृति है—उसी के प्रति निष्काम आत्मार्पण जीवन की सिद्धि है, जब कि पुरूरवा

के लिए परम तत्त्व ईश्वर है प्रकृति के माध्यम स उसी क प्रति पूण समपण जीवन की सिद्धि है।

कवि का अपना मन्तव्य इन दोना म स कौन सा है? कदाचित् पुरूरवा का मन्तव्य ही उसका मन्तव्य है? किन्तु क्या वह मान्य है?—और क्या उवशी काव्य का सम्पूण विधान उस निभ्रान्त रूप से अभिव्यक्त एव प्रतिफलित करता है? ये प्रश्न तुरन्त ही हमारा ध्यान आकृष्ट करत ह। पर ये प्रश्न तो व्याख्यान विश्लेषण म आग मूल्याकन के अन्तगत आत ह।

मूल्याकन

पहला प्रश्न यह है कि क्या उवशी काव्य म प्रस्तुत कामविषयक उपयुक्त मन्तव्य—दोनो या उनम म कोई एक जीवन के वृहत्तर मूल्या की कसोटी पर शुद्ध ठहरता है? क्या काम भावना सम्पूणत निष्काम हो सही जीवन की सिद्धि है? इसम सन्देह नही कि काम अत्यन्त मौलिक वत्ति ह और जीवन की समृद्धि म उसका योगदान निश्चय ही सर्वाधिक है। परन्तु एक तो निष्काम काम की धारणा ही कुछ अटपटी सी है—मनोविज्ञान मनोविश्लेषण शास्त्र आदि के द्वारा वह सिद्ध नही हो सकती क्योकि काम सुख की समृद्धि का मूल आधार मानसिक ही मानना पडेगा इसीलिए काम को (ब्रह्म का) मनसा रत कहा गया है। मन क काम के बिना केवल तन के काम की स्पृहा क्या सम्भव है? तन क आनन्द म जो आस्वाद है वह तो मन की ही क्रिया है। मन का काम ही तो तन के काम को ऐश्वय प्रदान करता है—भोज्य रस म जो स्थान सुगन्ध का ह वही वरन् उसम भी अधिक महत्त्वपूण स्थान ऐन्द्रिय रस म मन क रस का है। इसलिए केवल घुटन और कुण्ठा की स्थिति को छोडकर मन के काम को गरल मानना न सत्य है, और न उचित ही। दूसरे निष्काम या सकाम कसा भी काम जीवन की सिद्धि कसे हो सकता है? जीवन क व्यापक और स्वस्थ मूल्यो के आधार पर इस प्रकार की स्थापना स्वीकाय हो सकती है? अब रहा पुरूरवा का दृष्टिकोण—अर्थात् ऐन्द्रिय रति आत्मरति की ही साधना है। आज क युग म इस तक को भी स्वीकार करना कठिन है। यह सिद्धान्त मान लिया जाए तो यह भी मानना होगा कि जीवन का चरम पुरुषाथ काम है और जो व्यक्ति ऐन्द्रिय काम म जितना लीन है उतना ही सिद्ध है—पारमार्थिक दृष्टि म और लौकिक दृष्टि स भी। आज इस जीवन-दशन को कौन स्वीकार कर सकता है और कस स्वीकार कर सकता है? मध्ययुग म भी जब जीवन अपक्षाकृत अधिक अन्तमुखी था और जीवन मूल्य भी उसी के अनुरूप थे मधुरोपासना म सम्बद्ध दाशनिक पद्धतिया पारमार्थिक दृष्टि स ऐन्द्रिय काम

को जड़ प्रकृति का अंश मानकर उसको चिन्मय आनन्द भावना का प्रेरक साधन मात्र मानकर छोड़ देती थी—सहज साधना की कुछ वाममार्गीय पद्धतियों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी ऐन्द्रिय काम को आत्यंतिक रूप में स्वीकार नहीं किया गया। अतएव उपर्युक्त दोनों में से किसी भी रूप में—उर्वशी अथवा पुरूरवा का—यह अद्‌भुत काम-दर्शन न ग्राह्य हो सकता है और न काम्य ही। हाँ, पुरूरवा के संन्यास को चरम परिणति मानकर—उसी पर काव्यार्थ को केन्द्रित कर यदि वहाँ काव्य का समापन कर दिया जाता तो अंतिम अर्थ व्यंजना बदल जाती तथा ऐन्द्रिय काम का पारमार्थिक उन्नयन—आत्मकाम में उन्नयन—सफल हो जाता और यह जीवन-दर्शन वर्तमान युग-धर्म के अनुरूप न होते हुए भी एक विशेष चिंतन परम्परा के अनुकूल अवश्य होता। परन्तु दिनकर की युग चेतना संन्यास को स्वीकार करने में असमर्थ है—कुरुक्षेत्र में हमें उसका प्रमाण मिल चुका है। युग धर्म के अनुरूप काम की परिणति का एक और रूप हो सकता है जिसका प्रतिपादन हमें सुकन्या के जीवन-दर्शन में मिलता है और अन्त में औशीनरी जिसकी ओर प्रकारान्तर से इंगित करती है: संतति द्वारा आत्म विकास। आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र भी इसका समर्थन करता है—रति की सफल परिणति है संतति और उसके द्वारा व्यक्ति के धरातल पर प्रवृत्ति का उन्नयन एवं सामाजिक धरातल पर अहं का सामाजीकरण कर मनुष्य जीवन सफल हो सकता है। दिनकर का जागरूक विचारक-कवि इस पक्ष से अवगत है और उसका प्रतिपादन उर्वशी में हुआ है परन्तु काव्य का वस्तु-विधान जिस रूप में किया गया है उसमें यह पक्ष बहुत दुर्बल पड़ जाता है और पाठक सारभूत प्रभाव के रूप में इसे ग्रहण नहीं कर पाता, क्योंकि स्पष्टतः ही यह कवि का अभिप्राय नहीं है। ऐसी स्थिति में समाधान क्या है?

वास्तव में काम को महत्पुरुषार्थ मानना और जीवन का चरम पुरुषार्थ मानना ही गलत है। जीवन का चरम पुरुषार्थ धर्म ही हो सकता है जिसमें लौकिक दृष्टि से अभ्युदय और आध्यात्मिक दृष्टि से निःश्रेयस् की सिद्धि अंतर्भूत है। अर्थ और काम उसके साधन हैं—ये दोनों ही महान् पुरुषार्थ हैं किन्तु अन्ततः साधन-रूप ही हैं—साध्य नहीं बन सकते। काम अर्थ की अपेक्षा निश्चय ही अधिक समृद्ध और काम्य है अर्थात् उसमें चिरंतन अधिक है। किंतु साध्य उसे भी नहीं माना जा सकता। मेरे मन में उर्वशी के मूल विचार की सबसे बड़ी बाधा यही है कि वह साधन में सिद्धि ढूँढ़ने के लिए प्रयत्नशील है। कामायनी में लौकिक दृष्टि से धर्म की और आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म का भी उत्सर्ग कर अन्ततः आनन्द-रूप मोक्ष को चरम पुरुषार्थ माना गया है। इसलिए उसकी परिणति मध्यवर्ती बाधाओं के रहते हुए भी सफल है। कामायनी श्रद्धा और मनु का कथानक है मनु और इड़ा का

आस्थान नहीं और उसी के अनुरूप वह पुरुषार्थ के धर्म और आनन्द पक्ष को ही महत्त्व देता है अर्थ-पक्ष को नहीं। मुझे आश्चर्य है कि 'उर्वशी' की भूमिका में कामायनी के विषय में इस प्रकार की विचित्र कल्पनाओं की आवश्यकता क्या हुई है।

तब फिर कवि का समाधान क्या है ? कवि ने भूमिका में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि 'उर्वशी में वह कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका। और वस्तु स्थिति यही है। दिनकर द्वन्द्व का कवि है समाहिति का कवि नहीं है समस्या के सम्पूर्ण उद्वेलन का अनुभव कर प्राणों के पूरे आवेग के साथ अत्यन्त प्रभावमय अभिव्यंजना करना उसके लिए जितना स्वाभाविक है समाधान प्रस्तुत करना उतना नहीं। इसलिए दिनकर के काव्य में स्वानुभूति का बल है और आत्मस्वीकृति की स्वाभाविकता भी उसे प्राप्त है। द्वन्द्व उसका अनुभूत है, समाधान अनुभूत नहीं है—विचार के द्वारा समाधान वह भी प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु वह करना नहीं चाहता। उर्वशी काव्य का प्रभाव इसी तथ्य की पुष्टि करता है—उसमें आतमन्थन की अद्भुत शक्ति है किन्तु चित की समाहिति उसके द्वारा सम्पन्न नहीं होती। उद्वेलक प्रभाव की दृष्टि से 'उर्वशी' निश्चय ही अत्यन्त प्रबल काव्य है—छायावादोत्तर युग में ऐसा प्रबल काव्य हिन्दी में दूसरा नहीं लिखा गया और जहाँ तक मेरा ज्ञान है (यद्यपि यह ज्ञान अनुवाद पर आश्रित और अत्यन्त सीमित है) अन्य भारतीय भाषाओं में भी इतनी प्रबल समसामयिक रचना कदाचित् नहीं है।

एक प्रकार से उर्वशी की समीक्षा यहाँ पर भी समाप्त हो सकती है। परन्तु मुझे लगता है कि मैं अभी अपना मन्तव्य पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाया और उसे यहीं पर छोड़ देने से उर्वशी का मूल्यांकन शायद अधूरा रह जाएगा। मेरे सामने अब यह प्रश्न उठता है कि काव्य के मूल्यांकन में समाधान का क्या स्थान है ? रस के साहित्य में मैं नैतिक उद्देश्य अथवा समाधान का कायल नहीं हूँ। इस प्रकार का समाधान कला के उत्कर्ष में बाधक ही होता है। किन्तु समाधान का यह तो स्थूल अर्थ हुआ, अपने सूक्ष्म अर्थ में वह अन्विति का पर्याय है और प्रत्येक कलारूप के लिए अन्विति की अनिवार्यता असंदिग्ध है। कला के मूलाधार के विषय में यों तो अनेक मत प्रचलित हैं किन्तु यह मत प्रायः सर्वमान्य कम-से-कम बहुमान्य, अवश्य है कि कला का प्राणतत्त्व है सामंजस्य अर्थात अनेकता की एकता में परिणति। अतिवादों के इस युग में यूरोप में और इधर भारत में भी इस मत के विरोध में अनेक विचित्र स्थापनाएं हुई हैं जो नाना प्रकार के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है कि सामंजस्य या

एकान्विति का अनुमधान एक कृत्रिम कला चेष्टा है—आधुनिक जीवन की विकीणता ही आज के जीवन एव कला का सत्य ह। इन स्थापनाओ के खण्डन मण्डन के लिए यहा अवकाश नही ह और वास्तव म कृति तथा विकृति के भेद का लोप करने वाली इन अतिवादी धारणाओ का प्रतिवाद करना प्रस्तुत प्रसग मे आवश्यक भी नहीं ह क्याकि दिनकर के कला सस्कार निश्चय ही इस प्रकार क अतिवाद से मुक्त है। अत यदि सामजस्य कला का आधारतत्त्व ह तो उवशी के वस्तु विधान म उसके अन्तरग अर्थात 'विचार' और बहिरग अर्थात काव्यरूप —दोना म एकान्विति ढूढन का प्रयास कला रसिक पाठक के लिए स्वाभाविक है—और यही बाधा खडी हो जाती ह क्योकि उवशी के मूल विचार तथा उसको प्रतिफलित करने वाले वस्तु विधान म अन्विति नही ह विचार का अन्वय भग कला रूप की अन्विति का भी भग कर दता ह। यथाथ दृष्टि स यदि कवि द्वन्द्व को ही अन्तिम सत्य मान लेता और पुरुरवा क सन्यास म ही इस प्रणय कथा का विसजन कर दता तब भी कला रूप की पूणता बनी रहती। किन्तु उसके आनन्दवादी सस्कार समाधान क लिए आकुल और विपन्न प्रयास करत ह। इसस एक ओर जहा उवशी की सुदर कचन प्रतिमा म, पूण होत होते दरारें पड जाती हैं वहा दूसरी ओर सहृदय पाठक क चित्त की समाहिति भी बिखरने लगती ह। इसीलिए सामयिक हिन्दी काव्य की यह श्रेष्ठ उपलब्धि प्रबन्ध म अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध एव प्रबल होन पर भी अपने समग्र रूप म न कामायनी की श्रेणी म आती ह, और न 'प्रियप्रवास' तथा 'साकेत' की श्रेणी म।



श्री इलाचन्द्र जोशी

३

लोकायतन : बोध के शिखर का महाकाव्य

'लोकायतन' हिंदी के मध्ययुगीन और आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा के साथ एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और नवीनतम कड़ी के रूप में जुड़कर हमारे सामने आता है। इस महाकाव्य की विशिष्टता का एक कारण यह है कि इसमें पंतजी की जीवनव्यापी साधना एक ऊँचे धरातल पर उभरकर समग्र युग के बिखराव को समेटती और सजाती हुई अपनी सिद्धि को महाकाल के परिप्रेक्ष्य में लाकर खड़ा कर देता है।

विश्व इतिहास का वर्तमान युग कोई साधारण युग नहीं है। यह एक वैज्ञानिक सभ्यता के विकास की चरमावस्था का युग है जो हजारों वर्षों से विकास प्राप्त महान् मानवीय मूल्यों को कुचलकर सामूहिक मानवीय प्रगति की प्राकृतिक रेखा को बीच ही में लाँघकर, कुछ विचित्र ही प्रकार की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उलझनों में अपने आपको उलझाता हुआ महाविनाश की मरीचिका की मोहक ज्वालाओं की ओर तेजी से भागता चला जा रहा है। सारा युग केवल क्षणों के क्षीण पुल पर पागलों की तरह कभी सामने की ओर दौड़ता है, कभी बीच ही में टकराकर गिर पड़ता है, कभी पुल को लाँघकर दायीं ओर वाले महागर्त में कूदने का प्रयास करता है और कभी बायीं ओर उछलने लगता है।

इस नितांत क्षणवादी युग को भूत और भविष्य के दो दीर्घ विस्तृत छोरों की छाया और प्रकाश के माध्यम से देखे बिना उसका सटीक मूल्यांकन असंभव है। क्षण के बीच में फँसी हुई दृष्टि केवल क्षण-क्षण की उलझनों के जाल में ही उलझ कर रह जाती है। ऊँचाई से संपूर्ण युग का सम्यक् सर्वेक्षण करने की क्षमता उसमें नहीं रहती। कोई विरला महाकवि ही व्यापक विहगावलोकन के उस उच्च बिंदु पर खड़ा होने का साहस कर सकता है जहाँ से काल के बड़े-बड़े

खण्डों की भावी विस्तार से देखी जा सकती है। उसी बिंदु से उन्हीं महानतम खण्डों के बीच बुलबुलाता हुआ वर्तमान युग अपने ह्रास और विघटन की पूरी प्रक्रियाओं के साथ महासागर के बीच एक छोटे-से द्वीप की तरह तैरता हुआ अपने वास्तविक रूप में दिखायी दे सकता है। लोकायतन का कवि उसी उच्च बिंदु पर खड़ा है। वहीं से वह युग युग से स्पन्दित भारतीय मानस का मंथन करता हुआ वर्तमान युग की विघटित परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण और विश्लेषण के साथ ही भावी युगों के अधिमानस के पूर्ण विकसित रूप की मांगलिक भावी प्रस्तुत करता है।

पूर्वस्मृति या आस्था शीर्षक में लोकायतन का पूर्व द्वार खुलता है। मूर्तिमती पृथ्वी की करुणा सी, हिम शिखरों पर आसीन शरदकालीन उषा सी एक अपूर्व ज्योतिर्मयी, ध्यान मग्ना नारी मूर्ति पाठक की आंखों के आगे उभरती है। युग संध्या की घनी सुनहली तमिस्रा की तरह उसके कंधों पर काले कुंतल लहरा रहे हैं। यह है पृथ्वी पुत्री सीता जो रामायण के अन्त में भूगर्भ में प्रवेश करने के बाद युग युग से भू-मानस में उपचेतना के रूप में छायी हुई है और वहीं से ज्ञान ज्योति की नयी-नयी लहरों के स्फुरण द्वारा मानव मन की अन्ध रूढ़ियों का विनष्ट करती हुई युग-युग में घोर ह्रास और विनाश की काली छायाओं के बीच भी स्वर्ण किरणें बिखेरती रहती है।

सीता की उस एकाग्र ध्यानावस्था में सहसा दीप्त नीलमणि पर्वत के समान मनमोहन राम का आविर्भाव होता है। सीता को चिंतित और विचलित-सी देख कर राम उन्हें समझाते हैं कि आज के नये प्रकाश में नये मानव को गढ़ना है इसलिए बीती बातों को भूलकर नये कल्प की बात सोचनी चाहिये। आज नये कल्प को जन्म देने के लिए पृथ्वी प्रसव-व्यथा से पीड़ित हो उठी है :

नये कल्प की प्रसव-व्यथा पृथ्वी को,
छिड़ा निखिल जग में बाहर भीतर रण।

सरयू तट के इस संध्या में जबकि बाहर और भीतर रण छिड़ा हो, मानव जाति दिशाशून्य हो गयी है। उसे नयी दृष्टि देनी है नया बोध देना है—ऐसी दृष्टि, जो एक ओर देशकाल के पुलिनों को डुबाकर उसे जीवन की विराटता के दर्शन करा दे और दूसरी ओर उसी विराट के बीच में स्थित वर्तमान क्षण को ठोस आधार दे सके जो जड़ और चेतन, इन्द्रिय और आत्मा, स्वर्ग और मर्त्य, व्यक्ति और समूह, उपचेतना और ऊर्ध्व चेतना के बीच का भेद और द्वंद्व मिटा कर सारे मानस में एक नये और महत् सांस्कृतिक चेतन के बीज बो सके। और तब युग-युग की साधनाओं के प्रतीक, आत्मिक विभूतियों प्रकट होते हैं जो जातियों,

राष्ट्रों और शिविरों में विभाजित आज की विनाशधर्मी मनुष्यता की दुख-गाथा सुनकर मन के वन में ध्यानावस्थित न रह सके। वाल्मीकि कहते हैं

आशंकित जन, श्वापद-काल भयानक,
प्रलय सृजन में छिड़ा विश्व घातक रण
फिर पाताल प्रवेश नहीं कर जाये
धरा-चेतना, चिंतित मन इस कारण।
महाह्रास छा जाय न विघटित भू पर
उबर न पाये शतियों तक मानव मन,
सावधान करने आया मैं जन को,
इस जगत पर घिरे घोर संकट घन।'

आदिकवि अपनी अनादि महिमा से घोर तमसाच्छन्न युगों की बीभत्स पंकिलता से अपरिचित नहीं है। वह स्वयं डाकू का जीवन बिता चुका है और इस कारण मानवीय अवचेतना की अंधी गलियों में भटक चुका है

डाकू से कवि बना खींच करुणा-धन
ज्ञात क्षुद्रता विकृति मुझे जीवन की,
अंध स्वार्थ की काम गुहा गलियों में
ज्योति भटकती पग पग पर भू मन की

और उसी अध चेतना से उबरकर उसी के माध्यम से उसने महाजीवन की उस दिव्य महाज्योति की विराटता के दर्शन किये हैं जो युग युग में ह्रास और विकास के उल्टे सीधे चक्करों में भटकती रहने वाली मानवता का अंतिम लक्ष्य है। इसीलिए वह आज एक नयी गाथा रचकर महासत्य पर आधारित एक नया स्वप्न गढ़कर, सामूहिक मानव को एक नयी दृष्टि देने के लिए उत्सुक है। वह चाहता है

भूत, भविष्यत् वर्तमान के तम में
देख सकूँ मानव का श्री-नव आनन।
स्वप्नों की निधि से गढ़ सकूँ धरा मन
अंतर आभा का जो शोभा-दर्पण।
बंधे प्रीति के स्वर्ण-सूत्र में भू मन
एक बनें जग, बहुदेशों में खंडित,
देश-जातियों से निखर मानवता,
विविध धर्म संस्कृति हो विश्व समन्वित।

सर्वनाश के अणु उदजन आयोजन
मनुज सिंधु-जल-तल में करें निमज्जित,
हो रचना संकल्प महत् जन क्षमता
लोक क्षेम हो युग, विकृति पर जय नित।

केवल आदिकवि ही नहीं सारी प्रकृति, सारी धरती आज के मनुष्य के बौद्धिक विघटन, अनास्था, नैतिक सवता, आर्थिक, राजनीतिक और जातिगत संकीर्णता और सांस्कृतिक दृष्टिभ्रम देखकर आशंकित हो उठी है।

पृथ्वी सीता को स्नेह से गोदी में भर अपनी उस आशंका की बात कहती है

आर्द्र कंठ से बोली धरती, बेटी!
ज्ञात तुम्हें मेरे मन का संघर्षण,
युग-संध्या जब, मची क्रांति अग जग में
मचल रहा मेरे भीतर नव जीवन।
नये कल्प का जन्म, क्षितिज मुख स्वर्णिम,
बाहर भीतर घटते नव परिवर्तन।
× × ×
क्रुद्ध शेष फूत्कारों से दिशि धूमिल
महा-मृत्यु-मेघों से प्रथित अम्बर,
मुझे विरोधी शिविरों का भय भ्रम हर
सृजन शांति स्थापित करनी भू-तल पर।

पृथ्वी की अपनी वैयक्तिक पीड़ाएँ भी हैं। जिस आत्मचेतनशील प्राणी—अर्थात् मनुष्य—को उसने अपने अन्तर के स्नेह रस में लालित करके उसके विकास में सारा करमा तक पूरा सहयोग दिया है वह अपनी ही आत्मघाती बुद्धि से अपने परम ह्रास और विनाश की योजना स्वयं बनाये बैठा है। थोड़े ज्ञान और कुछ अत्यन्त उपेक्षणीय कणों की पूजा लेकर उसने पृथ्वी के विकासशील और सतत गतिशील जीवन की सहज प्रगति के पथ को रुंधने के प्रयत्नों में न मध्य युगों में कोई कसर उठा रखी, न आज।

अपने अभ्यस्त धाये, झूठे और खंडित ज्ञान के दर्प में इतरा कर पिछले युगों के तथाकथित ज्ञानियों और आज के जड़-तत्त्ववादी वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के विराट जीवन-तंत्र को अत्यन्त संकीर्ण बनाकर उसकी भीतरी और बाहरी विकास सम्बन्धी योजनाओं को अत्यन्त सीमित मान लिया है। मनुष्य ने अपनी विकृत बुद्धि के दंभ से अपने को प्रकृति और जीवन का नियन्ता मान लिया है और वह अपने

राष्ट्रों और शिविरों में विभाजित आज की विनाशधर्मी मनुष्यता की दुःख-गाथा सुनकर मन के वन में ध्यानावस्थित न रह सके। वाल्मीकि कहते हैं

आशंकित जन, आपद काल भयानक,
प्रलय सजन में छिड़ा विश्व घातक रण
फिर पाताल प्रवेश नहीं कर जाये
धरा चेतना, चिंतित मन इस कारण।
महाह्रास छा जाय न विघटित भू पर
उबर न पाये शक्तियों से मानव मन,
सावधान करने आया मैं जन को,
देख जगत पर घिरे घोर संकट घन।'

आदिकवि अपनी अनादि महिमा से घोर तमसाच्छन्न युगों की वीभत्स पंकिलता से अपरिचित नहीं है। वह स्वयं डाकू का जीवन बिता चुका है और इस कारण मानवीय अवचेतना की अंधी गलियों में भटक चुका है

डाकू से कवि बना क्रौंच करुणा-वश
ज्ञात क्षुद्रता विकृति मुझे जीवन की,
अंध स्वार्थ की काम गुहा गलियों में
ज्योति भटकती पग पग पर भू मन की

और उसी अघ-चेतना से उबरकर, उसी के माध्यम से उसने महाजीवन की उस दिव्य महाज्योति की विराटता के दर्शन किये हैं जो युग-युग में ह्रास और विकास के उल्टे-सीधे चक्करों में भटकती रहने वाली मानवता का अंतिम लक्ष्य है। इसीलिए वह आज एक नयी गाथा रचकर महासत्य पर आधारित एक नया स्वप्न गढ़कर सामूहिक मानव को एक नयी दृष्टि देने के लिए उत्सुक है। वह चाहता है

भूत, भविष्यत् वर्तमान के तम में
देख सकूँ मानव का श्री-नव आनन।
स्वप्नों की निधि से गढ़ सकूँ धरा मन
अंतर आभा का जो शोभा दर्पण।
बंधे प्रीति के स्वर्ण-सूत्र में भू मन
एक बन जग, बहुदेशों में खंडित,
देश-जातियों से निखरे मानवता,
विविध धर्म संस्कृति हों विश्व समन्वित।

सर्वनाश के अणु उदजन आयोजन
मनुज सिंधु-जल-तल मे करें निमज्जित,
हो रचना सकल्प महत् जन क्षमता
लोक क्षेम हो ध्रुव, विकृति पर जय नित।

केवल आदिकवि ही नहीं सारी प्रकृति, सारी धरती आज के मनुष्य के बौद्धिक विघटन, अनास्था, नैतिक जड़ता, आर्थिक, राजनीतिक और जातिगत संकीर्णता और सांस्कृतिक दृष्टिभ्रम देखकर आशंकित हो उठी है।

पृथ्वी सीता को स्नेह से गोदी में भर अपनी उस आशंका की बात कहती है

आर्द्र कंठ से बोली धरती, बेटी!
ज्ञात तुम्हें मेरे मन का संघर्षण,
युग-संध्या जब, मची क्रांति अग जग मे
मचल रहा मेरे भीतर नव जीवन।
नये कल्प का जन्म, क्षितिज मुख स्वर्णिम,
बाहर भीतर घटते नव-परिवर्तन।
× × ×
क्रुद्ध शेष फूत्कारों से दिशि धूमिल
महा-मृत्यु मेघों से मथित अंबर,
मुझे विरोधी शिविरों का भय भ्रम हर
सृजन शांति स्थापित करनी भू-तल पर।

पृथ्वी की अपनी व्यक्तिगत पीडाएँ भी हैं। जिस आत्मचेतनशील प्राणी—अर्थात् मनुष्य—को उसने अपने अंतर के स्नेह रस से लालित करके उसके विकास में लाखों वर्षों तक पूरा सहयोग दिया है वह अपनी ही आत्मघाती बुद्धि से अपने चरम ह्रास और विनाश की योजना स्वयं बनाये बैठा है। किन्तु काल के कुछ अत्यन्त उल्लेखनीय क्षणों की पूजा लेकर उसने पृथ्वी के विकासमान और सतत गतिशील जीवन की सहज प्रगति के पथ की स्पंदन की चेतना में न मध्य युगों में कोई बात उठा रखी, न आज।

अपने अत्यन्त थोथे, अधूरे और खण्डित ज्ञान के दर्प से इतराकर पिछले युगों के तथाकथित ज्ञानियों और आज के जड़-तत्त्ववादी वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के विराट जीवन-क्षेत्र को अत्यंत संकीर्ण बनाकर उसकी आंतरिक और बाह्य विकास-सम्बन्धी योजनाओं को अत्यन्त सीमित मान लिया है। मनुष्य ने अपनी विकृत बुद्धि के दंभ से अपने को प्रकृति और जीवन का नियंता मान लिया है और वह अपने

अत्यंत सतही माना म उसका मूल्यांकन करना चाहता है। यह दुर्मति उस बडी तेजी स महानाश की ओर खींचे लिए जा रही है। पृथ्वी गहरी वेदना क साथ कहती है

मुट्ठी भर मन के जगमग माना मे
किया बौद्धिकों ने मेरा मूल्यांकन।
तत्वविदो ने मत्य धाम बतलाया
जरा रोग भय पाप ताप का प्रांगण।
धर्मज्ञो ने त्याग विराग सिखाकर
कहा व्यथ जग, मिथ्या माया बन्धन,
मुक्तिमार्ग विज्ञापित कर यतियो ने
चाहा जन धरणी बन जाये निर्जन।
स्वर्ग नरक,जड चेतन द्वन्द्वो मे रत
ज्ञान बाँध पा सके न मेरा परिचय,
तकवाद मे खोये समझ न पाये
बुध समग्रता मे मेरा महदाशय!

इस प्रकार लोकायतन मे कवि न पृथ्वी की अतर्वेदना को एक ज्वलत और जीवत हृदय की यथाथ पीडा क रूप म उभारकर रखा है और पृथ्वी की इस आत्म अभिव्यजना द्वारा उसने अपन दशन का पूर्वाभास हम दिया है। जिन आलोचको का आज भी यह मत है कि कवि पत केवल रहस्यवादी स्तरो की वाष्पीय ऊँचाइयो म उडान भरते है और पृथ्वी क ठोस और यथाथ जीवन स उनका कोई घनिष्ठ लगाव नही है उन्ह उक्त पक्तिया पर ध्यान देना चाहिये।

पत जी न तो जड तत्त्ववादी बौद्धिको के जीवन सबधी थोथ विश्लेषण क कायल हैं और न तात्त्विको के इस मतवाद के कि पृथ्वी का जीवन केवल रोग शोक दुख-दैन्य और पाप-ताप म आक्रान्त रहता है। जीवन के गहन स्तरो के विश्लेषण और भवसागर क प्रचड मथन क फलस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर पहुच है कि पृथ्वी क धूल भरे जीवन की सहजता म ही उसका नास्य श्यामल आंचल सुशोभित है। और इस रहस्यमय आंचल की छाया क नीचे युग युग का मगल मय जीवन धडक रहा है। ऋत के चिदानदमय प्रकाश स प्रेरित होकर यह धरती जन जीवन म अपनी पूर्णता बिखरती जाती है। वह कहती है

मैं हूँ जीवन-क्षेत्र, बडी मैं मन से,
क्षण परिमित म हूँ मैं नित्य अपरिमित,

ऋत प्रकाश मे मुझको जन-जीवन मे
सृजन-पूर्णता करती अपनी निर्मित ।

युग युग मे यह धरती विकास और ह्रास के चक्र-नेमि क्रम मे जीवन के नये नये रूपों की आरती थाल सजाती हुई अनन्त सृष्टि-योजना का अभिनन्दन करती रहती है

युग मन की प्रतिमा कर मेरा जीवन
बढ़ता उठ-गिर यत्न सिद्ध निजपथ पर
नया जन्म ले मेरा अन्तर्यौवन,
क्षणिक नित्य के शून्य पुलिन देता भर ।

सीता इस अनन्त जीवन-सम्पन्ना धरती माता के अन्तर मे निहित चिन्मणि है जो अपनी अमर शिखा से पृथ्वी के जीवन को जगर-मगर करती रहती है। सीता जिस उपचेतना की प्रतीक है वह नित-नयी भावज्योति से युग युग मे मानव मन को उद्भासित करती रहती है।

धरती के अन्तर मे और मानव मन के अन्तर मे निहित मूल शक्ति है निश्चेतना जिसके भीतर सृष्टि के अनन्त रहस्य स्तब्ध होकर छिपे हैं। यह निश्चेतना चिर पावक की लपटों मे धधकती हुई नित-नये रूपों मे विकसित होती हुई उपचेतना मे पुन मिल जाती है और फिर वहाँ से निरन्तर ऊपर चढ़ती हुई ऊर्ध्वचेतना के शुभ्र प्रकाश मे परिणत होती जाती है। उसी ऊर्ध्व चेतना के निःसीम शान्तिमय सित आकाश मे

उतर रही नि स्वर सहस्र ऊषाएँ
क्षण का वातायन शाश्वत मुख-शापित ।

× × ×

टूट रही भावी विद्युत्-पावक-सी,
फूट रहे क्षितिजों से स्वर्णिम निर्झर ।

इसलिए आज के महाकवि के ऊपर यह दायित्व आ पड़ा है कि वह वर्तमान युग के निश्चेतन भू जीवन के भीतर चिरविस्फोट उत्पन्न करके चेतना की ज्योतित मणि शिखाओं द्वारा नयी आशा और नये हृदय का प्रदीप्त प्रकाश स्फुरित करे और इस प्रकार कल्याण की इस संध्या मे मानव-जीवन को विध्वंस और अशान्ति के महागह्वर मे विलीन होने से बचाये। पिछले युगों की मूर्च्छा से उबरकर नयी आस्था नयी लगन और नये धैर्य से नव-जीवन निर्माण की ओर निश्चित कदम बढ़ायें। और इस प्रकार जड मृण्मय के भीतर छिपे हुए चिन्मय शिव को भावी जन-कल्याण के हित आज निखारें। क्योंकि जीवन रूपी पत्थर

के भीतर निहित अमृत रस का स्रोत निकालने और उस मूल महारस के उत्पादक—परमेश्वर-तत्त्व—को भी उसी पाहन के बंधन से मुक्त करने के उद्देश्य से मुनि वाल्मीकि, लक्ष्मण और उर्मिला धरा पर फिर अवतरित होते हैं, जिन्हें चैतन्य रूपिणी सीता और जन शक्ति के प्रतीक राम की प्रेरणा प्राप्त है। राम सीता से कहते हैं

त्याग शुभ्र ऊर्मिला स्फटिक रस पात्री
स्नेह-दुग्ध घट सौम्य सुमित्रानन्दन,
सृष्टि-मंच की निरुपम नटी, प्रिय तुम,
रचो भूमिका मानवता की नूतन।

और इस भूमिका के गायक हैं वही आदिकवि वाल्मीकि जो नये नये युगों में नये-नये कवियों की आत्माओं में उतरकर नित नयी प्रेरणाएं प्राप्त और प्रदान करते चले आ रहे हैं।

यह है 'लोकायतन' की भूमिका जिस पर तनिक विस्तार से इसलिये लिखना पड़ा है कि इसी मूल ढांचे के भीतर इस महाकाव्य की सारी परिकल्पना और सारा दर्शन समाया हुआ है।

वर्तमान युग विश्वव्यापी उथल पुथल का युग है। दूसरे महायुद्ध के बाद सारे संसार में ऐसी उलझी हुई समस्याएं और संक्रान्तिपूर्ण परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं कि उनके समुचित समाधान या सही व्यवस्था के लिये कोई रास्ता ही अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं को नहीं सूझ पा रहा है। द्वितीय महायुद्ध ने मनुष्य को एक ओर एक लम्बी परम्परा से काटकर अलग खड़ा किया है और दूसरी ओर किसी नयी व्यवस्था की स्थापना या किसी नयी और स्वस्थ परम्परा के निर्माण के लिये कोई भीतरी प्रेरणा या लगन मनुष्य अपने भीतर नहीं पा रहा है। फलस्वरूप आज केवल राजनीतिक या आर्थिक क्षेत्रों में ही हम अव्यवस्था, अशांति और असंतोष नहीं पाते, बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी एक विचित्र विशृंखलता, लक्ष्यहीनता, आत्म विद्रोह, जीवन और प्रकृति के नियमों के अस्तित्व या उपयोगिता के प्रति संशय, विराट सृष्टि की किसी नियामिका शक्ति के प्रति मूलगत अविश्वास और अनास्था का बोलबाला सर्वत्र दिखायी देता है।

मनुष्य आज लाखों वर्षों से चली आ रही क्रमिक विकास सम्बन्धी अपनी प्रगति के इतिहास के प्रति केवल उदासीन ही नहीं अविश्वासी भी हो चला है। विकास के युगों के बाद ही बीच-बीच में ह्रास के जो युग संसार के इतिहास में आते रहे हैं आज वह केवल उन्हीं पर ध्यान दे रहा है। मानवीय मूल्यों के विश्वव्यापी विघटन के जो लक्षण आज बड़ी स्पष्टता से सबके सामने प्रकट हो

रहे हैं, उन्हीं को स्थायी सत्य मानता हुआ आज का बुद्धिवादी मानव मनुष्य जाति की अन्तिम असफलता और अनतिदूर भविष्य में धरातल से उसके चिर विलयन के सिद्धान्त पर विश्वास करने लगा है। जड़ विज्ञान की हवाई प्रगति में इतराया हुआ आज का यान्त्रिक मानव स्वच्छन्दवादी कच्ची राजनीति के हाथ अपनी आत्मा को बेच चुका है। अपने क्षणवादी जीवन की प्रतिदिन की तुच्छता में लिप्त होता हुआ अपनी अहम्मन्यता और विकृत आत्म विद्रोह के फलस्वरूप प्रकृति और ईश्वर से कटकर, सामूहिक जीवन से छिन्न होकर, अपने अन्तर के वैयक्तिक कोटर में मुँह छिपाये, प्रकृति की मूल प्राणशक्तियों के प्रति श्वान की तरह भूँक रहा है।

ऐसे मनुष्य पर, ऐसे युग पर किसी आस्था की वाणी का कोई प्रभाव पड़ सकता है यह विश्वास करना कठिन है। ऐसा युग ईश्वर के नाम से ही इस कदर बिदकता है जैसे वह कोई मृतक लोक की प्रेतात्मा हो। अनन्त चिदाकाश में मुक्त आनन्दमय उड़ान भरने वाली चेतना की चर्चा मात्र को वह पागलों का प्रलाप मानता है। जीवन विकास के मांगलिक उदय पर से उसका विश्वास उठ गया है, प्रकृति की कल्याणकारी योजनाओं को वह पैरों-तले रौंदकर ठुकरा देना चाहता है। ऐसे विरोधी आत्म विद्रोही और पूर्वाग्रही वातावरण में कोई कवि—चाहे वह आदिकवि ही क्यों न हो—क्या सन्देश सुनाये और किसको?

पर जब चारों ओर वज्रपात की संध्या का धुँधलका छाया हो, ह्रास और विनाश की व्यापक योजनाओं के ऊपर प्रलय मेघों में घिरी कराल काल रात्रि सघन से सघनतर होती हुई घिरती चली आ रही हो, तब किसी महाकवि की वाणी अपने भीतर की घुटन में बँधी भी नहीं रह सकती। वह शत सहस्र धाराओं में फूटकर ही रहेगी, फिर चाहे कोई उसका समुचित उपयोग करना चाहे या नहीं। लोकायतन सामूहिक जीवन की ऐसी ही परिस्थितियों में लिखी गयी महाकृति है जो कवि की उपचेतना के चारों ओर घिरी हुई दीवारों को तोड़ फोड़कर, लाँघकर, बाहर के मुक्त और विस्तृत प्रांगण में असंख्य धाराओं में प्रवाहित होकर उदात्त भावों, प्रतीकात्मक चित्रों और गहन विचारों के रंग बिरंगे फूलों को सहज भाव से बिखराती चली जाती है।

लोकायतन में कथा-तत्त्व बहुत ही सरल और साधारण होते हुए भी सूक्ष्म है। एक सशक्त तन्तु से इस काव्य-कथा का पटल बुना गया है जो मकड़ी के जाले के तन्तु से भी अधिक सुकुमार है। यह सहज कथा-पटल एक ओर जहाँ कथा के माध्यम से सुन्दर काव्य-गरिमामय रूप आकार और दृश्य-रंगीनमय चित्र प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर संक्रमणकालीन युग में जन मानस में उसका स्वर

वाली ह्रास मूलक प्रवृत्तियों के पारस्परिक टकराव द्वारा उत्पन्न उन्नतिशील प्रवृत्तियों की अस्पष्ट अकुलाहट को भी स्पष्ट करता है।

कथानक संक्षेप में इस प्रकार है सुन्दरपुर नामक जनपद रोग शोक, दुःख दैन्य और अज्ञान से घिरा था। जनता का यह दारिद्रय युवा कवि वंशी के हृदय में शूल की तरह चुभा करता है। अपने समवयसी साथी हरि को पकड़कर वह निश्चय करता है कि इस दीन हीन स्थिति से सुन्दरपुर का हर हालत में उबारना होगा। पर जब तक देश अ-परतन्त्रता की कड़ियों से जकड़ा है तब तक कवि का एक ही लक्ष्य हो सकता था—देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करना। गांधीजी की प्रेरणा से सारा देश जग उठा था और वंशी हरि और हरि की बहन सिरी के प्रयत्नों से वह जड़ता ग्रस्त जनपद भी सजग हो उठता है। गांधीजी की दण्डी यात्रा के फलस्वरूप सारा देश हिल उठा था और स्वतन्त्रता आन्दोलन ने पूरा जोर पकड़ लिया था। वंशी के नेतृत्व में सुन्दरपुर में भी जागृति के चिह्न दिखायी देने लगते हैं। स्त्रियों और पुरुषों में नया उत्साह और नयी चेतना जग उठती है। सिरी (या श्री) की लगन के फलस्वरूप स्त्रियों के लिये एक कला शिविर की स्थापना की जाती है जहां उन्हें सब प्रकार की उपयोगी शिक्षा दी जाती है। एक गृह उद्योग शिविर भी खोल दिया जाता है जिसमें चर्खा कातने तकलियां चलाने और कपड़े बुनने के कामों में ग्रामवासी व्यस्त रहने लगते हैं। लोग तालियां में रचे गये वंशी के गीत प्रत्येक खेत और खलिहान में गाये जाने लगते हैं। साथ ही स्वतन्त्रता संग्राम की गति भी तीव्र से तीव्रतर होती चली जाती है। वंशी और हरि को कारावास भुगतना पड़ता है जहां उन्हें देश की मुक्ति के लिये नयी-नयी प्रेरणाएं मिलती हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन दिन पर दिन जोर पकड़ता चला जाता है। जैसे स्वराज्य लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये देवासुर संग्राम छिड़ गया हो और भारत भू सागर का मंथन हो रहा हो।

इस प्रकार राष्ट्र का मुक्ति यज्ञ समाप्त हुआ। पर वंशी को लगा कि जिस महान उद्देश्य की परिकल्पना से वह प्रेरित है उसमें—

राष्ट्र-मुक्ति रे केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुम्फित
स्वर्ग पीठ करनी भू-मन पर स्थापित।
वज्रपात अघटित न अनभ्र गगन से,
जीवित रावण-कंस अचेतन मन में,

मानव बनना दूर, दीर्घ, दुष्कर पथ,
अस्त सूर्य ! लोहित तम भू प्रांगण में।

मानवीय अवचेतना में बसे हुए रावण और कंस को जब तक जड़ से मिटा नहीं दिया जाता तब तक न तो राष्ट्र की स्वतन्त्रता का लक्ष्य पूरा हो सकता है और न मानव के सामूहिक कल्याण का। इसलिये यथार्थ मानव बनने के दुर्गम और शाश्वत पथ पर विजय प्राप्त करनी ही होगी। पर, स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी हरि देखता है कि राष्ट्र की मानसिकता अभी तक बदल नहीं पायी है। अभी तक इस देश की जनता केवल परोपजीवी और पराश्र भाजी ही नहीं बनी हुई है वरन चिंतन की दृष्टि से भी वह पर-मानस जीवी बनी हुई है

बंजर भीतर मन की भू,
हम पर मानसजीवी जन,
चित् खाद्य न उपजा सकते—
वय से पराश्र सेवी मन।

धनी हरि की शिकायत भरी बातें सुनता है और समझाता है कि केवल इसी देश की जनता ही नहीं वरन् समग्र मानवता इस युग में अवचेतना के अगम अंधकार में छायी हुई अंधी गलियों में भटक रही है। वह कहता है

अवचेतन कुंठाओं से
मर्दित प्रच्छन्न मनुज-मन,
दो दारुण विश्व रणों से
कँप चुका ध्वस्त भू प्रांगण !

सुन्दरपुर का कला शिविर धीरे धीरे विस्तार पाता हुआ एक सांस्कृतिक पीठ में परिणत हो जाता है। धनी हरि, गिरी और उनके सहयोगी एक आदर्श और भावनात्मक केन्द्र की स्थापना करके उसके सर्वतोमुखी विकास के कार्यों में जुट जाते हैं। इस पृथ्वी पर से रोग शोक दुःख दरिद्रता को जड़ से विनाश करके धरती की मिट्टी को ही स्वर्ग की विभूति में परिणत करना सुसंस्कृत मानव का पहला कर्तव्य है—यह बात धनी ने समझी और दूसरों को समझायी। भू को दरिद्र करके जिन ऋषियों ने जन मन में प्रभु पर आस्था जगानी चाही थी उनकी उस खोखली आस्था का तब र मनुष्य क्या करे यही वह सोचा करता।

केन्द्र का जीवन सुसंगठित सुव्यवस्थित और सुनियोजित था। केन्द्रवासियों ने स्वयं प्रसन्न हो श्रम से मिट्टी में सोना उपजा लिया था। आस-पास के गाँवों के भौतिक जीवन को समृद्ध बनाकर उस भौतिक वैभव के भीतर एक स्वस्थ आध्यात्मिक चेतना की लहर चला ने सफल कर ली था।

निश्चेतन से लेकर अतिचेतन तक एक ही मूल चेतना के तार झंकृत होते रहते हैं—केवल सितार के पर्दों की स्थितियों में अंतर है। पर वे सभी पर्दे और उन सबकी अलग अलग स्थितियाँ एक दूसरे से अनिवार्य रूप से बंधी हुई हैं। उन सभी का समन्वित और सुनियोजित रूप ही अन्मत और अनाहत विश्व राग बजाता रहता है—यह महान् मांगलिक विश्वास केंद्रवासियों के अन्तर में, और जीवन में भी, दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है।

भू जीवन और आध्यात्मिक जीवन एक दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं। शरीर के बिना आत्मा का न कोई आधार है न अस्तित्व और आत्म चेतना और आध्यात्मिक अनुभूति के बिना शरीर जड और निष्प्राण है। यदि भू जीवन अविकसित अंध रूढ़ियों में ग्रस्त, रोग शोक, दुःख दैन्य में पीडित और पारस्परिक घृणा कलह और विनाश में रत हो तो आध्यात्मिक चेतना के विकास का कोई अर्थ फिर नहीं रह जाता। और यदि भू जीवन समृद्ध होने पर भी उच्च-स्तरीय जीवनानुभूति और ऊर्ध्व गामी चेतना के स्पर्श से रहित हो तो वह भी निरर्थक सिद्ध होता है। इन दोनों का सामंजस्यपूर्ण और सुनियोजित समन्वय ही वंशी का अभीष्ट है, और स्वभावतः 'लोकायतन' के कवि का भी।

सुंदरपुर के आदर्श केन्द्र की ख्याति सुनकर देश के विभिन्न भागों और विदेशों से भी उत्सुक नर नारी वहाँ आते हैं। उनके द्वारा वंशी का संपर्क संसार के विभिन्न देशों के सांस्कृतिक प्रतिनिधियों से हो जाता है और एक दिन उसे विदेश भ्रमण का निमंत्रण भी मिलता है।

इस यात्रा में जब कवि विमान पर बैठकर विस्तृत भू परिक्रमा के लिए निकल पड़ता है तब विराट का अनंत नील विस्तार देखकर वह परम आनंदमय रहस्य स्वप्नों में खो जाता है। उसका अंतर पुलकित होकर विराट की अत्यंत सुंदर परिकल्पना करता हुआ बोल उठता है

कौन यह निराकार निःसीम
निरामय पुरुष व्याप्त सर्वत्र?
तारकों के मणि कण से दीप्त
नील का सिर पर जगमग छत्र।
समीरण जीवित श्वासोच्छ्वास,
सूर्य शशि जाग्रत अनिमिष नेत्र,
क्षितिज तट प्रेम-बाहु परिरंभ
धरा पद-पीठ, कर्म-गति क्षेत्र।

व्योम क्या नाद ब्रह्मनिर्वाक ?
सजन-लय मे अजस्र तल्लीन ?
तरते जिसमे बहु चिद बिंदु
महत आनन्द सिंधु के मीन !

इसी प्रकार के उदात्त चित्र एव के बाद एक कवि वंशी की आखो के आगे रग बिरगी छायाओ म उभरते चले जाते हैं।

इसके बाद वंशी एक एक करके प्राय सभी प्रमुख देशो म भ्रमण करता है। प्रत्येक देश के प्राकृतिक वैभव आर्थिक उन्नति और जन-जीवन की सुख-समृद्धि का सुदर चित्रमय वर्णन 'लोकायतन' म विस्तार से किया गया है।

सब-कुछ देखने-सुनने के बाद अत म कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पश्चिम के जीवन की श्री शोभा और सौष्ठव केवल बाह्य जीवन तक सीमित है अतर का उद्घाटन वहा नही मिलता और इधर भारत आन्तरिक कुठाओ से ग्रस्त रहने के कारण अपने भौतिक जीवन को समृद्ध नही कर पाता

ह्रास-तम का भारत म दप
पलायन पाप-पुण्य की भीति,
पारलौकिकता, कम विरक्ति
अध विश्वास, रूढ़ि जड रीति !
सम्य पश्चिम म स्थापित स्वार्थ,
अनास्था, रण भय, कटु सदेह,
शक्ति का मोह, राष्ट्र का दप,
बहिर्मुख, भौतिक जाड्य सदेह !

कवि यही सोचता रह जाता है कि अतर और बाहर की दोनो प्रवृत्तियो का स्वस्थ और सतुलित विकास होकर दोनो किस प्रकार एक-दूसरे के सहायक और पूरक बन सकेंगे। जब वह अपनी लबी यात्रा के बाद केन्द्र म लौटता है तब इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर नयी लगन स काम करना आरम्भ कर देता है।

केन्द्र का सुन्दर स्वस्थ सुघर और सुव्यवस्थित जीवन देखकर निकटस्थ व्यक्तियो का एक शक्तिशाली दल ईर्ष्यालु हो उठता है और उस दल के कुछ व्यक्ति केन्द्र म घुसकर वंशी की हत्या करने का प्रयत्न करते हैं। पर वह बच जाता है और हरि उसे बचाने के प्रयत्न म स्वय अपनी जान गँवा बैठता है। आश्रम म भयकर शोक छा जाता है। कुछ समय बाद गिरी भी चल बसती है। वंशी अकेला पड जाता है पर नयी पीढी म नया उत्साह देखकर वह नया शक्ति बटोरता है और केन्द्र का नित-नये ज्ञान से सम्पादित करता है। पृथ्वी पर जो

स्वग उतारने के स्वप्न को वह सत्य मे परिणत करने के प्रयास म निरतर आगे बढता रहता है। पर स्वप्न स्वप्न ही है और यथाथ यथाथ—और वही निमम यथाथ एक दिन अणु युद्ध के रूप म धरा पर तबाही मचा देता है।

कवि (अथात वशी) की अतरात्मा को इस महाविनाश का पूर्वाभास मिल जाता है। वह उस दुघटना से पहले ही सहसा केन्द्र से (अथात जीवन से) अतर्धान हो जाता है। उसकी प्रिय शिष्या मेरी जो एक विदशी महिला है, उसकी निगूढ ज्ञान भरी अन्तर्दृष्टि से प्रभावित होकर केन्द्र के प्रति अपने को अर्पित कर देती है। अणु विस्फोट से जब सुदरपुर का सस्कृति-केन्द्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और आशिक अणु युद्ध से जब विश्व का एक बडा भाग ध्वस्त हो जाता है तब मेरी हिमगिरि के अचल म लोकायतन नाम से एक नया केन्द्र बसाती है और उस मोहक, रमणीय और शुभ्र प्राकृतिक वातावरण म नये मानव की स्थापना करती है। आशिक अणु युद्ध से सतप्त देश विदेश के अनेक स्त्री पुरुष भी वहा आकर अपार नीन शाति और सिन चिदाभास के अनुभव से एक नयी जीवन स्फूर्ति पाते हैं।

पुरानी रूढियों से पूणत मुक्त और निश्चेतन से लेकर अतिचेतन तक के विकास क्रम म पूरी रसमयता से बँधा हुआ नया मानव धरा पर अवतरित होता है

ले चुका जन्म था नव मानव
आते अश्रुत लोरी के स्वर,
पलने मे उसको विश्व प्रकृति
थी झुला रही गा गा निस्वर !
"कितने सवत्सर बीत चुके
मैं रही प्रतीक्षा मे अपलक,
जड अध शक्तिमा से भू की
कटु सघषण रत रह अब तक !
तुम उदय हुए रस सूय दिव्य
कर धरायोनि को तम दीपित,
आध्यात्मिक प्रथम प्रभात शुभ्र
भू पर लाये, जन-मन विस्मित।
दिक्-काल हुए नति चरण प्रणत,
वदी स्मित पलकों में शाश्वत,
करतल पुट में शोभित अनत,
जीवन समग्रता में परिणत !

युगों के कल्मष से पवित्र भू-मन नये स्वर्गिक प्रकाश में धुल जाता है और धरा पर स्वर्ग का अवरोहण होने लगता है। मानव की संकीर्ण मानसिक ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, अंतर की सारी रसमयता को सोख-सोखकर बालू बना देनेवाली राजनीति के कुटिल चक्रों को पीछे हटाकर अब समुन्नत संस्कृति का रथ आगे बढ़ने लगता है। नया मानव भौतिक और यांत्रिक जीवन की भ्रांतियों से मुक्त होकर उसे एक नया मांगलिक रूप देने लगता है। अब वैयक्तिक और सामूहिक, आध्यात्मिक और भौतिक, उच्च और निम्न—किसी भी प्रकार के जीवन में कोई अंतर नहीं रह जाता और भू मन दिव्य चेतना से मिलकर पृथ्वी के महत् जीवन में एक नये संयोजन की सृष्टि करता है :

वैयक्तिक सामूहिक गतियाँ
स्वार्थों से विषम न अब खंडित,
आध्यात्मिक भौतिक, ऊर्ध्व अध
जन भू जीवन में संयोजित।

यह है संक्षेप में 'लोकायतन' के यथार्थवादी रस में घुले हुए यथार्थोत्तर चिंतन का सुंदर, मंगलमय और सुसंयोजित स्वरूप।

यह महास्वप्न आज के जीवन के कटु यथार्थ, विकृत मानसिकता और कठोर यांत्रिकता के बीच पले हुए अद्भुत नये मानव को एक विद्रूप विकार और विचित्र 'फैंटेसी' की तरह लग सकता है। पर यह अद्भुत और अपूर्व-कल्पित 'फैंटेसी' ही युग के निरर्थक बोध को संभावना जीवन का सुदूर भविष्य में चरितार्थ होने वाली महासार्थकता की संभावना और सार्थकता प्रदान करती है। भूत और भविष्य में बँटी हुई मानव-बुद्धि को एक पूर्ण नया दिशा-बोध देकर उसकी बिखरी हुई मानसिकता को समग्रता में एक नये मंगल-सूत्र में बाँधने की प्रेरणा देती है।

'लोकायतन' में कवि का जीवन-दर्शन कल्पना की उदारता में विस्तार और भावों की गहराई में अंतर्व्यापी है। उसकी इस विराट दार्शनिक योजना में सभी युगों का चिंतन समाहित है। परस्पर विरोधी लगने वाले सभी दार्शनिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक मतवाद उसमें पुनः मिलकर रहस्यमयी रासायनिक प्रक्रिया के फलस्वरूप एक सुसम्मिलित सुंदर और अति-यथार्थ महादर्शन का निखरा हुआ रूप प्रस्तुत करते हैं।

मानवीय अवचेतना और उपचेतना में प्रच्छन्न नारकीय कुंठा की स्थिति से लेकर ऊर्ध्वमुखी चेतना के विकास और परम चित् विकास की स्थिति तक अनंत संभावनाएँ निहित हैं। ये सब संभावनाएँ प्रकट में परस्पर

दिखती और एक-दूसरे से निखरी हुई-सी लगने पर भी वास्तव में एक-दूसरे से घनिष्ठतम रूप में संबद्ध हैं। नरक के निम्नतम बिंदु से लेकर स्वर्ग के उच्चतम बिंदु तक के दो छोर विश्व-वीणा के समान तारों से बँधे हुए हैं। इस तथ्य की ओर मैं पहले ही ध्यान दिला चुका हूँ। निम्नतम बिंदु में स्पन्दन किये गये तार का कम्पन उच्चतम बिंदु को सहज ही झनझना देता है और उच्चतम पर्व से निकली हुई झंकार निम्नतम पर्व में कंपन पैदा कर देती है। दोनों के बीच का माध्यम है भू-जीवन जो स्वर्ग के ऊँचे दर्प से इठलाता हुआ दोनों छोरों में झंकृत होते रहने वाले स्वरों का समुचित संयोजन कर सकने में असमर्थ होने के कारण उलझन में पड़ जाता है। कुंठित बुद्धि और अविकसित भावना के पारस्परिक टकराव और बिखराव के कारण युग-युग से आवर्तन और विवर्तन के चक्रजाल में फँसा हुआ वह भय और संशय, पीड़न और कुंठा के झूले में झूलता रहता है। महाजीवन के दोनों छोरों से उठने वाली जड़ से चेतन को मिलाने वाली झंकारों के संचरण का माध्यम यद्यपि वही (अर्थात् भू-जीवन ही) है और बीच-बीच में यद्यपि दोनों प्रकार की झंकारों से निकलने वाले स्वर-संकेत उसे कुछ क्षणों के लिए विचलित भी करते रहते हैं तथापि उन्हें मिलाकर वह युगों से उन सांकेतिक संकेतों की उपेक्षा ही करता आया है। लोकायतन में उन्हीं उपेक्षित किंतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संकेतों की विशद काव्यात्मक अभिव्यंजना हम पाते हैं—और साथ ही यह सुझाव भी कि उनकी सुसमन्वित साधना ही भू-जीवन को एक नयी सार्थकता प्रदान कर सकती है।

मैं प्रारम्भ में ही कह चुका हूँ कि पन्त जी की यह अभिनव महा-काव्यकृति दम्भ-त्रास के धुंधलेपन को हटाकर आज के प्रखर किंतु वन्ध्या बौद्धिक चेतना से ग्रस्त मानव को समग्र ज्ञान-ग्रंथि से निर्मुक्त करने वाला एक नया और स्वस्थ जीवन-बोध और एक नयी दृष्टि देती है। विराट् पट पर अंकित इस परिप्रेक्ष्य से आज के अत्यन्त संकीर्ण युग-बोध को एक नया विस्तार मिलता है।

लोकायतन का 'कैनवास' इतना विस्तृत होने के कारण यह स्वाभाविक है कि उसकी स्थापत्य योजना में यत्र-तत्र छोटी-मोटी त्रुटियाँ रह जायँ। उसकी कथा-योजना पूर्णतः सुबद्ध नहीं हो पायी है। बीच-बीच में उसमें ढीलापन दिखायी देता है। छन्दों का मुक्त प्रवाह यद्यपि काव्य के भाव-प्रवाह से मेल खाता है तथापि बीच-बीच में इस प्रवाह में व्यतिक्रम दिखायी देता है। छन्दों की योजना में यद्यपि वैविध्य की कोई कमी नहीं है तथापि वे सब प्रायः एक ही साँचे में ढले हुए-से लगते हैं और बीच-बीच में पाठक को एकरसता का-सा बोध होने लगता है। एक ही ढंग की बात को नये-नये रूपों में दुहराये जाने के उदाहरणों की भी

इस महाकाव्य में कमी नहीं है।

पर इन सब बातों को मैं प्रबंध-संबंधी छोटी-मोटी त्रुटियाँ मानता हूँ और ये तथाकथित त्रुटियाँ वास्तव में त्रुटियाँ हैं भी या नहीं, यह विवादास्पद है। उदाहरण के लिए कथानक के ढीलेपन को ही लीजिए। क्या यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि महाकाव्य कथानक प्रधान होना ही चाहिए? आज जब साहित्य के सभी अंगों के रूप बदल रहे हैं तब नये महाकाव्य के लिए यह नियम लागू क्यों नहीं हो सकता? इसलिए इस संबंध में इस दृष्टि से भी सोचा जा सकता है कि पंत जी ने महाकाव्य को एक नया धाम एवं नया रूप विन्यास दिया है। यदि पाठक इस महाकाव्य-कृति के विशाल धरातल, उसमें वर्णित भावों की ऊँची उड़ान, उसमें अंकित चित्रों की मोहक रंगमयता, मन्त्रदर्शी ज्ञान की अगाध गहनता और उद्देश्य की महान् मांगलिकता पर अपना ध्यान केन्द्रित करे तो प्रबंध-संबंधी साधारण त्रुटियाँ उसे अत्यन्त नगण्य लगेंगी। हिमालय की विराटता के बोध के लिए शुभ्र हिमानी से मंडित उसकी चोटियों की ओर ही ध्यान केन्द्रित करना होता है न कि उसकी बनावट की असमता और तलहटियों के रूखेपन की ओर। विराट के परिप्रेक्ष्य में छोटी-मोटी विषमताएँ भी असीम समता का अंग बन जाती हैं।

इस प्रकार बोध के शिखर से बोलने वाले कवि पंत की जीवन-व्यापी चिंतन साधना 'लोकायतन' के माध्यम से एक अत्यंत मूल्यवान् सिद्धि के रूप में हमारे सामने आती है।

अंत में मैं उस उदात्त वाणी की ओर आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ जो नगाधिराज हिमालय ने 'लोकायतन' की भूमिका में मेरे उर को सुनाई थी। हिमालय के रूप में जैसे महाकवि ही घोषणा कर रहा हो :

मैं लांघ विश्व मानस समस्त,
प्राची-पश्चिम को अतिक्रम कर,
इतिहास, धर्म, संस्कृतियों के
शिखरों पर नव युग के पग धर—
दे रहा तुम्हें जीवन-दर्शन—
यह महत् कल्प-परिवर्तन क्षण,
निर्माण करो नूतन भविष्य
भू-जीवन हो भगवत्-दर्पण!



डॉ० सावित्री सिन्हा

४

गोपिका : अपार्थिव मधुर भाव का काव्य

'गोपिका' स्व० सियारामशरण गुप्त जी की मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित कृति है जिसे उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ ही दिनों पहले पूरा किया था। इसे दैव कृपा ही समझना चाहिए नहीं तो शायद 'गोपिका' भी प्रसाद की 'इरावती' और प्रेमचन्द के 'मंगलसूत्र' की तरह अधूरी ही रह जाती। 'गोपिका' का आरम्भ लगभग बारह वर्ष पहले किया गया था। ग्रन्थ के 'उपक्रम' में उसकी रचना प्रक्रिया का निर्देश कवि ने इस प्रकार किया है—'बीज रूप में आकर गोपिका धीरे धीरे अंकुरित हुई और दीर्घकाल तक पल्लवित होती रही। वास्तव में इसका निर्माण नहीं, स्वतः प्रस्फुटन हुआ है। इसके पूरे होने पर मन में यथेष्ट सन्ताप है। पर परीक्षार्थी का कुछ आतंक भी मन में है, अच्छा ही है। परीक्षार्थी का यह भाव तभी फूटता है जब नम्रता के साथ यह विश्वास भी हो कि मेरी सृजन-क्षमता यहीं समाप्त नहीं हो गई और अभी और भी आगे का क्षेत्र मेरे सामने है।' उपक्रम का यह वाक्य इस बात का साक्षी है कि 'गोपिका' उनकी साहित्यिक-योजना की अन्तिम कृति नहीं थी। अस्वस्थता और रुग्णता के अंधकार को पार कर उनकी आत्मा प्रकाश की खोज में निरन्तर आगे बढ़ रही थी। शारीरिक अक्षमताओं से उन्होंने अन्त समय तक हार नहीं मानी। अनेक आलोचक उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करते समय यह निष्कर्ष देते रहे हैं कि मैथिलीशरण जी की 'वट छाया' से उनका व्यक्तित्व कुण्ठित हो गया और उनके साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका परन्तु स्वयं उन्होंने अनेक बार इस वट छाया को वरदान कहकर स्वीकार किया है। 'गोपिका' के उपक्रम में भी इसी की आवृत्ति की गई है—'आपका आशीर्वाद न होता तो सारी प्रक्रिया सम्भव न होती। आनन्द की बात है कि श्रावण शुक्ला तृतीया को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है, जो आप की जन्मतिथि है।'

कृष्णभक्त कवियों का शृंगार-काव्य आध्यात्मिक है ?

गोपिका एक उद्देश्य प्रधान काव्य है, अपार्थिव, मधुर भाव जिसका प्रतिपाद्य विषय है। अपार्थिव आलम्बन के प्रति पार्थिव भावनाओं के उन्नयन की जो अभिव्यक्ति मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य में हुई, उस अलौकिक या उज्ज्वल अनुभूति के रूप में ग्रहण करना आज के बुद्धिवादी के लिए तनिक कठिन पड़ता है। कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत वर्णित शृंगार काव्य के अध्यापन में सदैव यह समस्या मेरे सामने रही है क्योंकि उसका रसास्वादन इस लौकिक अनुभूतियों के आधार पर ही कर सकता है। सूर द्वारा वर्णित संयोग शृंगार की लौकिकता के आध्यात्मिक प्रतीक को स्पष्ट करने के लिए जब जब रसमयी व्याख्याओं के बीच ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा का ज्ञान का प्रयास किया गया है तभी कक्षा के सभी छात्र छात्राओं के ओठों पर उनके अविश्वास और उपहास की द्योतक मुस्कान फैल गई है। खण्डिता प्रसंग, मिलन लीला, ओस-समय तथा इससे भी अधिक अनुल्लेखनीय अश्लील प्रसंगों की स्थूलता में मधुर रस और पार्थिव आलम्बन की अलौकिकता लुप्त होकर रह जाती है। मालती, चन्द्रलता, प्रेम सखी अथवा चन्द्रसखा बनकर कृष्ण को प्रियतम, जेठ या देवर मानकर उनकी उपासना की आध्यात्मिकता में विश्वास कभी मुश्किल से भी नहीं होता। 'गवाक्ष दर्शन', 'कुंज लीला' और भी अन्य लीलाएँ आज के बुद्धिवादी को मध्यकालीन विकृतियों और विलासप्रधान जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति मात्र जान पड़ती है। तत्सम्बन्धी दार्शनिक सिद्धान्तों से मस्तिष्क को संस्कृत करके इस काव्य के अलौकिक रस का ग्रहण करने का जितना ही अधिक प्रयत्न मैंने किया है, मेरे हृदय और मस्तिष्क की खाई उतनी ही बढ़ती गई है। अलग अलग इस दर्शन की ऊँचाई और गहराई दोनों का प्रभाव पड़ता है तथा कविता भी शृंगार की दृष्टि से हृदय को अभिभूत कर लेती है लेकिन दर्शन और रस इस रूप में कहीं सम्पृक्त नहीं हो पाते कि मैं विश्वास कर लूँ कि यह शृंगार रस न होकर मधुर रस है, उज्ज्वल रस है। पहली बार मेरे मन पर कृष्ण भक्ति के राग और दर्शन का सम्पृक्त प्रभाव तारा बाबू के बंगला उपन्यास 'राधा' के कुछ स्थलों द्वारा पड़ा और तभी पहली बार मेरे 'दुष्ट सहृदय' ने शृंगार और मधुर रस में अन्तर की थोड़ी अनुभूति की। वहाँ कुछ ऐसा मिला जो शृंगार की रसानुभूति से भिन्न, अलौकिक, मधुर और उज्ज्वल था। 'गोपिका' में वह उज्ज्वलता, वह माधुर्य आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है। मध्यकालीन भक्त कवियों ने जिस मधुर भाव की उज्ज्वलता को स्थूल शृंगारिक क्रीडाओं के गाढ़ रंग में लपेटकर प्रच्छन्न कर दिया था, सियारामशरण गुप्त ने उसके अपार्थिव

माधुर्य को अपनी विमल भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा निखार दिया। इस दृष्टि से गोपिका का स्थान हिन्दी साहित्य में अन्यतम है। द्विवेदी युग में पौराणिक आख्यानों और पात्रों के आधुनिकीकरण द्वारा नए आदर्शों नए जीवन दर्शन और नए व्यक्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति की रीतिकालीन अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया तो विशेष रूप से कठोर थी। इसीलिए भागवत के कृष्ण की जगह महाभारत के कृष्ण की प्रतिष्ठा की गई और राधा-कृष्ण समष्टि चेतना की लहर में राष्ट्र-नायिका और लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। सियारामशरण जी ने यह काव्य आधुनिकीकरण के उद्देश्य से नहीं एक अत्यन्त प्राचीन भारतीय भाव-परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा और परिष्करण की दृष्टि से लिखा है—जिसके मूल में है पूर्ण समर्पण यह का विगलन और वह सामंजस्य दृष्टि जो समग्र विश्व के साथ अपनत्व स्थापित करके चलती है।

यह अपार्थिव प्रेम भक्ति की उस सीमा पर पहुँच गया है जहाँ कामनाएँ द्वन्द्व और संघर्ष की स्थिति से परे स्निग्ध सात्विक परन्तु तीव्र हो गई हैं। गोपिका की मुख्य नारी पात्र (नायिका शब्द उसके लिए मांसल पड़ता है) इन्दु के व्यक्तित्व में अपार्थिव प्रेम के ये सभी आदर्श उतारे गए हैं। उसका प्रेम सार्वभौम और सार्वकालिक है यह व्यक्ति नहीं प्रतीक है—उस सनातन प्रेम साधना का जो ससीम को असीम बना देती है जिससे शरीर और समय की सीमाएँ टूट जाती हैं

इन्दु के रूप में नहीं यह सीमाबद्ध—क्या वह इसी शरीर की है—एक इसी क्षण की? कब से न जाने जन्म जन्मान्तर एक साथ उसमें ये जाग उठे। कितने अमरत्व में एकाकार एक वह अमृत चुका रहा है न जाने यह वेणु यहाँ कब से।

इस प्रसंग में भी सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि संक्षेप में इस विषय की अभिव्यक्ति सियारामशरण जी ने कृष्ण भक्ति में स्वीकृत और प्रयुक्त रागात्मक तत्त्वों और परम्पराओं के माध्यम से ही की है परन्तु उनके हाथों में परम्पराएँ और वे रागतत्त्व निखर कर परिष्कृत हो गए हैं। अपने अग्रज श्री मैथिलीशरण जी की ही तरह परम्पराएँ उनके संस्कार में हैं। मैथिलीशरण जी ने षट्ऋतु और बारहमासे के चौखटे का आधुनिक रूप से सजाकर तथा यथार्थवादी स्पर्श देकर उसे स्वाभाविक सुन्दर और आकर्षक बना दिया था, सियारामशरण जी ने कृष्ण लीलाओं और नायिका भेद के चौखटे के पुराने विलास-संस्पृष्ट रंगों को मिटा कर उनके स्थान पर कोमल सात्विक, विमल और दीप्त रंग चढ़ा दिए हैं। जिन पनघट लीलाओं माखन चोरी और कुंज लीलाओं का चित्रण कृष्णभक्त कवि नख शिख शृंगार रस दानलीला इत्यादि के बिना कर ही नहीं सकते थे उनको

अभिव्यक्ति इस प्रकार की अनेक उक्तियों द्वारा की गई है

पी कर किस महुए की महक,
प्राणों की कोयल उठी कूक ।
यह स्वर भर दूरागत अचूक,
मेरे भिर भिर झर झर प्रभात ।

अनेक स्थलों पर दार्शनिक स्पर्श देकर भी लौकिक राग में अलौकिकता का समावेश किया गया है। कृष्ण की उक्ति है

"एक-दूसरे के अनुसारी हम, खोजते फिरे हैं एक दूसरे को—गाँव-गाँव, घर घर और जन जन में। जब तब चित्त में प्रतीति हुई—पा लिया है पा लिया है—तो भी यह मिलन सुदुर्लभ है ब्रज के गोपाल का अनिन्द्य गोप-बाला में।

'सतत प्रमोन्मयि दासी नहीं, तू सुचिर सगिनी है और चिर सहचर सखा हूँ मैं।

'गोपिका में निशाभिसारिका, दिवाभिसारिका, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, सद्य स्नाता इत्यादि नायिकाओं के इतने निर्मल और स्वच्छ चित्र खींचे गए हैं कि काम का उद्दाम पक्ष बिल्कुल गौण पड़ गया है। भावनाओं की तीव्रता का काम की उद्विग्नता से इस प्रकार पृथक् कर सकने की सामर्थ्य केवल सियारामशरण जी में ही थी। इस प्रसंग में कुछ उद्धरण देना अनुचित न होगा

निशाभिसारिका

'पहर दुकूल रहा बच गुच्छ हिलते हैं डुलते हैं। मानो पंख फूट हों, उड़ती सी जाती हूँ।

'अनजाना स्थान कुञ्ज पगडंडी वह पीछे कहीं छोड़ गई सुभगा सहेली साथ मीठी थपकी से प्रियतम के निकेतन में ठेल कर चुपचाप। इन्दु वदनी ही गई जब कृष्ण पक्ष के सघन निशा में रात्रियों में घिर श्यामल निकुञ्जों में सुभागुन्नता।

सद्य स्नाता

उर तक उत्थानित जल बीच सरसी में पद रोप अलकें समेट कर ऊनी वह और उन्हें पीठ पर उसने उछाल दिया चुन एक इन्दीवर उपर कटार गाड़ियों में वह ऊपर की ओर चली मृदु मन्द गति में।

दिवाभिसारिका

प्रिय की दिवाभिसारिका हूँ। मैं जाती हूँ सुन में आज निःशंक। इन्दु बढ़ी जा रहा है गोवर्धन गिरि के विजन मध्य धूप धुली आतप दोपहरी-सी,

बिंदी सत भाल पर स्वेद कणिकाएं हैं। जब नव धूप के झलकने से उनमें नवा द्युति होती है दिवाकर की किरणें—तप में पसीज रही—पीठ पर कस कचुकी के बंध—उन पर गति गोल कच गुच्छ केसरिया चूनर के भीतर झलकते। लक्ष्य का पता नहीं है—तो भी लगता है बंध सकते हैं उसका य दीप गिरा इसके नुकीले नत।'

गण्डिता का उदात्तीकरण

मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवि इस प्रसंग में कृष्ण की पगडी में लगे हुए जावक, मुख पर लगे काजल और पीक तथा नख क्षतों के चिह्नों के बिना बात नहीं करते। उसी प्रसंग का सियारामशरण जी ने कितना पुण्य और पवित्र बना दिया है। दूसरी नायिका मजुला के यहाँ कृष्ण को जाता समझ कर इंदु कहती है

'श्याम बस श्यामिका ही पोत देना जानते। सोचती थी मेरे भुजपाश में हो सोचती थी क्या-क्या कुछ। छोटी सखी चन्द्र के लिए उड़ी गगन में। तो अब अपार चुप।

एक नाटकीय स्थिति के निर्माण के द्वारा इस प्रसंग को स्वाभाविक और मधुर स्पर्श दिया गया है। इन्दु अपनी चिंता में तन्मय है कि लौट कर कृष्ण कहते हैं

'वल्लरी स्वरूप इस छाया में छिपी थी तुम। निकल यहां से गया वंचित बुद्धि दूर भूल तब जान पड़ा लौट यह आया मैं। तू यह अम्प की भुजाओं में बंधी थी यहां दर्प भर सामने सगुण का। आँख मिचौनी में दाव जीता मैं ही।'

'जीतोगे न क्या भला—पुरुष हो जीत है तुम्हारी ही बनी है हारने के लिए हम य'

'तुम उन नारियों में नहीं सीखती जो कर के रुदन मात्र दरसाती जो हीनता ही अपनी। मंजुला के घर भी जाना है चलता हो साथ'

मैं साथ चल? पटक न दूंगी मटकी मैं उसकी।

'पटक सकोगी इन्दु! चाहता हूँ उन सबको ऐसी ही। तोड़ोगी तभी तो जोड़ने की शक्ति पा सकोगी। तब न कहोगी सदा जीत है पुरुष की ही हारने को हम हैं।'

मर्यादित, व्यक्तित्वनिष्ठ और व्यापक प्रेम भावना

गोपिका में व्यक्त प्रेम भावना में स्वकीया-परकीया का ग्राम्या और नागरी भावनाओं का भेद मिट गया है। रुक्मिणी और सत्यभामा गोपिकाओं का प्रेम भाव स्वयं प्राप्त कर लेने को उत्सुक हैं। गोपिकाओं के हृदय में कृष्ण की इन

परिणीताओं के प्रति श्रद्धा और प्रेम है। उनकी कल्पना में कहीं द्वन्द्व और संघर्ष नहीं है। सत्यभामा और रुक्मिणी मुकुन्द को जन जन के लिए अर्पित करती हैं। रुक्मिणी, लक्ष्मी और इन्दु को एक दूसरे का प्रतिरूप चित्रित करके कवि ने भावनाओं के सार्वभौम ऐक्य की स्थापना की है। अनेक स्थलों पर उनके प्रेम में द्विवेदीयुगीन नारी भावना के मर्यादित प्रेम का स्पर्श भी मिलता है। यशोधरा की भाँति ही इन्दु के मन में मान है कि कृष्ण उसे बताकर क्यों नहीं गए

'मोद से कहा कह देना जा रहा हूँ फिर कभी आऊँगा।'
'चले गए, पहले कहा क्यों नहीं डर था क्या रोक कर बाँध लेती ?'

मध्यकालीन गोपियों की भाँति सोलह शृंगार सजाकर प्रियतम को रिझाना ही उनकी 'गोपिका' का उद्देश्य नहीं है। उसके प्रेम में आत्मविश्वास है। इन्दु अपनी सखी रुचिरा से कहती है

'हम हार रत्न मणि पहना के मुझे—पुतली बनाना है बना दे। कहती हूँ इतना ही सखी हूँ मैं प्रिय की। भली भाँति जानती हूँ प्रेम के विलीन उन्हें देखते तो मर लिए धूप में दौड़ कर वे आते नहीं।'

दूसरी गोपिका मंजुला के शब्द हैं—

जो शृंगार बना न किया था कुरबक कुन्द और यूथिका के फूलों से—हरि के प्रस्थान से वह परिम्लान हुआ। मैं भी बची सज धज की लज्जा से।

विरह-साधना के स्पर्शों के द्वारा इस प्रेम का रूप गम्भीर और गरिमापूर्ण हो गया है। प्रेम की विवशता और गम्भीरता एक साथ इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है

'रुचिरा—यह क्या इन्दु ? यह क्या ? दृग क्यों छल छल हैं ? भूल मत अपना ही कहना—मैं उनमें नहीं हूँ जो रोती हैं। रोना जितना था रो चुकी हूँ मेरी पूर्वजा ही।

मेरे नलिनी एक वह मुरझाती है और दूसरी सलिल में तुरन्त फूट पड़ती है। यह साधना है जन्म जन्म की युगानुयुग कल्प की। मूलता है जिसमें नवीन का चिरन्तन का फिर फिर फूला खिला देखें—हम पा सकें।

'गोपिका' में व्यक्त अपार्थिव शृंगार को पढ़कर बापू (सियारामशरण जी गुप्त) का एक प्रश्न याद आ गया—"आपको भी शृंगार की रचनाएँ अच्छी लगती हैं ? उस समय मैं अपने परम्परानुगत संस्कारों से प्राप्त शील-संकोच और बापू के प्रति असीम श्रद्धा के कारण 'हाँ' नहीं कर सकी और 'न' कहने में मिथ्या भाषण का भय था। आज उस प्रश्न का उत्तर मेरे पास है। बापू होते तो मैं कहती "शृंगार अच्छा लगता हो या नहीं, काम्य वही है जो 'गोपिका' में है।

प्रेम का अलौकिक प्रभाव

यह तो हुआ गोपिका के प्रतिपाद्य का एक पक्ष। इस मधुर भाव के समकक्ष और विरोध में दुर्जय और क्रूर नामक दस्युओं के अमानवीय काण्ड रख दिए गए हैं। दुर्जय रुक्मिणी से विवाह करने में असफल युवक है जो कृष्ण से प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर है—इन्दु में उसे रुक्मिणी की छाया मिलती है और वह उसे अपमानित करने के प्रयत्न में लग जाता है। क्रूर नामक पात्र पिता द्वारा निर्वासित किए जाने पर दस्यु वृत्ति अपना लेता है। कृष्ण के चले जाने के बाद ब्रज में सांस्कृतिक और नैतिक पतन के चित्र भी खींचे गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'गोपिका' लिखते समय चम्बल घाटी के दस्युओं की समस्या तथा विनोबा जी के हृदय परिवर्तन का प्रसंग उनके अवचेतन में थे। मधुर और कठोर का यह संघर्ष नूतनता की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है, लेकिन व्यावहारिक यथार्थ भूमि पर उसका अधिक अर्थ नहीं है। मधुर भाव अपने में चाहे जितना पवित्र, गम्भीर और निर्मल हो परन्तु विश्व में प्रबल रूप से छाई हुई क्रूर प्रवृत्तियों का निराकरण करने में समर्थ नहीं हो सकता—वह एक दो व्यक्तियों का हृदय भले ही छू ले लेकिन समष्टि स्तर पर उसका समाधान ढूँढ़ना अव्यावहारिक और यथार्थ से दूर है। प्रेम के आध्यात्मिक और अलौकिक प्रभाव से दुर्जयों और क्रूरों की वृत्तियों को बदलना अब केवल पौराणिक विश्वासमात्र रह गया है।

कुशल प्रबन्ध योजना

'गोपिका' की प्रबन्ध-योजना सुन्दर है। अधिकतर कहानी पूर्वस्मृतियों के वर्णन तथा विभिन्न पात्रों के दिए हुए वक्तव्यों द्वारा आगे बढ़ती है। उसकी कथावस्तु घटित कम है वर्णित अधिक। कृष्ण की लीलाओं में अनेक काल्पनिक तत्त्वों का समावेश करके उन्हें सुन्दर, स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाया गया है। इन काल्पनिक और मौलिक उद्भावनाओं में कथा आकर्षक बन गई है। आख्यानों की भाँति ही गोपिका में काल्पनिक पात्रों की संख्या प्रख्यात पात्रों से अधिक है। काल्पनिक तत्त्वों के योग के द्वारा ही सियारामशरण जी कृष्ण-कथा की बँधी-बँधाई सीमाओं से बाहर निकल सकने में समर्थ हुए हैं।

गोपिका' में ब्रह्म और जीव के अनन्य सम्बन्ध तथा अद्वैत की स्थापना भी की गई है

दुर्जय चला जा रहा है रुक्मिणी के साथ राज रथ पर और ये हैं निम्बार्क स्वस्ति और इन्दु जोजो एक साथ एक रूप भव के भव श्रीगोपाल।'

वयक्तिक भक्ति-साधना का अन्तर्गत समष्टि-साधना म करके मद ने भनद और प्रेम स पग्गा पर विजय प्राप्ति के सन्देश के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। कृष्ण की उक्ति है

मी मुरनि पथ पर सचय के साथ-साथ त्याग का उपाजन करो, सप्रेम निस्सम्ताप जूझना है पग्र प्रन्यिर व समस्त दुखयो म—सभी क्रूरों से—विजय समग्र पाग्रो तब तक।

ग्रभिव्यजना पक्ष

सियारामशरण जी की भाषा गली हिन्दी जगत के लिए नई वस्तु नहीं है परन्तु 'गापिका' म दो बातें विशेष रूप म द्रष्टव्य हैं। प्रथमत उसमे ब्रजभाषा क शब्दों का बहुलता म प्रयाग हुआ है जिससे पात्रा के वात्तालाप के साथ ही साथ वातावरण म भी स्वाभाविकता आ गई है। धेनु री गुहार विनन डुलाती रही मैं ही निमा लाऊ, अतनेरन—जस प्रयोगा म भाषा सहज स्वाभाविक बन गई है। दूसरी विशिष्टता अप्रस्तुत याजनाओ क नए और सजीव प्रयोगा मे है। गापिका म प्रयुक्त उपमान मधुर भाव क उपयुक्त कान्ति, कोमलता और दीप्ति क भाव जगाने म समय हैं। उदाहरणत —

(१) मधन हुआ की गिधिया से भिर यह धूप पीठ पीछे के स भार चुम्बन सी इसम आ लिपटी।

(२) एक धूप रेखा वह धवन कटार-जैसी तापसी उमा क मृदु उत्तन पदो पर पडी है।

(३) 'नत की मैं नत हूँ'—सुन का सुन्दर हास दीपक का याता तुल्य धीमा धरक बोली।

(४) एक शुद्ध स्वर म विलीयमान होत हैं जिस भाँति सार स्वर यहाँ तमस्सागर म लीन उसी भाँति हुआ गापीग्राम गोकुल समस्त धराशन हो।'

(५) शुभ्र शुभ्र गिसक पडी है नीन पर के दुकूल सुय।

योजनाबद्ध प्रतीक रूपक

१७ खण्डा म विभक्त गोपिका का प्रबन्ध-याजना म एक ओर नाटकीय तत्त्वो का समावेश है और दूसरी ओर उसम व्यक्त जावन दशन प्रतीक याजना द्वारा व्यजित है। भिन्न भिन्न पात्रो द्वारा प्रस्तुत वत्तान्तो और घटनाओ स कथा का विकास हाता है। अधिकतर यह विकास स्वगत-कथनो और कथोपकथना क द्वारा हुआ है। गद्य कथा म लिखा हुआ पद्य नाभी की दृष्टि स एक नूतन प्रयोग है।

इन सब विशेषताओं को देखते हुए गोपिका का काव्य रूप 'यशोधरा' के निकट पड़ता है, परन्तु 'उन्मुक्त' की प्रतीक-योजना की भाँति ही इसके उद्देश्य की अभिव्यक्ति एक सांगोपांग प्रतीक योजना द्वारा की गई है। श्री सुरभि पथ' उदात्त, निःस्वार्थ, सामंजस्यमूलक जीवन-दर्शन का प्रतीक है जो इन्दु के चरित्र में साकार है। इन्दु की वन्दवाटिका वन्द की है अर्थात् समष्टि-साधना ही मनुष्य का उदात्त लक्ष्य है। मलीन स्वार्थी और क्रूर वृत्तियों के प्रबल प्रसार के कारण इस साधना पर व्याघात पहुँचता है 'दुर्जय' और 'क्रूर' इन्हीं वृत्तियों के प्रतीक हैं। उनकी आँखें वृन्द वाटिका पर लगी है जिसके फलस्वरूप वह समूह न रहकर व्यक्ति की सम्पत्ति बन जाती है। उसकी रक्षा के लिए प्रहरी नियुक्त किए जाते हैं। इन्दु बन्दिनी-सी रह जाती है उदात्त भावना का मार्ग दस्यु वृत्तियों द्वारा अवरुद्ध हो जाता है। स्वस्तिग्राम पर आपत्ति के बादल छा जाते हैं अयाग लाबहित कारी तत्त्वों की हानि होती है परन्तु इन्दु की प्रेम भावना के अलौकिक प्रभाव से दुर्जय और क्रूर परास्त हो जाते है। इन विशेषताओं को देखते हुए गोपिका को एक उद्देश्य प्रधान प्रबन्धात्मक प्रतीक रूपक कहा जा सकता है जिसमें एक सन्त कवि की उदात्त विमल भावना और कल्पना को अभिव्यक्ति मिली है।



डॉ० शशिभूषण सिंहल

५

मृगनयनी : इतिहास की पुनः कल्पना

भारत के स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रकाशनों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा का ऐतिहासिक उपन्यास 'मृगनयनी' उल्लेखनीय है। 'मृगनयनी' का महत्त्व उसमें निहित सजीव युग चित्रण, प्रेरक पात्रों के प्रतिष्ठापन, सांस्कृतिक एवं लोक-तत्त्वों तथा स्फूर्तिमय जीवनांकन पर निर्भर है। वर्मा जी भारतीय संस्कृति के अनुरागी आस्थावान् कलाकार हैं। उनका दृष्टिकोण सतर्क और संतुलित है। अतीत उन्हें उत्तेजित नहीं करता वरन् गम्भीर चिन्तन की प्रेरणा देकर वर्तमान में उनका मार्ग निर्देशन करता है। यह तथ्य 'मृगनयनी' में भली भाँति द्रष्टव्य है।

'मृगनयनी' की मुख्य कथा मृगनयनी के व्यक्तित्व तथा राजा मानसिंह के सम्पन्न वैवाहिक जीवन की है। प्रकृति की गोद में पली बलिष्ठ निन्नी आखेट में पारंगत है। ग्वालियर का राजा मानसिंह उसके सौन्दर्य और आखेट-कौशल पर मुग्ध हो उससे विवाह कर लेता है। निन्नी—मृगनयनी—को ग्वालियर पहुँच कर ज्ञात होता है कि मानसिंह की पहले ही आठ पत्नियाँ हैं। अतः वह मानसिंह के हृदय में अपना स्थान अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए जीवन में नियम-संयम की साधना कर विभिन्न कलाओं में रुचि लेती है।

मृगनयनी मानसिंह को राज्य रक्षा के कार्य में निरन्तर तत्पर रखती है। होली के हुड़दंग में सिपाहियों द्वारा उपस्थित कला के वीभत्स रूप को लक्ष्य कर वह मानसिंह को उन्हें सर्वप्रथम शस्त्र विद्या में निपुण बनाने की प्रेरणा देती है। वह अपने पुत्रों के स्वार्थ की चिन्ता न कर सपत्नी के ज्येष्ठ पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार दिलाकर औचित्य बरतती है। वह अन्त में एक चित्र बनाकर मानसिंह को दिखाती है। इस चित्र में जीवन के आधारभूत अर्थों कला और वैराग्य के परस्पर सामंजस्य पर बल दिया गया है।

उपन्यास की प्रासंगिक कथा लाखी और अटल की है। मृगनयनी के विवाह

के उपरान्त ग्वालियर चले जाने पर उसका भाई अटल अहीर युवती लाखी से विवाह करने का निश्चय गांव वालों पर प्रकट करता है। विवाह प्रस्ताव जाति विरुद्ध होने के कारण गाँव की पंचायत दोनों का 'बहिष्कार' कर देती है। अनेक कष्ट उठाकर उन्हें मानसिंह का आश्रय मिलता है और दोनों विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। लाखी का आत्मबल और शौर्य तथा समाज से प्राप्त उसकी मानसिक पीड़ा प्रस्तुत कथा के मूल विषय हैं। अन्त में सिकन्दर लोदी के आक्रमण के समय राई गढ़ी की रक्षा करते हुए दोनों प्राण त्यागते हैं।

उपन्यास में मृगनयनी तथा लाखी अटल की कथाओं के अतिरिक्त कई कथा सूत्रों को स्थान मिला है। पहला सूत्र है मालवा के कामुक सुलतान गयासुद्दीन खिलजी का। उसको दो बातों की धुन है वासना तृप्ति और युद्ध। वह एक षड्यन्त्र के फलस्वरूप विष पान द्वारा मौत के घाट उतार दिया जाता है। दूसरा सूत्र है गयासुद्दीन के कामान्ध पुत्र नसीरुद्दीन का। नसीर युवावस्था में मुल्लाओं के घोर नियन्त्रण-वश स्त्री-संपर्क के लिए तरसते-तरसते हरम का साक्षात पुतला बन जाता है। उसके हरम में पूरी पन्द्रह हजार स्त्रियों का असाधारण संग्रह है और उन्हीं स्त्रियों से जल-केलि करता हुआ नसीर सदा के लिए जलमग्न हो जाता है। तीसरा सूत्र है नरवर राज्य के वंशगत दावेदार कछवाहा राजसिंह और उसकी प्रेमिका कला का। राजसिंह अदूरदर्शी मिथ्याभिमानी क्षत्रियों का प्रतीक है। कला उसे समर्थन और सहयोग देती है किन्तु राजसिंह के सहायक सिकन्दर के नरवर के मूर्ति भंजन के जघन्य काण्ड पर हार्दिक क्षोभ व्यक्त करती है। उक्त तीनों प्रकरण उपन्यास में मुख्य रूप से युग प्रवृत्तियों का चित्रण करने के हेतु लाये हैं। युग प्रतीक पात्रों के चरित्र चित्रण के उद्देश्य से इन प्रकरणों में घटनायें जुटायी गयी हैं। इसीलिये इन कथा-सूत्रों को यदि कथा की संज्ञा न देकर 'पात्र चित्र' कहा जाय तो भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वर्मा जी ने 'मृगनयनी' में युग परिचायक कुतूहलप्रद पात्रों की शृंखला में महमूद बघर्रा को भी प्रस्तुत किया है। गुजरात के सुलतान बघर्रा को अपने दस्तरख्वार और राक्षसी भूख के कारण उपन्यास में स्थान मिल गया है। कथा-संघटन की दृष्टि से गयासुद्दीन तथा महमूद बघर्रा के प्रकरणों का मुख्य कथा में केवल इतना सम्बन्ध है कि ये दोनों पात्र निन्नी तथा लाखी की प्राप्ति के लिए लालायित बताये गये हैं। राजसिंह मानसिंह का विरोधी है और कला मानसिंह के महल में षड्यन्त्र रचने का प्रयत्न करती है, इस दृष्टि से राजसिंह और कला का प्रकरण मुख्य कथा का अंग बन जाता है। नसीरुद्दीन का कथा प्रसंग उपन्यास में सर्वथा स्वतन्त्र है। उपन्यास में सिकन्दर लोदी के अमानुषिक अत्याचारों तथा कट्टरपन के कारनामों के जो

प्रसग है वे क्रमश मुख्य कथा तथा प्रासगिक कथा के पूरक अग हैं ।

उपन्यास की मुख्य कथा का पूर्वार्द्ध प्रकृति तथा लोक-जीवन की रगस्थली म घटित होन तथा घटनाओ म साहस-तत्त्व निहित रहन के कारण अधिक रोचक बन पडा है । उसका उत्तरार्द्ध कला तथा जीवन सम्बन्धी गम्भीर प्रश्नो पर केन्द्रित होन के कारण घटना बिम्बो द्वारा व्यक्त न होकर सवादाश्रित तथा अमूर्त अधिक हो गया है । लाखी और अटल की प्रासगिक कथा मुख्य कथा की अपेक्षा ज्यादा प्रवाहमय तथा रोचक है । यह कथा वर्मा जी की कथा सृष्टि की मूल प्रवत्ति म अधिक मेल खाती है । इसके माध्यम स उन्होने जन जीवन की सामाजिक परिस्थितियो को कुशलता से उभारा है । मृगनयनी के विवाहित होकर ग्वालियर चल जान पर उसकी कथा सरिता का प्रवाह त्याग कर मथर गति ग्रहण कर लेती है । उसम केवल विचारो और भावो की मद तरगें उठती गिरती हैं । दूसरी ओर लाखी और अटल की कथा मुख्य कथा से पृथक होते ही गति पकडती है । उनके बहिष्कार का प्रसग नटो क कुचक्र म पडकर उनकी भगरोनी तथा नरवर की यात्रा नरवर रक्षा म लाखी का असाधारण पराक्रम आदि घटनाओ म सामाजिक मनोवत्ति और लाखी अटल क चरित्र के सहज मानव-सुलभ पक्ष को प्रत्यक्ष करन की क्षमता है । मानसिंह का आश्रय पाने पर यह कथा मुख्य कथा से पुन आ मिलती है । लाखी तथा अटल का सम्बन्ध जाति सम्मत न होने के कारण राजमहल म जो प्रतिक्रिया होती है वह मुख्य कथा को भी उद्वलित करती है । अत म भी लाखी अटल क सघर्ष और बलिदान की घटनायें इस कथा के प्रवाह को सुरक्षित रखती है ।

'मृगनयनी' की कथावस्तु क विश्लेषण के उपरान्त स्पष्ट ह कि यह उपन्यास एक युग विशेष की विराट दृश्यमाला उपस्थित करता है । इस सँजोन के लिय उपन्यासकार न मुख्य कथा प्रवाह से स्वतन्त्र होकर अनेकानेक घटनाओ, कथा सूत्रो तथा पात्रो को ग्रहण किया है । इसके विभिन्न परिच्छेदो म पारस्परिक अटूट क्रम का प्राय अभाव है जिसके फलस्वरूप उपन्यास का कथानक शिथिल हो गया है और कथ्य को सुस्पष्ट करन के प्रयास म लेखक न कथा के विभिन्न अवयवो के परस्पर अनुपात सयोजन की विशेष चिन्ता नही की है । उदाहरण के लिये उपन्यास क प्रारम्भ म ही होलिकोत्सव, प्रकृति खेती आखेट आदि के दृश्य और वणन खिचत चले गय है—मानो लेखक का मन उन चित्रो को चित्रित करते-करते भरा नहा है और वह बारम्बार जल की प्याली म अपनी कूची डुबो डुबा कर उन पर फर जा रहा है । उपन्यास के परिच्छेद तथा उनके अन्तगत विभिन्न प्रकरण भाँति भाँति के पौधो स तुडाय गय फूल-पत्तो के समान हैं । इन्हे परस्पर

पूर्ति के लिये उसने जन परंपरा का आश्रय लिया है। उसे परंपरा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती जान पड़ती है। इस प्रकार 'मृगनयनी' में वर्मा जी ने इतिहास में खोज बीन कर तथ्य जुटाये हैं और उन्हें विचार विवेचन कल्पना-तत्त्वों से कार्य कारण शृंखला प्रदान की है।

वर्मा जी के उपन्यासों में नारी पात्र प्रबल और प्रधान हैं। वर्मा जी अपने प्रिय नारी-पात्रों के बाह्य आवरण में निहित उनकी आंतरिक विभूति को प्रत्यक्ष करते हैं। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी सचालक प्रेरणा। मृगनयनी तथा लाखी उनके ऐसे ही नारी पात्र हैं।

मृगनयनी प्रकृति की गोद में पली होनहार युवती है। उसकी काया अत्यंत पुष्ट और मन निर्भीक है। कामुक आततायी पुरुषों के प्रति उस में अपूर्व उग्रता है। सोचती है मुनती तो यही आई हूँ परन्तु क्या उनके (जौहर करने वाली स्त्रियों के) हाथ-पैर इतने निकम्मे हो गए होंगे कि अपने ऊपर आते और हाथ डालने वाले पुरुष को घूंसे से धरती न सुंघा सकें? कैसी स्त्रियाँ होंगी वे! खाने को इतना और ऐसा अच्छा मिलते हुए भी मन उनके ऐसे मरियल!! चिता में जलकर मरें स्त्रियाँ पर हाथ डालने वाले!!! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की! वह ऐसा सोचती ही नहीं ग्यासुद्दीन के भेजे हुए घुड़सवारों के प्रसंग में कर भी दिखाती है।

प्रचंड निन्नी में कोमलता और रसिकता भी है। उस राई की प्रकृति स्थली अत्यंत प्रिय है। वहाँ की नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार ऊँघती लहराती बाल पर्वतों की ऊँचाइयाँ पेड़ और डालियाँ पत्ते आदि उसके जीवन सहचर हैं। खेत के मचान में उन्हें जी भर देखती है और उन्हें एक जगह सँजो लेने की कामना करती है। ग्वालियर के वैभवमय किले में पहुँचकर भी वह राई को नहीं भूलती। गाना उसे भला लगता है—जाग परी मैं पिय के जगाय, उस का प्रिय गीत है। ग्वालियर पहुँचकर वह संगीत व नृत्य सीखती है। वास्तुकला और चित्रकारी में भी उसका मन रमता है।

निन्नी होनहार है परन्तु है साधारण कृषक बालिका। वह लाहे के तीर जैसी तुच्छ वस्तु के लिये अपनी सहेली लाखी से झगड़ पड़ती है। उसे चिढ़ाना और उसे नंगे पैरों देखकर अपने जूतों पर अभिमान करना मृगनयनी को सामान्य बालिका के स्तर पर ले आता है। इसी प्रकार महल के वातावरण में पहुँच कर वह कभी-कभी स्वयं में हीनता का अनुभव करती है। फलस्वरूप वह वहाँ अपनी मर्यादा रक्षा के लिए पग पग पर चौकन्ना रहती है।

निन्नी अपने ग्राम्य जीवन की अबोधप्राय अवस्था में भी नारी की पुरुष सापेक्ष मर्यादा भावना से भली भाँति परिचित है। राजा मानसिंह के विवाह-

प्रस्ताव पर वह सतर्क हो जाती है। उसे आशंका है कि कहीं भविष्य में सम्मान न खोना पड़े। 'मानसिंह से उसने धीरे से कहा 'ग़रीबों और बड़ों का जन्म मरण कैसा—बड़े लोग बहुत कुछ और हैं करते कुछ और हैं ऐसा सुना है कथा कहानियों में।' यदि उसे ज्ञात होता कि मानसिंह की पहले से आठ रानियाँ हैं तो कदाचित् वह विवाह की स्वीकृति नहीं देती। वह जानती है कि संयम और गम्भीरता द्वारा ही नारी पुरुष के, मानसिंह जैसे पुरुष के, हृदय में अक्षुण्ण अधिकार रख सकती है। उसे मानसिंह का प्रेमालाप और चेष्टायें भाती हैं, किन्तु नारीत्व की मर्यादा अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये वह इन्द्रिय नियमन की इच्छुक है। मानसिंह से कहती है 'और निकट आये तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।'

नारी पुरुष की प्रेरणा है। पुरुष को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना उसका कर्त्तव्य है, मृगनयनी यह भूलती नहीं। मानसिंह मृगनयनी के ग्वालियर आने पर मनोरंजन और कला प्रेम की ओर अधिक झुक जाता है। मृगनयनी उसे सजग कर उसमें नवीन चेतना भर देती है। उसका आधारभूत विचार इन पंक्तियों में आ जाता है—'कैसा कर्त्तव्य को सजग किये रहे भावना विवेक का सम्बल दिये रहे मनोबल और धारण एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहें।

मृगनयनी का चरित्र असाधारण है। उसके पूर्व तथा उत्तर जीवन में संगति बिठाने के लिये वर्मा जी विशेष सतर्क रहे हैं। उन्होंने रानी मृगनयनी के प्रबुद्ध रूप के मूल सूत्रों को बालिका निन्नी में सावधानी से लक्षित किया है। उसकी बाद की भावनाओं और चिन्तना में परिस्थिति की क्रिया प्रतिक्रिया के तत्त्व को वर्मा जी ने अपरिहार्य अंग के रूप में ग्रहण किया है। मृगनयनी का व्यक्तित्व चिन्तन प्रधान होने तथा अभिजात जीवन में घिर जाने के कारण पाठक को प्रभावित तो करता है, किन्तु अपने में तन्मय नहीं कर पाता। उसकी अपेक्षा लाखी अपनी सहज साधारण गति के कारण पाठक को विशेष आकृष्ट करती है। उपन्यास में लाखी का चिन्तन पक्ष मुखर नहीं है, उसका व्यक्तित्व मनोविकारों और प्रवृत्तियों के माध्यम से विकसित हुआ है। लाखी उपन्यास में मृगनयनी के साथ उसके आनुषंगिक पात्र अथवा उसकी उपसृष्टि के रूप में पदार्पण करती है। आगे चलकर उपन्यासकार जब मृगनयनी की प्रतिमा को महान सँवारने में प्रयत्नरत हो जाता है उस समय लाखी मानो उसकी दृष्टि बचाकर स्वतन्त्र, परिपूर्ण नारी-पात्र का रूप धारण कर लेती है। मृगनयनी यदि उपन्यासकार की सतर्कता सजगता की प्रतिफल है तो लाखी उसकी हृदयानुभूति की सहज देन है।

राजा मानसिंह उपन्यास के प्रतिपाद्य पात्रों में प्रमुख है। वह कर्तव्यनिष्ठ

शासक है। उसकी श्रमप्रियता और कलाप्रियता ने उसे लोकप्रिय बना दिया है। रहुपत्नियों के मध्य स्वयं घिर जाने पर वह मन ही मन स्वीकार करता है कि एक स्त्री का शासन पुरुष के लिए कठिन है, आठ तो आठ ग्वालियर राज्यों की समस्या के समान हैं। अतः वह विनय और शील से काम लेने और व्यंग्य व कटूक्ति सहने में अपना कल्याण समझता है। मृगनयनी कथा की केन्द्र बिन्दु होने के कारण उपन्यास में प्रकाश किरणें मानसिंह पर सीधी कम पड़ती हैं। कुछ स्थलों को छोड़कर शेष में प्राय मानसिंह मृगनयनी के स्वरूप को उभारने के लिए ही उपस्थित होता है। वह मृगनयनी के रूप निर्माण में पूरक चरित्र के समान है।

'मृगनयनी' में वर्मा जी की दृष्टि जीवन (इतिहास) के ग्राह्य और अग्राह्य का पृथक कर देखने में व्यस्त रहने के कारण उपन्यास के अधिकांश पात्र भले अथवा बुरे के विपरीत वर्गों में बँट गये हैं। बोधन मिश्र इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। वह पाठक की सहानुभूति अर्जित न कर पाने पर भी भला नहीं तो बुरा भी नहीं है। बोधन ब्राह्मण समाज की कट्टरता का जीता जागता प्रतीक है परन्तु है ईमानदार। जो ठीक जँचता है उसे अपनाता है। उसका अपने विश्वास के विपरीत जाना असम्भव है भले ही राजा क्रुद्ध हो या विधर्मी वध कर डालें। उपन्यास का पट विशद होने के कारण पात्रों की बड़ी संख्या में सृष्टि हुई है किन्तु उनकी पृथक विशिष्टता का निर्वाह हुआ है। उनके चित्रण में प्रत्यक्ष विधि की अपेक्षा नाटकीय शैली का अधिक आश्रय लिया गया है।

चर्चा की जा चुकी है कि मृगनयनी में नाटकीयता का तत्त्व है। यह तत्त्व मुख्य रूप से इसकी संवाद-कला से प्रादुर्भूत हुआ है। नाटकीयता से यहाँ तात्पर्य है वास्तविकता के आभास से। नाटकीय स्थल वह है जहाँ घटना का वर्णन मात्र न होकर घटना स्वयं घटित होती जान पड़े वार्तालाप तथा कार्य में गति का सजीवता का बोध हो। मृगनयनी के संवादों में वक्ता के हाव भाव का सूक्ष्म निरीक्षण भी साथ-साथ चलता है। विशेषता यह है कि उपन्यासकार संवाद से इतर पात्रों के हाव भाव का निर्देश न कर उन्हें संवादों में ही व्यंजित करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। मुल्लाओं तथा सुलतान के घोर नियंत्रण में बँधे हुए लोलुप शाहजादा नसीरुद्दीन तथा चलते पुर्जे दरबारी ख्वाजा मटरू की एकान्त चर्चा अपने विषय और शैली के कारण नाटकीय दृश्य उपस्थित करती है। संवाद का एक एक वाक्य चुना हुआ और वक्ता की प्रवृत्ति का द्योतक है

— शाहजादा नसीर ने दर्जे भौंचक हुए मटरू से पूछा— शराब तो बुरी चीज़ नहीं जाती है फिर लोग क्या पाते हैं?'

'जाने आलम!', मटरू ने फूँककर क़दम रखा— बुजुर्गों ने ज़माने से हम

को बुरा कहा है, मगर लोग नही मानते हैं इसलिये पी लेते हैं।

'बुरी कहते हैं तो पीने म भी बुरी होनी होगी ?

जान आलम, बुरी चीजें जब बादशाहो के हाथ छू लेती हैं तब उतनी बुरी नही रहती। बन्दा तो गुलाम है वह ही क्या सकता है ? लेकिन हाँ सुना है कि बाज लोग दवा के तौर पर कभी-कभी पी लेते है।

'तुमने कभी पी ?'

जान आलम के सामने बयान करने म गुस्ताखी होगी।

(नसीर) 'जी चाहता है कि मैं भी कुछ दुनिया देखू। किताबें तो बहुत-सी पढ लीं, मगर दुनिया समझ म नही आ रही है।'

'जान आलम जिन्दाबाद। मैं कुरबान जाऊँ। हुजूर तो इतना देखेंगे कि न खुद अघायेंगे न दुनिया अघायगी।'

(नसीर) सल्ली अभी क्या कम है—मर जाने को भी जी चाहता है। मगर तुम ठीक कहते हो। यही तै रहा। तो फिर सच सच बतलाओ कि बुरी कही जाने वाली उस चीज म कुछ मजा भी है या वाकई बुरी है ?'

जान आलम, अगर उसम मजा न होता तो बादशाहो के मुह क्या लगती ?'

तब—फिर एक तो यह। पर थोडी-सी ही बहुत ही थोडी वरना पकड म आ जाने का अन्देशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।

'कुछ भी मुश्किल नही जान आलम।"—

अपने मालिक वाले नसीर के प्रश्नो म कोरी जिज्ञासा नही वरन् तीव्र लालसा है। उसकी अनुभवशून्य लोलुपता अपनी उत्सुकता का समाधान ही नही उस दिशा म प्रोत्साहन भी चाहती है। उसके इस वाक्य म—'बुरी कहते हैं तो पीने म भी बुरी होती होगी ?"—मटरू को रहस्यमय सकेत है कि वह अपने अनुभव की छाप लगाकर शराब को ग्राह्य घोषित कर दे। फिर वह जिज्ञासु भोले बालक की भाति बिलकुल स्वाभाविक प्रश्न कर बैठता है— तुमने कभी पी ?" डरता भी है। उसकी सहम, सतर्कता और पिपासा केवल इस दबी जबान म साक्षात् प्रकट हो जाती है— 'पर थोडी-सी ही, बहुत ही थोडी।" और भिचे गले से वह ही कहता है—"और दूसरी—तुम खुद समझ लो।' इन कथोपकथनो के साथ वक्ता के हाव भावो का सकेत नही दिया गया है। भावो को व्यक्त करने वाले कथनो को कुछ ऐसे सधे हुए मनोवैज्ञानिक ढग स रखा गया है कि वक्ता की भाव भगिमा पाठक की कल्पना म स्वत साकार हो उठती है। उल्लिखित सवाद पढकर हमारी कल्पना म एक चित्र बनता है जिसम एक आत्मपीडित शहजादा है, घबराया-सा, भरमाया हुआ, डरा हुआ चौकन्ना,

ललचाया और सकपकाया सा, इधर उधर भाककर धीरे धीरे बात करता हुआ, बेतारी उसकी आगा म भांक रही है। दृश्य में दूसरा व्यक्ति है सीखा सिखाया, मजा हुआ दरबारी मटरू—पूणतया सनक और बात बात पर शतरज के खिलाडी जैसी चालें चलने वाला। वह शिकार को मुट्ठी म आया समझता है किन्तु उसे तनिक खिलाकर पजा म दबाचना चाहता है। खुशामद स भरपूर दरबारी शिष्टा चार का पुतला। शाहजादे की लालसा को चरम बिन्दु पर लाकर गोलमाल ढग से शराब के विषय म अपना स्पष्ट निणय न देता है— अगर उसम मजा न होता तो बादशाहों के मुह क्या लगती? यह सवाद चरित्र चित्रण कथा विकास तथा नाटकीय सजीवता प्रस्तुत करन म समथ है।

मृगनयनी में जो जीवन दशन प्रस्तुत किया गया है उसके दो पक्ष है—एक जीवन का अग्राह्य और दूसरा ग्राह्य। अग्राह्य के बीज तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक स्थिति म छिपे हुए है। पन्द्रहवी शताब्दी के अत म उस युग म देश मे केन्द्रीय सत्ता न थी। चारो ओर अराजकता तथा जनपीडन का बोलबाला था। विदशी शक्तिशाली जन स्वण-सचय की कामना, मारकाट की आकाक्षा और स्त्रियो के अपहरण की वासना म आकठ मग्न थे। हिन्दू परलोक भय, निराशावाद तथा पारस्परिक झगडा के कारण लडखडा उठे थे। ऐसी स्थिति म शासन काय शासक की व्यक्तिगत आकाक्षाओ व वासनाओ का साधन मात्र रह गया था। नित्य कुटन पिसन वाल उपेक्षित प्रजाजन की यही भावना रही होगी— कोउ नृप होइ हमहि का हानी।' मानसिंह और मृगनयनी की प्रजा वत्सल दृष्टि और गतिविधि उस युग की तिमिराच्छन्न दशा म प्रकाश रेखायें हैं।

हिन्दू समाज की वण-व्यवस्था न जटिल भेदभाव का रूप धारण कर लिया था जिसका उग्र प्रभाव आज भी किसी स छिपा नहा है। मृगनयनी म गूजर अटल और अहीर कन्या लाखी एक दूसरे को अपना लेत है। पुरुष-स्त्री के इस सहज स्वाभाविक राग को तत्कालीन समाज हाथ में सेरे काय पथ छोडकर तोडने के लिय उद्यत हो जाता है। लाखी अन्त अविचलित रहकर स्थिति का सामना करत हैं। फिर भी नायी जगी वीरागना के हृदय के किसी कोने म जाति वाद के प्रति निष्ठा बनी रहती है। भरत समय अटल ग न्द स्वर म वह देती है—' ब्याह कर लना। अपनी जात पाँत म । दूसरी ओर गूजर जाति की मृगनयनी और तोमर मानसिंह का विवाह हो जाता है। मानसिंह राजा है वह सब कुछ कर सकता है। कोई उस पर उगली तक नहीं उठाता। उपन्यास कार का तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर यह मार्मिक व्यग्य है। जातिगत भेद भाव की निस्सारता पर मानसिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है। वह कहता है—

"रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोना अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जात पात ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग म उसने कर पाया है और न कभी कर पायगी।"

वर्मा जी ने उपन्यास म जीवन का जो ग्राह्य स्वरूप प्रस्तुत किया है उसकी सचालक उनकी रोमास प्रवृत्ति है। रोमास शब्द का यहा विशिष्ट अर्थों मे प्रयोग किया जा रहा है। रोमास अगरेजी साहित्य म उपन्यास की पूर्वज विधा के रूप म था। यह एक विलक्षण कथा थी। प्रस्तुत प्रकरण मे रोमास एक प्रवृत्ति जीवन दृष्टि है। इसकी एक शब्द मे व्याख्या की जाये तो इसका अर्थ है 'स्फूर्ति'। वर्मा जी का रोमास साधारण जीवन म ही है अपनी मिट्टी, अपने चारो ओर की प्रकृति अपने समाज मे है। उन्होने विवेक सतुलन और कर्मठता से रोमास के तत्त्व जुटाये हैं।

मृगनयनी का सन्देश है कि मनुष्य का जन्म साभिप्राय है। उसे जीवन मे जसा जो कुछ मिला है उसी म सतुष्ट रहकर यथाशक्ति कुछ जोडने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। अनवरत प्रयत्न का दूसरा नाम जीवन है। उपन्यास मे मृगनयनी और मानसिंह के माध्यम स सतुलित मानव जीवन की झाकी प्रस्तुत करने का प्रयास है। शारीरिक स्वास्थ्य मानवता के निर्वाह की पहली अनिवार्य सीढी है। स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। मस्तिष्क से उत्पन्न होता है तर्क और तर्क का प्रसाद है कर्त्तव्य। हृदय कोमल भावनाओ कला प्रेम आदि को जन्म देता है। जीवन म कर्त्तव्य और भावना के बीच प्राय सघर्ष के अवसर आते है। इन दोनो के सतुलन समन्वय म ही मनुष्य की क्षेम है। तभी उसकी शारीरिक शक्ति अनुचित भाग ग्रहण नही कर पाती। इस प्रकार शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क और हृदय के उपयुक्त समन्वय मे जीवन की 'स्फूर्ति' अर्थात वर्मा जी का 'रोमास' निहित है। इस रोमास की अभिव्यक्ति उपन्यास क लोक जीवन तथा प्रकृति चित्रण म भलीभाँति हुई है। प्रणय प्रसगो तथा कला के उदात्त स्पर्शों मे यह प्रवृत्ति खिल उठी है।

'मृगनयनी' मे ग्वालियर किले के अभिजात जीवन मे 'रोमास' की उपलब्धि हुई है किन्तु बुन्देलखडी जन जीवन म इसकी छटा दखते बनती है। उस युग की प्राणातक परिस्थितिया का उल्लेख किया जा चुका है। उपन्यास का जर्जर बुन्देलखडी जन कठोर प्रकृति और विषम परिस्थितियो की गोद म पलते रहने के कारण अपने अन्तर म एक और व्यक्तित्व छिपाये हुए है। वह व्यक्तित्व निर्भीक है घोर कठिनाइया मे जूझने वाला और मौज का एक क्षण मिलने पर मस्ती से झूम उठने वाला है। मस्ती का एक क्षण ही उसे सजीव बनाये रखता

है और शक्ति देता है भविष्य की बाधाओं से भरपूर टक्कर लेने की। उसके त्यौहार और उत्सव ऐसे ही सुखद क्षणों की अमूल्य निधि हैं। नवीन रूप धारण करती प्रकृति उसमें उमंगों की हिलोरों पर हिलोरें उठा देती है। उसका कृतज्ञ मन परमेश्वर के आगे नत हो जाता है। वह उन अवसरों पर भजन पूजन करता है, उसके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। फिर बारी आती है हृदय में रुके हुए उन्माद की दुगुने वेग से बाहर फूट पड़ने की। बुन्देलखंडी नर-नारी फागें और राछरें गाते हैं और नाचने-कूदने मग्न हो जाते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में ही होलिकोत्सव का चित्रण इस तथ्य का साक्षी है।

भारतीय मध्यकालीन इतिहास के आधार पर हिन्दी में अनेक उपन्यासों की रचना हुई है। स्वयं श्री वृन्दावनलाल वर्मा के अब तक प्रकाशित बारह ऐतिहासिक उपन्यासों में से ग्यारह इसी युग के चित्रण में संलग्न हैं। इस काल की अवसाद राशि से नव चेतना और अदम्य स्फूर्ति के कण जुटा कर वर्तमान को उल्लसित और प्रेरित करने वाली कृति के रूप में 'मृगनयनी' अपूर्व और अविस्मरणीय है।

❁

श्री मन्मथनाथ गुप्त

६

झूठा सच : भारत-विभाजन का औपन्यासिक महाकाव्य

यशपाल की कृति 'झूठा सच' निश्चित रूप से एक राजनैतिक उपन्यास है। कुछ लोगों के अनुसार ऐसा कहना किसी हद तक उपन्यास के स्तर को घटा देना है, पर यह एक बहुत ही संकुचित धारणा है जिसका कोई आधार नहीं। यदि 'झूठा सच' एक राजनैतिक उपन्यास है तो तालस्ताय का 'युद्ध और शान्ति' भी एक राजनैतिक उपन्यास है, पर वह उपन्यास लगभग सर्वसम्मति से संसार का श्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। अन्य अनेक महान् उपन्यासकारों ने जैसे रम्याँ रलाँ, आनातोल फ्रांस, सिंक्लेयर लिविस, अप्टन सिंक्लेयर तथा हमारे रवीन्द्र, शरत्, प्रेमचन्द ने समसामयिक या अभी-अभी जो समय भूतकाल बना उस पर उपन्यास लिख चुके हैं। इसलिए 'झूठा सच' को राजनैतिक उपन्यास करार देने से किसी भी प्रकार उसके स्तर को निम्न नहीं बताया जा सकता।

आधुनिक उपन्यास साहित्य का जब जन्म हुआ था तो वह निश्चय ही पढ़े-लिखे वर्ग के लिए हुआ था जिसे मनोरंजन और समय काटने के लिए साधन चाहिएँ थे। फ्रांस में उपन्यास का पहले-पहल अच्छी तरह आरम्भ हुआ और वहीं यह खुलकर कहा गया कि उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन है। पर धीरे-धीरे लोगों का दृष्टिकोण प्रसारित होता चला गया और अब कोई यह नहीं कहता कि उपन्यास का लक्ष्य मनोरंजन या पाठक का समय काटने में मदद देना है। साथ ही यह भी सही है कि लाखों लोग उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए ही पढ़ते हैं, पर जैसा कि थोड़ा गहराई में जाने पर ही ज्ञात होगा, मनोरंजन के भी स्तर होते हैं। कोई पाठक बिल्कुल ऊटपटांग कथानक से ही अपना मनोरंजन कर सकता है जबकि प्रबुद्ध पाठक के लिए और भी सामग्री चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है

कि उपन्यास के आदि लक्ष्य मनोरंजन में किसी प्रकार का हेरफेर हुआ है। केवल यही कहा जा सकता है कि मनोरंजन के स्तर के सम्बन्ध में चेतना पैदा हो गई है। अवश्य ही उपन्यास में यह गुण होना चाहिए कि वह नीरस न बना दे, पाठक उसे पढ़ता ही चला जाए और उसे आनन्द आए।

इस बीच में पुल के नीचे काफी पानी बह चुका है यानी जब उपन्यास साहित्य का आरम्भ हुआ था तब से लेकर अब तक स्थिति बहुत बदल चुकी है पर यह कोई नहीं कह सकता कि मनोरंजन का तत्त्व उसमें नहीं होना चाहिए सिवा उन लोगों के जो हर विधा को गणित के एक सूत्र में परिणत करके कुछ थोड़े से लोगों की चर्चा का विषय बनाना चाहते हैं। युग तो इस बात का है कि अधिक से अधिक लोगों को साहित्य की ओर विशेषकर कथा साहित्य की विधाओं की ओर, खींचा जाए। मनोरंजन के अलावा अब लेखकों से यह आशा की जाती है कि वे और भी कुछ करें। पाठक की मानसिक परिधि और विस्तार के अनुसार पाठकों को कई तरह के उपादान दिए जा सकते हैं। उपन्यास के जरिये पाठक को हर तरह का ज्ञान दिया जा सकता है। उसे जागरूक और चिन्तन के लिए उन्मुख बनाया जा सकता है। उपन्यासकार कई बार पाठक के सामने वे पहलू प्रस्तुत करता है जो चिन्तकों ने भी प्रस्तुत नहीं किए थे। फ्रांसीसी लेखक वाल्तेयर से लेकर हिन्दी के प्रेमचन्द तक अधिकांश लेखकों ने कथा साहित्य को विचारों और चिंतन का माध्यम बनाया है। इसीलिए आज सभी तरह के प्रचारक उपन्यास कहानी तथा दूसरे शब्दों में कथा साहित्य का पल्ला पकड़ते हैं। रूस चीन आदि समाजवादी देशों के कथा-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने यह प्रचार कर रखा है कि वहाँ का लेखक केवल प्रचारक रह गया है और साहित्य केवल राजनीति का पुछल्ला मात्र है। पर अभी हाल ही में शोलोखोफ को नोबल पुरस्कार मिलने से यह प्रमाणित हो गया कि यद्यपि समाजवादी देशों में घटिया साहित्य भी है जो दल का झण्डा लेकर चलता जाता है पर इन देशों में भी ऐसे साहित्य-साधकों की कमी नहीं है जो साहित्य को साहित्य के रूप में लाते हैं।

यशपाल की इस कृति के सम्बन्ध में कुछ कहते हुए भूमिका के रूप में इन बातों का कहना जरूरी था। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि यशपाल का यह उपन्यास एक राजनैतिक उपन्यास है पर जैसा कि मैं दिखा चुका हूँ उपन्यास अब केवल कथा कहानी के अतिरिक्त कुछ और भी होता है और यदि कोई उपन्यास राजनैतिक पहलुओं को लेते हुए चलता है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है बल्कि यह एक हद तक स्वाभाविक है। पर साथ ही यह बता दिया जाए कि लगभग समसामयिक घटनाओं पर उपन्यास या कथा साहित्य प्रस्तुत करना लेखक

के लिए बहुत जोखिम का काम है। साधारण उपन्यास की रचना में, जिसमें एक व्यक्ति या परिवार या शहर या गाँव की स्थिति का चित्रण रहता है उपन्यासकार को उतनी गुत्थियाँ नहीं सुलझानी पड़ती जितनी कि एक राजनैतिक उपन्यास में सुलझानी पड़ती हैं। राजनैतिक उपन्यास के लेखक से यह आशा की जाती है कि वह जड़ तक जाकर सारे प्रश्नों पर विवेचन करे, कार्य-कारण की शृंखला को स्पष्ट कर, भूतकाल से आई हुई परम्परा में स्थितियों का संयुक्त करके दिखाए और भविष्य का भी संकेत दे।

वैसे भी इस प्रकार से लिखा हुआ उपन्यास, जिसका मुख्य विषय सामाजिक राजनैतिक स्थिति और उसमें आने वाले परिवर्तन हों, बहुत आसानी से महज रिपोर्ताज में परिणत हो सकता था। उस हालत में वह कला की दृष्टि से निम्न कोटि का हो जाता है। पर यशपाल की सतर्क लेखनी ने घटनाओं के साथ न्याय करते हुए भी और उनका सिलसिला या कार्य-कारण किसी प्रकार से न बिगाड़ते हुए भी कथानक का ताना-बाना इस प्रकार से फैलाया विस्तार किया और उसमें इस प्रकार से रंग भर कि कहीं भी पाठक को यह महसूस नहीं होता कि वह कहानी की अपेक्षा कुछ और पढ़ रहा है। यों तो संसार के कई मूर्धन्य लेखकों ने सामाजिक राजनैतिक घटनाओं को और लगभग समसामयिक इतिहास को अपना उपजीव्य बनाया है पर इस सिलसिले में अपटन सिंक्लेयर का उल्लेख विशेष उपयुक्त होगा जिसने दूसरे महायुद्ध का सारा इतिहास एक उपन्यास माला के ज़रिये लिखा है, बल्कि यों कहना चाहिए कि दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर एक विराट उपन्यास लिखा है।

लेखक के लिए इस प्रकार यह एक कसौटी है कि ज़रा चूका कि कलाकार की मर्यादा से विचलित होकर एकदम अथाह खाई के अन्दर गिरा।

मैंने पहले यह बतलाया है कि राजनैतिक सामाजिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में रखकर उपन्यास लिखना बहुत कठिन है पर साथ ही यह भी बहुत सही है कि अति साधारण पात्र राजनैतिक सामाजिक घटनाओं की 'फुटलाईट' की चौंध में खड़े होकर बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं और वह एक साधारण व्यक्ति न रहकर इतिहास का एक प्रतीक बन जाता है। इस नाते उपन्यास के पात्र का स्तर अनायास ही ऊपर उठ जाता है। पर ऐसे उपन्यासों में एक डर यह भी रहता है कि कहीं व्यक्ति प्रतीक बन कर साँस लेता चलता फिरता और जीवन के अन्य लक्ष्यों में सुसज्जित रहता है पर उसका व्यक्तित्व न उभरे और वह एक 'रोबोट' मात्र बन कर रह जाय। सफल कलाकृति के लिए यह ज़रूरी है कि उसका प्रत्येक पात्र अपना जीवन जीये जो मात्र समसामयिक प्रतीक या कठपुतले का जीवन न हो।

हर्ष का विषय है कि यशपाल इन सारी दृष्टियों से सफल हुए हैं और उनका प्रत्येक पात्र बिल्कुल अपना ही जीवन जीता है। जितने हिन्दू चरित्र हैं, हो सकता था कि एक ऐसे समय जब सभी हिन्दुओं के सामने एक ही प्रश्न और एक ही संकट मुंह बाए खड़ा था, एक ही जिन्दगी जीने और एक ही तरह से बातचीत करते, पर यशपाल के इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र अपना अलग अलग जीवन जीता है। उसकी अलग अलग बुद्धि है, अपनी अलग कमजोरियाँ और सहजारियाँ हैं इस प्रकार से कहीं भी पाठक को यह अनुभव नहीं होता कि दो पात्र एक दूसरे की कार्बन प्रतियाँ हैं।

यों हम इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कह सकते हैं पर केवल एक जोड़ को लें—जयदेव और उसकी बहन तारा। दोनों एक परिवार के हैं। एक ही प्रकार की आर्थिक समस्याएं उनके सामने हैं। विभाजन की विपत्ति का पहाड़ उनके सिर पर एक ही तरह से टूट पड़ता है पर सारे मामलों में उन पर असर अलग अलग होता है। केवल गहराई में देखने पर ही पता लगता है कि एक घटना का इतना पृथक असर दोनों पर हुआ है। इसे मैं कलाकार की बहुत बड़ी सफलता मानता हूँ और यह रचना की श्रेष्ठता का एक प्रमाण है। यही बात सारे पात्रों के विषय में कही जा सकती है।

यशपाल ने 'झूठा सच' उपन्यास में आधुनिक इतिहास की बहुत बड़ी घटना को उपजीव्य बनाया है। लगभग १२०० पृष्ठ के इस उपन्यास में देश के विभाजन से उत्पन्न स्थितियों का लिया गया है। स्वतन्त्रता के साथ साथ देश का विभाजन हुआ। वह क्यों हुआ और कैसे हुआ, इस पर यशपाल नहीं जाते, यद्यपि पुराने वक्तों में जो विचार तथा भावनाएं चली आ रही हैं और जिनके कारण देश का विभाजन हुआ वे काफी हद तक कथानक के दौरान खुलकर सामने आ जाती हैं यदि भारत के आधुनिक इतिहास को देखा जाए तो जो सबसे अधिक रोमांचकारी घटना इस दौरान घटित हुई वह है भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति। लगभग एक शताब्दी का निरन्तर संग्राम इस घटना के पीछे है। यों पाठ्य-पुस्तकों में निराय के नगर यह लिखा जाता है कि कांग्रेस ने ही देश को स्वतन्त्रता दिलाई, पर असल में स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ किसी न किसी रूप में १८५७ से माना जा सकता है। १८५७ से १९१९ तक, जब गांधी जी नेता के रूप में सामने आए, स्वतन्त्रता संग्राम एक ऐसा लोगों तक सीमित था जिन्हें हम क्रान्तिकारी कह सकते हैं। इस बीच के सभी स्वतन्त्रता-सैनिक जैसे सावरकर, बारीन्द्र कुमार घोष आदि व्यक्ति, तथा फांसी पर चढ़ने वाले सैकड़ों शहीद और काला पानी जाने वाले हजारों देशभक्त कांग्रेस के बाहर के लोग थे। १९१९ के बाद स्वतन्त्रता-संग्राम के दो विभाग हो

गए—एक काग्रेस और दूसरा क्रांतिकारी। कभी ये दोनो आन्दोलन साथ साथ चलते कभी अलग अलग। १९३५ तक दोनो आन्दोलन एक साथ चले और समाप्त इस अर्थ म हो गय कि दोना आन्दोलन सामयिक रूप से दब गये यानी जनता के अन्तमन की गहराई म उतर कर बठ गये। पर १९३९ म जो महायुद्ध शुरू हुआ उसके फलस्वरूप स्वतन्त्रता आन्दोलन फिर उभरा। यह कहना बडा मुश्किल है कि यदि यह लडाई न छिडती तो काग्रेस फिर से आन्दोलन छेडती या नही। क्रान्तिकारी छुटपुट ढग स तो काम कर रहे थे, लेकिन काग्रेस म फिर से आन्दोलन उभरता या नही यह प्रश्न है। शायद न उभरता शायद उभरता। जो कुछ भी हो, लडाई के बाद जब १९४२ म आन्दोलन चलाया गया, उसके बहुत पहले से ही क्रांतिकारी तत्त्व कायशील थे। यद्यपि १९४२ क आन्दोलन का सूत्रपात काग्रेस के द्वारा ही हुआ था, पर उसम एस क्रान्तिकारी तत्त्व आ गए कि उस किसी भी प्रकार एक काग्रेसी आन्दोलन कहना सम्भव नही है, यहा तक कि गाधी जी ने भी उस आन्दोलन के सिलसिले म, नजरबन्द रहने क बाद छूटकर यही बयान दिया था। जो कुछ भी हो, तथ्य है कि १९४२–४३ म दोना आन्दोलन घुल मिलकर अन्तप्रविष्ट होकर चले। फिर अन्तिम धक्का आजाद हिन्द फौज ने लगा दिया, जिसके कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि अग्रजो का अपनी भारतीय फौजो पर भरोसा नही रहा। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का दबाव भी आया और हम स्वतन्त्र हुए—पर साथ ही दुर्भाग्य यह रहा कि भारत को दो हिस्सो मे बाट दिया गया।

यही वह परिस्थिति है जहा से 'झूठा सच' के कथानक का आरम्भ होता है। लोग लाहौर म बहुत आनन्द से थे। यद्यपि हिन्दुओ की सख्या वहा आधे स कुछ ही कम थी पर उनके हाथ म ८० प्रतिशत सम्पत्ति थी। हिन्दू मध्यवग बहुत सुखी था। यशपाल ने कथानक का प्रारम्भ सग सियापा या शोक-समारोह से किया है। यद्यपि मौका शोक का है पर यशपाल न उसका जो वणन प्रस्तुत किया है उसस कुछ हास्य रस ही उत्पन्न होता है। बुढिया के मरन पर कोला नाइन बुलाई गई जो सियापा विशारद समझी जाती थी यानी शोक कसे मनाना चाहिए इस सम्बन्ध म वह विशषज्ञ थी। सभी स्त्रिया सियापा और सोग के परपरागत पहनावे म थी काल लहग और राख घोलकर रँगी हुई मोटी मलमल की खूब बडी बडी चादरें। नाइन दिवगत भागवान बुढिया की दोना बहुआ क साथ बीच म बठी। फिर जिन स्त्रिया का जितना निकट का सम्बन्ध था व उतनी ही निकट एक के पश्चात एक वृत्ता म बठ गइ।

कोला नाइन ने पहली उलाहनी (विलाप का बोल) दी 'बोल मरिय

राखिये रामजी का नाम।

स्त्रियों ने समवेत स्वर में उसका अनुकरण किया।

पंजाबियों और सिन्धियों के शोक समारोह का यह सामन्ती रूप "गायब" अब समाप्त हो गया है इसलिए यशपाल ने इसकी जो अमर कहानी प्रस्तुत की है, वह मजेदार कहानी के अतिरिक्त एक युग का पूरा चित्र प्रस्तुत करती है। इसी शोक सभा में हमें तारा का परिचय मिलता है, जो अभी छात्रा है। उसका भाई जयदेव और वह स्वयं इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं और उन्हीं के जरिये से विभाजन के समय जो बाह्य और आन्तरिक स्थितियाँ पैदा हुईं उनका उद्घाटन किया गया है। जयदेव १९४३ में एम० ए० की पढ़ाई कर रहा था कि तभी युद्ध विरोधी आन्दोलन में गिरफ्तार कर लिया गया था और जेल भेज दिया गया था। जेल में उसने समय का अच्छा उपयोग किया था। पहले ही वह लेख कहानी आदि लिखता था और इस नाते उसने कुछ प्रसिद्धि भी पाई थी। १९४५ की मई में वह जेल से छूटा तो उसने घर में आकर देखा कि पिताजी का स्वास्थ्य बिगड़ चुका है और घर मुश्किल से चल रहा है। जेल में जैसा भी भोजन-वस्त्र था मिल जाता था कोई चिन्ता नहीं थी पर बाहर निकलते ही राजनीति की तो नहीं दूसरी तरह की चिन्ताओं ने उसे घेर लिया। महँगाई बढ़ती जा रही थी, यहाँ तक कि लोग पुराने युग की याद बड़े चाव से किया करते थे और अपने जमाने को बुरा बताते थे। जयदेव ने सुना—

खुशालसिंह की सरदारनी कर्तारो अपनी खिड़की से बोल उठी— घी खाने के दिन गए। अब तो बीमारी सीमारी में डाक्टर कहेगा तो बोतल में ही घी आया करेगा। बहिन हम लोग अब घी की सुगन्ध से ही सन्तोष कर सकते हैं।

बचपन से जयदेव ने गरीबी ही देखी थी, परन्तु जेल के पौने दो बरस उसने स्वार्थ की चिन्ता न करने वाले त्यागी वीर की भावना से काटे थे और भविष्य में योग्यता के बल पर निरन्तर सफल जीवन के स्वप्न बाँधता रहा था। वहाँ से लौट कर घर में दारिद्र्य का यह उत्कट रूप उसे अधिक असह्य लगा। जयदेव ने पिता के सामने कह दिया कि वह अब कालेज में नहीं पढ़ेगा।

यद्यपि अभी पाकिस्तान बहुत दूर था यहाँ तक कि प्रान्तीय स्वराज्य के दिनों में पंजाब में लीगी मन्त्रिमण्डल कायम नहीं हो सका था फिर भी हिन्दुओं के लिए परिस्थिति खराब हो चुकी थी। एक हिन्दू ने शिकायत की और जयदेव ने सुना, — 'यूनियनिस्ट मिनिस्टरी में हम लोगों के लिए नौकरियाँ कहाँ? मुसलमान और जाट को सेकिण्ड डिवीजन बी० ए० पास पर नौकरी मिल सकती है। हिन्दू के लिए एम० ए० फर्स्ट डिवीजन करके भी जगह नहीं।' दूसरे मित्रों से भी

आर्थिक कठिनाई की बातें सुनने को मिली।

जयन्त ने जेल में कुछ कहानियां लिखी थी, उन्ही को इधर उधर छपवाना शुरू किया, जिसमे उस जमाने के अनुसार कुछ-कुछ पारिश्रमिक भी मिलता चला गया। स्मरण रहे कि उसका यह लेखन-कार्य सब उर्दू में हो रहा था। अपनी कहानियों के सिलसिले में उसका परिचय एक प्रकाशक पण्डित गिरधारी लाल की मझली लड़की कनक से हुआ था। कनक को उर्दू पढ़ाई गई थी, उसने अपने आप हिन्दी पढ़ी थी पर बाप का अखबार उर्दू में निकलता था, इसलिए उर्दू के प्रति उसका झुकाव ज्यादा था। जब जयदेव ने देखा कि परिवार की हालत अच्छी नही है तो उसने कही नौकरी करने की सोची तो वह एक प्रकाशक के यहां गया जहां उसकी बहुत आवभगत हुई, पर ज्यों ही मालूम हुआ कि वह एक कहानी लेखक के रूप में नही आया है बल्कि नौकरी मांगने आया है, त्यों ही उसकी हालत अजीब हो गई। कुर्सी पर बैठाते समय वह सम्मानित कलाकार अतिथि था, उठते समय कनिष्ठ साहब के अधीन पत्र का एक नौकर। अनुभूति बहुत कटु थी, परन्तु जीविका का अवलम्ब हाथ में आ जाने की सान्त्वना ने उसे सह्य बना दिया।

जयदेव और कनक में प्रेम सम्बन्ध हो गया तो भीतर ही भीतर वे लोग मिलते मिलाते रहे। जयदेव ने उर्दू अखबार में नौकरी कर ली थी और बीच-बीच में कनक से मिला करता था। जयन्त के विचार कुछ क्रांतिकारी नही तो गरम अवश्य थे। उसने १६४६ की नाविक क्रांति पर एक टिप्पणी दे दी जो बहुत गरम समझी गई और उस टिप्पणी के कारण कई लोग उसके साथ आ गए जिनमे स्टेट पैट्रोल और कम्युनिस्ट पार्टी के लोग असद प्रद्युम्न आदि थे। एक सभा हुई जिसमे जयदेव का भाषण हुआ पर जयदेव कम्युनिस्टों में मिल न सका क्योंकि उस समय कम्युनिस्टों की नीति पाकिस्तान बनाने की थी। जयदेव कम्युनिस्ट दल के जातियों के आत्म निर्णय के अधिकार की मांग का अर्थ यह समझता था कि हिन्दुओं और मुसलमानों को दो पृथक जातियां मान कर देश का पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बटवारा हो। जयदेव देश का बटवारे से बचाने का उपाय समझाता था। इस विकट समस्या पर बहस करने के लिये स्टडी सर्कल (विचार सभायें) होते थे।

तारा की सहानुभूति कम्युनिस्टों के दृष्टिकोण के साथ थी यह जयदेव को अच्छा नहीं लगा।

पाकिस्तान निर्माण के मसले को लेकर लाहौर शहर के अन्दर काफी चलचल मची हुई थी और राजनैतिक पहलू के अतिरिक्त बहुत तरह की बातें भीतर ही

भीतर चल रहा थी और परिस्थिति को बिगाड रही थी, उस एक नमूना लीजिए

नवयुवती ने उत्तर दिया—"बहनो हिन्दू फेरी वाले आयेंगे क्या नहीं ? तुम जानती नहीं मंडी मण्डी पर तो मुसलमानो का कब्जा है। हिन्दू माल खरीदते हैं तो मुसलमान दाम चढा देते है। अपने भाई को दो पैसे ज्यादा भी दिये तो क्या। हम इन मुसलो का पेट पालेंगे तो ये एक दिन हमारे ही पेट म छुरा भोकने भी तो आयेंगे। हमारे मुहल्ले म तो सब बहनो ने कसम खा ली है कि किसी मुसलमान से सौदा नही खरीदेंगी।'

यहाँ थोडी देर रुक कर यह बता दिया जाए कि हमारी राष्ट्रीयता के उदय काल से ही उसमे सजीव तत्त्व शामिल थे। ऐसे बिम्ब प्रतीक और सन्दर्भ थे, जिन्हे मुसलमानी आँखें पचा नहीं सकती थी साथ ही एक हद तक अंग्रेजो के इशारे पर और एक हद तक अन्य धर्मों की तरह इस्लामी कट्टरता के कारण स्वयं मुसलमानो म सर सैयद से लेकर हाली आदि कवियो के जरिये मुसलमानो म एक अलगाव की भावना पैदा की जा रही थी। यहा इसके ब्यौरे म जाने की आवश्यकता नहीं है पर स्वतन्त्रता के कुछ पहले जो गडगडाहटें सुनाई दे रही थी उनका चित्रण यशपाल ने किया है। जैसे—

शानदेवी कहनो गई— बम्बई म मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त १९४६ से हिन्दुओ से लडाई छेड दी है। सर नम कहते है हम पाकिस्तान बनायेंगे। हम आधा हिन्दुस्तान लेंगे। पंजाब पाकिस्तान म लेंगे। हिन्दुओ को यहा से निकाल देंगे ।

बसन्त कौर बोल उठी—'ए है निकाल देंगे। पंजाब उनके बाप का है। पंजाब तो सदा हिन्दू सिक्खो का रहा है। इन मरे मुसलमानो का राज दिल्ली, आगरा, लखनऊ म रहा होगा। पंजाब तो हमारा है।

पर तारा जसी कुछ स्त्रिया भी थी जो यह कहती रहती थी कि अंग्रेज ही यह लडाई कराते रहते हैं

तारा ने बात बदलने के लिये शानदेवी को सम्बोधन किया "बहिन जी, हिन्दू मुसलमान का झगडा तो व्यर्थ का भूसला है। झगड कर जायेंगे कहा ? यही तो दोनो का घर है। असली लडाई तो अंग्रेजो से है जिसने मुल्क पर कब्जा किया हुआ है।'

धीरे धीरे परिस्थिति बदलती चली गई। रोज तरह-तरह की सभायें होतीं और उनमे तरह-तरह के नारे लगते

इस भीड म से प्रति सध्या अल्लाहो अकबर ! मुस्लिम-लीग जिन्दाबाद !

कदेआजम जिन्दाबाद ! खिजर मिनिस्टी मुरदाबाद ! लीग मिनिस्ट्री कायम हो ! हिन्दू मुस्लिम इत्तहाद जिन्दाबाद ! पाकिस्तान ले के रहेंगे के नारे लगाते हुए जुलूस निकलते। इन जुलूसों का आकार बहुत बड़ा न होता। कुछ मुस्लिम लीग के स्वयसेवक, कुछ विद्यार्थी या मध्यम श्रेणी के मुसलमान युवक ही हरे झण्डे लिये इन जुलूसों में रहते थे।

यशपाल ने अपनी पुस्तक में उन दिनों का लगभग तारीखवार इतिहास प्रस्तुत किया है। पर यह इतिहास इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि उपन्यास के प्रवाह में कोई रुकावट नहीं आती। जेम्स जायस के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उन्होंने अपनी पुस्तकों में डबलिन शहर का ऐसा चित्र जगह जगह प्रस्तुत किया है कि यदि किसी कारण से डबलिन शहर समाप्त हो जाए तो जेम्स जायस की किताब से उसका पुनर्निर्माण सम्भव होगा। इसी प्रकार से यशपाल ने लाहौर का न केवल भूगोल बल्कि उन दिनों का इतिहास भी प्रस्तुत किया है।

लीग का आन्दोलन बहुत बढ़ता जाता देखकर खिजर मिनिस्ट्री ने अनेक नगरों में दफा १४४ लगा कर जुलूसों और सभाओं पर रोक लगा दी थी। लाहौर में मुस्लिम लीग ने दफा १४४ के विरोध में अहिंसात्मक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। आशा नहीं थी कि लीग भी कांग्रेस की भांति अहिंसात्मक रह कर आन्दोलन जारी रख सकेगी। आशंका थी कि लीग के स्वयसेवक उत्तेजित होकर मार पीट करेंगे और सरकार की सशस्त्र शक्ति के सामने दब जायेंगे। मुस्लिम लीग के बड़े-बड़े नेता, फिरोज खां नून इफतखारुद्दीन, गजनफरअली खां सत्याग्रह करके जेल चले गये थे परन्तु प्रति दिन लीग के स्वयसेवकों के अहिंसात्मक जुलूस निकलते। पुलिस उन पर लाठी चलाती। स्वयसेवक अहिंसात्मक रह कर 'अल्ला हो अकबर ! मुस्लिम लीग जिन्दाबाद ! खिजर मिनिस्ट्री मुर्दाबाद ! पाकिस्तान ले के रहेंगे ! लीग मिनिस्ट्री कायम हो ! हिन्दू मुस्लिम एक हो।' के नारे लगाते रहते और गिरफ्तार हो जाते।

इन जुलूसों में रेलवे मजदूर और स्टूडेंट फेडरेशन के लोग भाग नहीं ले रहे थे। परीक्षायें समीप आ रही थी। तारा अधिक से अधिक समय पढ़ाई में लगाने लगी थी पर कभी स्टडी-सर्कल की खबर पाती तो चली भी जाती। असद प्राय मिल जाता, परन्तु अकेले में दो तीन बातें कर सकने का अवसर नहीं आया।

तारा के साथ असद की दोस्ती बढ़ती जा रही थी। पर साथ ही देश का नाटक दूसरे ही ढंग से परिपक्व होता जा रहा था और वह तारा और असद के मिलन के बिलकुल विपरीत जा रहा था। यशपाल ने उस दृश्य का भी वर्णन किया है जब मास्टर तारासिंह ने मुसलमानों को धमकाया था और उसके कारण स्थिति

सुधरने के बजाय बिगड़ती चली गई थी।

मास्टर तारासिंह ने प्रधान की अनुमति की प्रतीक्षा न कर अपना भाषण आरम्भ कर दिया— हम पंजाब में मुसलमानों की हुकूमत हर्गिज बरदाश्त नहीं करें। आप लोग तवारीख को मत भूलिये। सिक्ख कौम मुसलमानों के खिलाफ लड़ लड़ कर ही इतनी बड़ी हुई है। अगर हम मुसलमानों की हुकूमत बर्दाश्त करनी है तो श्री दसमेश (गुरु गोविंदसिंह) ने श्रीवार किसलिए धारण किया था?"

फिर तो हत्यायें आदि शुरू हो गई। पहले दौलू मामा की हत्या का दृश्य दिखलाया गया है जिसे मुसलमानों ने मारा था। वह एक बहुत ही साधारण और निर्दोष व्यक्ति था जिसे हिंदू और मुसलमान सभी पसन्द करते थे और पीढ़ी दर पीढ़ी सभी उसे मामा कहते थे।

इसी के साथ तारा के विवाह की बात भी चल रही थी। असली बात तो यह थी कि तारा का विवाह उसी समय सोमदेव नामक एक व्यक्ति से तय हुआ था जिसे तारा नहीं चाहती थी। तारा तो असद के साथ विवाह करना चाहती थी। उधर कनक का भी बुरा हाल था क्योंकि कनक के पिता बड़े आदमी थे और उन्हें मालूम हो चुका था कि वह जयदेव से प्रेम करती है। हद तो यह है कि उसके पत्र भी छिप कर पढ़े जाते थे। फिर भी कनक पुरी से उस समय हवालात में मिल आई जब कि वह हिंदू मुस्लिम झगड़े के कारण में गिरफ्तार होकर बन्द था। कनक के बहनोई ने कनक को तरह-तरह से समझाया कि प्रेम करना और बात है और शादी करना और इत्यादि इत्यादि। इस तरह उसने ब्रह्मास्त्र के रूप में कनक से यह कहा कि जयदेव यों तो प्रेम का बड़ा प्रतिपादक बनता है पर तारा का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कर रहा है। बाद में जब जयदेव से कनक ने इस सम्बन्ध में पूछा तो जयदेव साफ झूठ बोल गया। उसने यह कहा कि तारा की सगाई पहले ही चुकी थी और तारा ने कभी खुल कर विरोध नहीं किया, इत्यादि इत्यादि। तारा की शादी हो गई और उसके पति को मालूम हो गया कि तारा उस से शादी नहीं करना चाहती थी इसलिए उसने एक दिन उसकी बहुत मारपीट की जिससे वह तंग आकर भागी और एक मुसलमान के हाथ लग गई जिसने उस पर बलात्कार किया। उस बलात्कार से उसके परिवार और पड़ोस में क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई यह यशपाल ने निष्पक्ष होकर दिखाया है। उसके बाद मुहल्ले वाली मुसलमानियों ने उसका किस प्रकार स्वागत का यह भी दिखाया गया है। तारा की हालत ऐसी हो गई जो इन शब्दों में व्यक्त है

'हजारों बार सुनी हुई बात याद आई—मनुष्य के चाहने से कुछ नहीं होता

होता वही है जो भगवान चाहता है। भगवान अभी मेरा और क्या करना चाहता है? मुझे और क्या दण्ड देना चाहता है? पिछले जन्म के एसे क्या पाप है? कौन से पाप? इस जन्म के किन कर्मों का दण्ड है? सोमराज से विवाह न करने की इच्छा का? या असद के साथ चले जाने की इच्छा का? सोमराज से तो विवाह कर ही लिया। अब मेरा और क्या हाल होना है? मरने की भी स्वतन्त्रता नहीं शायद नरक की यातना में नरक की भट्ठी में जीवित जलाए जाना, गरम तेल में खौलाये जाना, आरे से सिर चीरा जाना बाकी है जो होना है जल्दी हो।

यह स्थिति कुछ-कुछ अस्तित्ववादी परिस्थिति से मिलती है। पुरी की भी ऐसी हालत हो चुकी थी जिसका वर्णन यों किया गया है —

'बड़ी चिन्ता अब उसे (पुरी को) व्यर्थ जान पड़ती थी। लाखों आदमियों का समाज उसके विचार से नहीं चल सकता था। मानव समुद्र किसी ऐसी जान किस सामूहिक प्रेरणा से चल रहा था। उस सामूहिक माग में भिन्न माग किसी व्यक्ति के लिए अपना लेना सम्भव न था। इस समुद्र में सभी की अपनी अपनी चिन्ताएं भी थीं।"

तारा और कनक की परिस्थितियों में हम हिन्दू समाज में स्त्रियों की हालत को अच्छी तरह देख सकते हैं। साथ ही, विभाजन से किस प्रकार तारा और कनक पर प्रभाव पड़ा और किस प्रकार वे अपने प्रेमियों से मिल नहीं सकीं, इसका पूरा ब्यौरा आ जाता है। यशपाल ने न केवल यह दिखलाया है कि हिन्दुओं ने मुसलमानों पर अत्याचार किए और मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किए, बल्कि वह स्थिति भी दिखाई जब हिन्दुओं ने हिन्दुओं को लूटा—

पुरी की गर्दन पर कोई मजबूत पंजा कस गया था और नाक के सामने पैना छुरा था। उस का सिर चकरा गया। सुनाई दिया—

'घड़ी उतार दे! खबरदार! मुंह से आवाज नहीं निकले!'

सोचने का समय न था। पुरी की सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। उसका दाहिना हाथ बाईं कलाई पर से घड़ी उतारने लगा। सामने खड़े आदमी ने छुरा एक हाथ में थामे उसकी जेब से बटुआ खींच लिया और फिर उसका कमीज की जेब टटोल कर पतलून की जेबें भी टटोलीं। तेइस रुपये और छः आने पांच पैसे के साथ ही वक्स की बची रह गई चाबी भी जेब से निकल गई।

घड़ी उतारते-उतारते पुरी कुछ सोच सकने की अवस्था में हो गया था, साहस कर बोला—"भई, मैं तो तुम्हारा हिन्दू भाई ही हूं।'

इन्हीं परिस्थितियों में भारत और पाकिस्तान दो अलग बन गये और 'झूठा

मच के इस पहले भाग का अंत ड्राइवर के इन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में होता है :

"ड्राइवर ऊँचे स्वर में बोला :

'रब्ब ने जिन्ह एक बनाया था, रब्ब के बंदों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।'

इसके बाद दूसरा भाग शुरू होता है जो पहले भाग से भी बड़ा है।

डिमाई आकार के ७१० पृष्ठों में यह भाग समाप्त हुआ है। पर इसमें यशपाल ने क्या प्रमाणित किया है इसे यदि हम देखें तो हमें कुछ आश्चर्य होगा। इसमें मुख्यतः दो पात्र हैं—एक पुरी और एक सूद साहब। पुरी अब लाहौर से भागा हुआ एक शरणार्थी है। इस रूप में यशपाल ने शरणार्थियों की सारी समस्याएँ, उन पर आने वाली भारी विपत्तियाँ और किस प्रकार से इन शरणार्थियों ने अपने पुरुषार्थ से सिर ऊँचा करके फिर एक बार धरती पर पग जमा लिए यह दिखाया है। सूद का जीवन एक कांग्रेसी नेता का जीवन है। वह सत्य के बहुत पास रहने की चेष्टा करता है, वह जान बूझ कर कोई बड़ी बेईमानी नहीं करता फिर भी बहुत सी छोटी छोटी बेईमानियाँ हो ही जाती हैं। वह अपने दल में प्रभुत्व तथा नेतागिरी को कायम रखने के लिए अधिक तो नहीं, पर कुछ न कुछ जाल फरेब रचता ही रहता है। वह बढ़ते बढ़ते मंत्री तक हो जाता है पर अंत में हम यह देखते हैं कि वह अपनी सारी चालाकियों के बावजूद सत्रह सौ वोटों से हार जाता है। इस पर एक पात्र कहता है और यही उपन्यास के अन्तिम शब्द हैं— गिल अब तो विश्वास करोगे जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।

इन शब्दों से क्या ध्वनि निकलती है ? क्या यह ध्वनि नहीं निकलती कि लोकतन्त्र में ही सारी समस्या सुलझ सकती है और क्रान्ति की कोई आवश्यकता नहीं है, जब कि समाजवादी विचारधारा का यह एक तरह से मौलिक उपपाद्य है कि लोकतन्त्र से भले ही किसी क्षेत्र में कुछ हो जाए पर लोकतन्त्र असल में वह अंजीर का पत्ता है जिसमें पूँजीवादी वर्ग का खूँखारपन तथा उसकी नग्नता ढकी रहती है।

इस प्रकार आधारभूत रूप में यशपाल ने एक पुस्तक लिखी है जो लोकतन्त्र की बाइबिल बन सकती है और जो कट्टर समाजवादी विचारधारा के विरुद्ध जा पड़ती है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यशपाल ने यह जो कहा है कि देश का भविष्य जनता के ही हाथ में है तो जनता वोट भी दे सकती है और क्रान्ति भी कर सकती है। इस उपन्यास में केवल वोट देने का ही पहलू दिखाया गया

है। पर इस कारण जनता क हाथा स क्रान्ति का अस्त्र छीना तो नही गया है।
इस पुस्तक म यत्र-तत्र काग्रस तथा काग्रसिया पर मन्तव्य तथा टिप्पणिया की गई हैं जो यह व्यक्त करती ह कि काग्रसी कितन गिरे हुए है। एक जगह लेखक एक पात्र स कहलवात हैं— भूखा मरत थ जल काटत थ तभी तक भल थे। कया कहत है कुर्सी पर बठत ही दिमाग बिगड गए। कुत्त को घी याद ही पचता ह।'
एक और अन्य पात्रा नस मर्सी कहती है— इन काग्रसिया का तो सभी जगह यही हाल है। अस्पताल म जिस देखा मिनिस्टरा और पालियामण्ट के मेम्बरा की चिट्ठी लिए चला आ रहा है। जुकाम हो जाए ता वाड म जा लटते ह और सब कुछ मा करवा लेत ह। जो गरीब हैं उनक लिए जगह नही है। डाक्टर अपन ऊपर क लोगा को यह करत दखत हं ता जहा मौका दखत हैं वह भी हाथ मार लत है।
लखक न विशषकर पजाब धारा सभा की भीतरी दलबन्दी और काग्रस का गुटबन्दी क विरुद्ध किसी पात्र क मुह स नहा, बल्कि अपनी तरफ स कुछ बातें कही हैं जो ध्यान दन याग्य है— अग्रजी सरकार क पुराने रायबहादुर और खरख्वाह अमन सभाइ और सरकारी अमलदारी स लाभ उठान वाल लोग काग्रस क मम्बर बन कर सफद नोकीली टोपी पहनने लग थ। अब काग्रस का चन्दा चार चार आने और रुपए रुपए का रसीदा स इकट्ठा नहा किया जाता था। चुनाव फण्ड म चन्दा मिलो और कम्पनिया से बीस चालीस हजार और लाख दो लाख रुपए के चेका से आता था। काग्रस से सम्बन्ध रखन वाले जो लोग चार साल पहल सौ सवा सौ की नौकरियो स निर्वाह कर रह थे अब अपन सम्बन्धी के मन्त्री बन जाने या किसी महत्वपूर्ण कमटी का मेम्बर बन जान पर जहा-तहा हजार बारह सौ पाने लगे है। मन्त्रिया क मट्रिक भी पास न कर सकन वाले सुपुत्र सरकारी विभागा के अध्यक्ष बन कर हजार रुपए मासिक से भी असन्तुष्ट थ। मन्त्रिया के दामादा के लिए मनजिग डायरेक्टर स कम कोई पद सोचा ही नही जा सकता था।
मुनाफे को ही धर्म समझन वाल बड-बडे पूजीपति काग्रसी लोगा क प्रति श्रद्धा और उदारता घाटा उठा कर नहीं दिखा रहे थे। ऐसे मामल की अफवाह और सवाद सब लोगा की जबाना पर थे। लोग धारा-सभा के सदस्या (मम्बर आफ लेजिस्लेटिव असेम्बली) को एम० एल० ए० न कह कर घृणा स मल लोग कहन लगे थ। काग्रस क मुकाबल म कोई दूसरा सशक्त राजनतिक सगठन नही था। नए उठते सगठना म स राष्ट्रीय-सवक सघ और कम्युनिस्ट पार्टी न विद्रोह खडा करके काग्रस सरकार को उन्ह कुचल डालन का कानूनी अवसर द दिया था। लोग जानत थ कि चुनाव म काग्रस ही विजयी होगी। निराशा की उपक्षा म लाग कह दत थे—इन्ह ही राज कर लन दा यह पाच बरस म खा रह

है इनका पेट कुछ तो भरा होगा इनका पेट थोड़े में पूरा हो जाएगा। दूसरा कोई आएगा तो जितना यह खा चुके हैं उतना खा कर फिर और खाएगा।

कांग्रेस सत्ता से ऐसी निराशा और अविश्वास में ऐसे भी कांग्रेसी नेता और मन्त्री थे जो अफवाहों के अपवाद थे। सूद जी के लिए न ज़मीन जायदाद बटोर लेने की निन्दा थी न मकान खड़ा कर लेने और बैंक बैलेन्स जमा करने की अफवाह थी। सूद जी के विरोधी भी उन्हें ज़र ज़न-ज़मीन के मोह से मुक्त मानते थे। उनके हज़ारों समर्थकों ने लाभ उठाया था। हज़ारों लाभ उठाने की आशा में थे। वे सब लोग तन-मन से सूद जी के समर्थक थे। उनकी सहायता के लिए तत्पर थे।

लेखक ने यह भी दिखलाया है कि जिन लोगों ने जेल नहीं काटी उन लोगों को भी राजनैतिक पीड़ित करार देने हुए सर्टिफिकेट दिए गए। तारा ने यह भी देखा कि उसके किसी समय के पति पर अब अपनी भाभी के साथ रहने वाले सोमराज को राज्य कांग्रेस कमेटी के कागज पर राज्य कांग्रेस कमेटी की मुहर सहित यह सर्टिफिकेट दिया गया था कि उसने राजनैतिक कारणों में दो वर्ष जेल काटी।

कांग्रेसियों के अतिरिक्त और भी गहराई में जाकर यशपाल यह भी दिखलाते हैं कि वर्तमान समाज में वकील और कानून न्याय के लिए नहीं हैं, बल्कि न्याय को गुमराह करने वाले हैं। वह कहते हैं—वकील कानून के दाव-पेंचों से न्याय पाना सबका कितना कठिन बना सकते हैं। वकील सभी विवादों में दोनों ही पक्षों के समर्थन में कानून और युक्तियां पेश कर सकते हैं दोनों ही पक्षों के समर्थन में कानून की व्याख्या कर सकते हैं। दो बहुत अमीर पक्षों में मुकदमा होने पर दोनों ही ओर से बहुत कानूनदां वकील खड़े होते हैं। अदालतें वास्तविकता से अनजान बन कर दोनों पक्षों की गवाहियों और तर्कों के आधार पर निर्णय दे देती हैं। लोग तथ्य को जानते हुए भी उस निर्णय का स्वीकार करने के लिए विवश हो जाते हैं क्योंकि उस निर्णय के पीछे शासन की शक्ति रहती है।

मैंने सबसे पहले इस उपन्यास के राजनैतिक पक्ष को लिया। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इस उपन्यास में केवल राजनीति ही राजनीति है। नहीं, यह उपन्यास बहुत विस्तृत अर्थ में जीवन के सभी पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता है। कन्नो के जीवन में हम यह देखते हैं कि हिन्दू समाज कितना गुमराह और बेदर्द हो सकता है। कन्नी बड़ी मुश्किलों में ढूँढ-ढाँढ कर अपने पति के घर पहुँची तो उस उमर घर वालों ने निकाल दिया। कहा गया कि तुम्हारा धर्म नष्ट हो

गया है। इस पर एक नौजवान ने क्रोध में किवाड़ों पर धक्का देकर कहा—बेशर्मो ! कसूर तुम्हारा नहीं तो किसका है ? पर इसका कोई असर नहीं हुआ। बन्तो को घर में घुसने नहीं दिया गया। फट्ट से आवाज हुई। बन्ती ने अपना माथा दहलीज पर पटक दिया था। पांच दस बीस बार बन्ती दहलीज पर माथा पटकती गई। उसका गला रुंध गया परन्तु वह दहलीज पर अपना सिर मारती ही जा रही थी। अन्त में बन्ती वहीं मरी मिली। जब वह मर गई तो उसे सती बना लिया गया। इस घटना में और बाद में, तारा के पूरे जीवन में यशपाल ने भारतीय हिन्दू नारी की दुखभरी कहानी लिखी है जो अविस्मरणीय है और जिसके लिए हमारा धर्म जिम्मेदार है।

उपन्यास में अगरवाला परिवार का चित्रण भी बहुत सुन्दर रूप में हुआ है। कांग्रेस की भक्ति और साथ ही साथ सब तरह के नैतिक सिद्धान्तों को तिलांजलि देना। मिसेज अगरवाला का यह कहना कि मैं तब तक जरा मुंह धोकर मैं मरी खद्दर की साड़ी बदल लूं, कमर पर मूंज की तरह गड़ रही है, बहुत ही मार्मिक है। इन्हीं मिसेज अगरवाला ने अपना गांधी जी की मृत्यु का समाचार सुन कर जल्दी से खद्दर की साड़ी पहन ली थी। वह गांधी जी के शव के साथ जुलूस में जाने के पहले शिवनी को बुलाकर बोली—"मां जी को कहकर हमारे और साहब के खाने के लिए पराठे बनवा दो। हम दोपहर में खाने के लिए नहीं आएंगे।"

अगरवाला परिवार के चित्रण में यशपाल शायद उन पूंजीपति परिवारों का चित्रण करना चाहते हैं जो कांग्रेस के बहुत निकट थे और युद्ध कोष में लाखों और कांग्रेस को हजारों रुपए का चन्दा देते थे। इन चित्रणों के अलावा लेखक ने यत्र तत्र कांग्रेसियों के विरुद्ध बहुत तरह के विद्रूप किए हैं जैसे लीजिए—'कांग्रेसियों ने गांधी जी से एक ही बात मांग ली है कि चाहे जिस लड़की या स्त्री के कन्धे पर हाथ रख लें। सभी अपने को राष्ट्रपिता समझने लगे हैं।'

एक जगह एक पात्र उत्तेजित होकर कह रहा है—दो ही साल में 'गांधी की जय' खोखली पड़ गई है। सब शासन पुराने आई० सी० एस० लोग चला रहे हैं। इन लोगों ने सेवा करना नहीं शासन करना सीखा है। इन्हें डमोक्रेसी नहीं, ब्यूरोक्रेसी चाहिए। वही कानून है वही पुलिस का राज। अब भी बिना मुकदमा चलाए कैद, बल्कि 'डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट' में पुलिस के हाथ लम्बे हो गए हैं। पुलिस बिलकुल निरंकुश हो गई है। हाईकोर्ट लोगों को छुड़वा देती है, पुलिस दूसरी दफा लगा कर पकड़ लेती है। हमें तो शरम आती है कि अंग्रेज सरकार ने अदालत में दिए भगतसिंह के बयान को जब्त नहीं किया था, पर इस सरकार ने गोडसे का बयान जब्त कर लिया है। क्या इनके पास गोडसे के लिए जवाब नहीं है ? मुंह बन्द कर

दना डेमोक्रेसी है ? कृपलानी ठीक कहते है रेवोल्यूशन म यह कभी नही होता कि पुराने ही शासक बने रह ? रेवोल्यूशन इज चेंज आफ क्लास (शासित म शासक बदल जाते है) । रेवोल्यूशन हुआ कहा आप ही बताइए ?"

इस उपन्यास क मुख्य पात्रों के जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा ज्ञात होगा कि उनके जरिये युग सम्पूर्ण रूप से अपने पूरे वैविध्य म प्रतिफलित हो रहा है । इस उपन्यास का सबसे मुख्य पात्र जयदेव है । यदि देश का विभाजन न होता तो हम आशा करते है कि वह अपनी लेखन प्रतिभा की बदौलत किसी पत्र का सम्पादक हो जाता या जैसा कि उस युग म होता था, वह स्वय किसी मित्र की सहायता से एक पत्र निकालता और उसका सम्पादक और प्रकाशक हो जाता और समाज पर अपनी छाप छोड जाता । जयदेव पहले से एक साधारण भद्र युवक के रूप म विकसित हो रहा था कि तभी १९४२ के आदोलन म वह जेल गया । वही से उसने मानो अपने जीवन का मूल स्रोत दूसरो को अर्पित कर दिया और वह मूल स्रोत से वहका तो नही पर किसी न किसी रूप म स्रोत का शिकार होता चला गया । यदि वह जेल न जाता तो वह एम० ए० पास कर लेता और लेखक के साथ साथ डिग्रीधारी होने के कारण वह एक सफल नागरिक बन सकता था, पर जेल जाने के कारण वह बराबर विरोधी परिस्थितियो मे जूझता रहा और अत म हम उसे एक बेईमान छोटे मोटे नेता के रूप म देखते हैं ।

यही बात उसकी बहन तारा के सम्बन्ध म भी कही जा सकती है कि उसके जीवन म युग का प्रतिफलन भरपूर है पर बिल्कुल दूसरे ही आयाम म । जिस सोमराज के साथ उसकी शादी हुई थी वह शादी तो हर हालत म होती, चाहे देश का विभाजन होता, यह भी कम कहा जा सकता है ? यदि उसका भाई जेल काट कर न आता और उसके पिता की आर्थिक हालत न बिगडती और वह हालत बिगडने के कारण उसके भाई की वकत घर म न घट जाती, क्योकि वह रोटियो के लिए पिता पर निर्भर था ... शायद भाई उसकी मदद करता और सगाई के बावजूद वह यह शादी न होने देता । तब तारा के लिए असद म शादी करना मुश्किल न होता और असद उस आसानी से स्वीकार भी कर लेता । असद ने तो उसे इसलिए स्वीकार नही किया था कि कही इससे हिंदू मुस्लिम वैमनस्य और न बढ जाए और लोग यह न समझें कि असद के दल का काम ही यह है कि लडकियो को गलत रास्ते पर ले जाना । फिर भी यदि मान लिया जाय कि तारा की शादी जरा हुई एसे हो जाती और वह उसी तरह म पति के हाथ मार खाकर घर म जागती तो विभाजन होने पर वह मन्नू के न हाथ न पडती और इस प्रकार वह, जो कहा को न रही, कहीं न होती ।

इसी प्रकार प्रमुख पात्र सूद साहब के विषय में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार वह शरणार्थी बन कर आए और धीरे धीरे एक टागी नेता बन। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, उपन्यास की सफलता इसी में है कि पात्र मुख्य हो या गौण उसके ज़रिये से युग प्रतिफलित हो, पर साथ ही सभी लोग अपना अपना जीवन जीते हैं, तभी राजनैतिक उपन्यास कलाकृति बन सकता है।

इस प्रकार इस पुस्तक में अभी हाल के मामलों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन और चित्रण है। सम्भव है कहीं-कहीं अद्धसत्य और अतिरंजन हो, लेखक के क्रांतिकारी संस्कार उनमें प्रतिफलित हैं, पर लेखक ने जो कुछ भी कहा है वह बहुत ज़बरदस्त तरीके से कहा है और अक्सर उन कर्ताओं का नामो पहचान में सफलता प्राप्त की है। वह वर्तमान शासकों से बहुत असन्तुष्ट हैं पर उनकी इतनी बड़ी पुस्तक में वैकल्पिक नायकों की कोई रूपरेखा हमारे सामने नहीं आती जिसमें मान लिया जाए कि लोग गए गुज़रे हैं इनकी जगह ये लें। पता नहीं लेखक अपने पाठक से क्या और किन लोगों की सिफारिश करता है? उन्होंने यह तो लिखा है—"एक महात्मा के पीछे हज़ारों पाखण्डी होते हैं। भगतसिंह या रेवाल्यूशनरियों का अनुकरण पाखण्ड से नहीं किया जा सकता। वहां तो जान की बाज़ी ही सब कुछ होती है।" पर वर्तमान समय में भगतसिंह और क्रांतिकारियों का क्या रूप होगा और क्या रूप है, इसको लेखक ने स्पष्ट नहीं किया। हम इसके लिए लेखक को दोष नहीं देते क्योंकि जो लोग आज असन्तुष्ट हैं उन सबकी विचारधारा में यही खामी है। वे वर्तमान की बुराई करते हैं और बहुत कुछ सही बुराई करते हैं पर अक्सर कोई विकल्प सामने नहीं रखते। इस प्रकाण्ड उपन्यास में भी कोई वैकल्पिक इंगित या दल या व्यक्ति सामने नहीं आता जिसके सम्बन्ध में पाठक यह कह सके कि भई, ये लोग तो खराब हैं ये अच्छे हैं।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह उपन्यास एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अभिलेख है जिससे हमारे समाज के हर पहलू और हर हिस्से पर तेज़ रोशनी पड़ती है। हम किसी उपन्यासकार से यह आशा करें कि वह हमें रास्ता भी दिखाएगा तो यह शायद बहुत अधिक आशा करना होगा। लेखक इस उपन्यास में यह साफ कर देता है कि वर्तमान समाज में बहुत-कुछ सड़ा हुआ, गला हुआ, कोढ़ लगा हुआ, ज़हरीला है और उसे सुधारने, तोड़कर बनाने की ज़रूरत है। पर यह कैसे होगा, उसके लिए क्या क्या साधन काम में लाए जाएंगे, इस पर पाठक स्वयं सोचें।

अन्त में हम लेखक की तकनीक के सम्बन्ध में एक मौलिक प्रश्न उठाना चाहते हैं। क्या उपन्यास लेखक को यह आज़ादी है कि वह इतिहास प्रसिद्ध

ऐसा इमारतें भी हैं ? कृष्णानी ठीक कहते हैं क्योंकि जापान में यह कभी नहीं होता कि पुराने ही नाम बने रहें। 'नेवी चुगान इज चेंज आँफ न्सम (शान्ति में नाम बदल जाते हैं)। नेवाल्युगान हुआ कहाँ आप ही बताइए।'

इस उपन्यास के मुख्य पात्रों के जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा भान होगा कि उनके जरिये युग सम्पूर्ण रूप में अपने पूरे वैविध्य में प्रतिफलित हो रहा है। इस उपन्यास का सबसे मुख्य पात्र जयदेव है। यदि देश का विभाजन न होता तो हम आशा करते हैं कि वह अपनी लगन प्रतिभा की बदौलत किसी पत्र का सम्पादक हो जाता या जैसा कि उस युग में होता था वह स्वयं किसी मित्र की सहायता से एक पत्र निकालता और उसका सम्पादक और प्रकाशक हो जाता और समाज पर अपनी छाप छोड़ जाता। जयदेव पहले से एक साधारण भद्र युवक के रूप में विकसित हो रहा था कि तभी १९४२ के आन्दोलन में वह जेल गया। वहीं से उसने मानो अपने जीवन का मूल स्थान दूसरों को अर्पित कर दिया और वह मूल स्थान से बहका तो नहीं पर किसी न किसी रूप में स्खलन का शिकार होता चला गया। यदि वह जेल न जाता तो वह एम० ए० पास कर लेता और लेखक के साथ साथ डिग्रीधारी होने के कारण वह एक सफल नागरिक बन सकता था पर जेल जाने के कारण वह बराबर विरोधी परिस्थितियों से जूझता रहा और अन्त में हम उसे एक बेईमान छोटे-मोटे नेता के रूप में देखते हैं।

यही बात उसकी बहन तारा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है कि उसके जीवन में युग का प्रतिफलन भरपूर है पर बिल्कुल दूसरे ही आयाम में। जिस सोमराज के साथ उसकी शादी हुई थी वह शादी तो हर हालत में होती, चाहे देश का विभाजन होता यह भी कैसे कहा जा सकता है? यदि उसका भाई जेल काट कर न आता और उसके पिता की आर्थिक हालत न बिगड़ती और वह हालत बिगड़ने के कारण उसके भाई की बकत घर में न घट जाती क्योंकि वह रोटियों के लिए पिता पर निर्भर था तो शायद भाई उसकी मदद करता और झगड़े के बावजूद वह यह शादी न होने देता। तब तारा के लिए असद से शादी करना मुश्किल न होता और असद उसे आसानी से स्वीकार भी कर लेता। असद ने तो उसे इसलिए स्वीकार नहीं किया था कि कहीं इससे हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य और न बढ़ जाए और लोग यह न समझें कि असद के दल का काम ही यह है कि लड़कियों को गलत रास्ते पर ले जाना। फिर भी यदि मान लिया जाय कि तारा की शादी जैसे हुई ऐसे ही होती और वह उसी तरह से पति के हाथ मार खाकर घर से भागती तो विभाजन होने पर वह नव्वू के न हाथ न पड़ती और इस प्रकार वह जो कहीं की न रही वैसी न होती।

इसी प्रकार प्रमुख पात्र सूद साहब के विषय में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार वह शरणार्थी बन कर आए और धीरे धीरे एक ढोंगी नेता बन। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, उपन्यास की सफलता इसी में है कि पात्र मुख्य हों या गौण उसके ज़रिये से युग प्रतिफलित हो, पर साथ ही सभी लोग अपना अपना जीवन जीते हैं तभी राजनैतिक उपन्यास कलाकृति बन सकता है।

इस प्रकार इस पुस्तक में अभी हाल के सालों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन और चित्रण है। सम्भव है कहीं कहीं अर्द्धसत्य और अतिरंजन हो, लेखक के क्रान्तिकारी संस्कार उनमें प्रतिफलित हैं, पर लेखक ने जो कुछ भी कहा है वह बहुत ज़बरदस्त तरीके से कहा है और अवसर उसे कला का जामा पहनाने में सफलता प्राप्त की है। वह वर्तमान शासकों से बहुत असन्तुष्ट हैं पर उनकी इतनी बड़ी पुस्तक में वैकल्पिक शासकों की कोई रूपरेखा हमारे सामने नहीं आती जिससे मान लिया जाए कि लोग गए गुज़रे हैं इनकी जगह ये लें। पता नहीं लेखक अपने पाठक से क्या और किन लोगों की सिफारिश करता है? उन्होंने यह तो लिखा है—"एक महात्मा के पीछे हजारों पाखण्डी होते हैं। भगतसिंह या रेवोल्यूशनरियों का अनुकरण पाखण्ड से नहीं किया जा सकता। वहां तो जान की बाजी ही सब कुछ होती है।" पर वर्तमान समय में भगतसिंह और क्रान्तिकारियों का क्या रूप होगा और क्या रूप है, इसको लेखक ने स्पष्ट नहीं किया। हम इसके लिए लेखक को दोष नहीं देते, क्योंकि जो लोग आज असन्तुष्ट हैं उन सबकी विचारधारा में यही खामी है। वे वर्तमान की बुराई करते हैं और बहुत कुछ सही बुराई करते हैं, पर अवसर कोई विकल्प सामने नहीं रखते। इस प्रकाण्ड उपन्यास में भी कोई वैकल्पिक इंगित या दल या व्यक्ति सामने नहीं आता जिसके सम्बन्ध में पाठक यह कह सके कि भई ये लोग तो खराब हैं ये अच्छे हैं।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह उपन्यास एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अभिलेख है जिससे हमारे समाज के हर पहलू और हर हिस्से पर तेज रोशनी पड़ती है। हम किसी उपन्यासकार से यह आशा करें कि वह हमें रास्ता भी दिखाएगा तो यह शायद बहुत अधिक आशा करना होगा। लेखक इस उपन्यास में यह साफ कर देता है कि वर्तमान समाज में बहुत कुछ सड़ा हुआ गला हुआ कीड़ा लगा हुआ ज़हरीला है और उसे सुधारने तोड़कर बनाने की ज़रूरत है। पर यह कैसे होगा उसके लिए क्या क्या साधन काम में लाए जाएंगे, इस पर पाठक स्वयं सोचें।

अन्त में हम लेखक की तकनीक के सम्बन्ध में एक मौलिक प्रश्न उठाना चाहते हैं। क्या उपन्यास लेखक को यह आज़ादी है कि वह इतिहास प्रसि

व्यक्तियों के मुँह में जो चाहे सो कहलवाए, जो चाहे बयान दिलवाए। मैंने भी अपने ढंग में इस दिशा में अपनी क्षुद्र शक्ति के साथ कुछ काम किया है, पर मैं यह समझता हूँ कि यदि उपन्यासकार या कहानीकार हाल के इतिहास के किसी व्यक्ति को अपनी रचना में घसीटता है तो उसके लिए यही उचित है कि वह उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के वक्तव्य प्रामाणिक ढंग से पेश करे यानी केवल उन्हीं वक्तव्यों को पेश करे जो उन्होंने वाकई दिए। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यशपाल ने इस पुस्तक में महात्मा गांधी, जवाहरलाल आदि के मुँह में ऐसी बातें कहलवाई हैं जो शायद ऐतिहासिक नहीं हैं यानी वस्तुतः उन लोगों ने उस अवसर पर, उस दिन और उस घड़ी वे बयान नहीं दिए। पर यशपाल का कहना है कि उन्होंने सन् तारीख ही नहीं, वक्तव्य भी सही सही उद्धृत किये हैं। इस सन्देह के अलावा मैं यह मानता हूँ कि इस उपन्यास में यशपाल ने हिन्दी उपन्यासकार तथा कहानीकारों के लिए तकनीक की दृष्टि से भी एक चुनौती प्रस्तुत कर दी है जिसे निभाने तथा अनुकरण करने में ही अन्य लेखकों का गौरव बढ़ेगा। 'झूठा सच' हिन्दी का एक अमर उपन्यास और कलाकृति है।



श्री जगदीशचन्द्र माथुर

७

भूले-बिसरे चित्र : संक्रांति-युग की प्राणवान् धरती का इतिहास

प्रेमचंद ने उपन्यास-कला के जिस पुख्ता किंतु सीधे-सादे भवन का निर्माण किया था उसमें समकालीन युवक लेखकों ने उनके जीवन काल ही में न सिर्फ नये कँगूरे और अलंकरण जोड़ने शुरू कर दिये थे वरन् उसमें से अपनी पसंद के अनुसार अंग विशेष को चुन कर उन्हें विस्तृत करके उनमें कक्ष, अलिंद, शिखर इत्यादि का समारोपण करना भी प्रारंभ कर दिया था। मूल भवन के तीन अंगों को विशेष उठान मिला। प्रथम तो 'गोदान' में शोषित वर्ग की व्यथा और उनके मौन अभिशाप को प्रगतिशील उपन्यासकारों ने आक्रोशपूर्ण धनुष की टंकार बना दिया। यशपाल की बाद की रचनाओं में सत्ताधारियों के प्रति प्रेमचंद का हल्का व्यंग्य एक उग्र प्रहार बन गया। दूसरे, दाम्पत्य जीवन की जिन असमताओं की झलक 'निर्मला' तथा कुछ छोटी कहानियों में दिख कर लुप्त हो गई तथा व्यक्तिगत मूल्यों के विवेचन की जो झांकियां प्रेमचंद के स्फुट वाक्यों में इंगित की भांति दीखीं उन पर आधुनिक मनोविज्ञान की कीमियागीरी द्वारा जैनेन्द्रकुमार ने व्यक्तिकेंद्रित और समस्यामूलक उपन्यास का चमत्कारगृह प्रस्तुत किया। तीसरे, 'रंगभूमि' में घटनाचक्र और पात्रों में युग के प्रतिबिंब स्वरूप उपन्यास को भगवतीचरण वर्मा ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि और नाट्यबोध की सहायता से युगसाक्ष्य के रूप में विकसित किया।

श्री भगवतीचरण वर्मा हिंदी उपन्यास क्षेत्र में पहले पहल चिंतक के रूप में उतरे। उनके सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'चित्रलेखा' में कथा का उत्स समस्या है। किंतु वस्तुतः समस्या न तो 'चित्रलेखा' की लोकप्रियता और न वर्मा जी के कौशल की कुंजी है। 'चित्रलेखा' के पात्र सजीव हैं, कथागुम्फन आकर्षक है, संवाद

व्यक्तियों के मुँह में जो चाहे सो कहलवाए, जो चाहे बयान दिलवाए। मैंने भी अपने ढंग से इस दिशा में अपनी क्षुद्र शक्ति के साथ कुछ काम किया है, पर मैं यह समझता हूँ कि यदि उपन्यासकार या कहानीकार हाल के इतिहास के किसी व्यक्ति को अपनी रचना में घसीटता है तो उसके लिए यही उचित है कि वह उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के वक्तव्य प्रामाणिक ढंग से पेश करे यानी केवल उन्हीं वक्तव्यों को पेश करे जो उन्होंने वाकई दिए। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यशपाल ने इस पुस्तक में महात्मा गांधी, जवाहरलाल आदि के मुँह में ऐसी बातें कहलवाई हैं जो शायद ऐतिहासिक नहीं है यानी वस्तुतः उन लोगों ने उस अवसर पर, उस दिन और उस घड़ी वे बयान नहीं दिए। पर यशपाल का कहना है कि उन्होंने सन्, तारीख ही नहीं, वक्तव्य भी सही-सही उद्धृत किए हैं। इस सन्देह के अलावा मैं यह मानता हूँ कि इस उपन्यास में यशपाल ने हिन्दी उपन्यासकार तथा कहानीकारों के लिए तकनीक की दृष्टि से भी एक चुनौती प्रस्तुत कर दी है जिसे निभाने तथा अनुकरण करने में ही अन्य लेखकों का गौरव बढ़ेगा। 'झूठा सच' हिन्दी का एक अमर उपन्यास और कलाकृति है।



श्री जगदीशचन्द्र माथुर

७

भूले-बिसरे चित्र सक्रांति-युग की प्राणवान् धरती का इतिहास

प्रेमचद ने उपन्यास-कला के जिस पुख्ता किंतु सीधे-सादे भवन का निर्माण किया था उसमें समकालीन युवक लेखकों ने उनके जीवन काल ही में न सिर्फ नये कंगूरे और अलंकरण जोड़ने शुरू कर दिये थे वरन् उसमें से अपनी पसंद के अनुसार अंग विशेष को चुन कर उन्हें विस्तृत करके, उनमें कक्ष अलिंद शिखर इत्यादि का समारोपण करना भी प्रारंभ कर दिया था। मूल भवन के तीन अंगों को विशेषतः उठान मिला। प्रथम तो 'गोदान' में शोषित वर्ग की व्यथा और उनके मौन अभिशाप को प्रगतिशील उपन्यासकारों ने आक्रोशपूर्ण धनुष की टंकार बना दिया। यशपाल की बाद की रचनाओं में सत्ताधारियों के प्रति प्रेमचंद का हल्का व्यंग्य एक उग्र प्रहार बन गया। दूसरे, दाम्पत्य जीवन की जिन असमताओं की झलक 'निर्मला' तथा कुछ छोटी कहानियों में दीख कर लुप्त हो गई तथा व्यक्तिगत मूल्यों के विवेचन की जो झांकियां प्रेमचंद के स्फुट वाक्यों में इंगित की भांति दीखी उन पर आधुनिक मनोविज्ञान की कीमियागीरी द्वारा जैनेंद्रकुमार ने व्यक्तिकेंद्रित और समस्यामूलक उपन्यास का चमत्कारगृह प्रस्तुत किया। तीसरे 'रंगभूमि' में घटनाचक्र और पात्रों में युग के प्रतिबिंब स्वरूप उपन्यास को भगवतीचरण वर्मा ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि और नाट्यबोध की सहायता से युगसाम्य के रूप में विकसित किया।

यों भगवतीचरण वर्मा हिंदी उपन्यास क्षेत्र में पहले पहल चिंतक के रूप में उतरे उनके सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'चित्रलेखा' में कथा का उत्स समस्या है। किंतु वस्तुतः समस्या न तो 'चित्रलेखा' की लोकप्रियता और न वर्मा जी के कौशल की कुंजी है। 'चित्रलेखा' के पात्र सजीव हैं, कथागुम्फन आकर्षक है संवाद

इस निरतर प्रवाह का बोध कैसे होता है ? कथानक से तो नहीं। सच तो यह है कि इस उपन्यास की कथा के एक सूत्र या दो या अधिक कथानकों के सबद्ध सूत्रों को स्पष्टत पहचाना भी नहीं जा सकता। एक कथानक के स्थान पर लेखक ने अनेक प्रसगो और उपाख्यानो का ताता सा जोडा है। सामान्यत उपन्यासो मे कथावस्तु की दो या तीन धाराओ को समानान्तर और एक-दूसरे मे गुथी हुई दिखाया जाता है। वर्मा जी ने यहा दूसरी पद्धति अपनायी है जिसे अग्रेजी मे एपिसोडिक टीटमट कहा जा सकता है। इस 'प्रसग पद्धति' के कारण लेखक को पात्रो के शीलनिरूपण के लिए विविध उपकरण मिल जाते हैं मानो रगमच पर अनेक दिशाओ से आने वाले प्रकाश को क्रमानुगत फेंका जा रहा हो। इसके अतिरिक्त पचास वर्षों की युगान्तरकारिणी अवधि मे भारतवर्ष का जो भाग्यनिर्माण हो रहा था उसके इतिहास का सिंहावलोकन इस पद्धति से कराना सम्भव हो सका। वरना एक ही ग्रन्थ के परिवेश मे उस विशाल, विविध और कौतुकपूर्ण प्रक्षा का प्रत्यक्षीकरण कैसे हो पाता जिसमे नये लखपती सेठ पुराने राजे-महाराजाओ और रईसो के साथ कधे से कधा भिडाकर रगरलिया मनाते हैं पुराने और नये किस्म के अफसर और मातहत अपने हथकडे दिखाते हैं देहात का महाजन किसान की निस्सहाय जिन्दगी पर अपना पजा जकडता जाता है, वह संयुक्त परिवार जो उपन्यास के प्रारम्भिक चरण मे मजबूत और स्थायी बधन जान पडता था बाद मे तडकता सा दीख पडता है। हिन्दू समाज मे सुधार के आन्दोलन को जागृत करने वाला आर्यसमाज भारतीय इस्लाम की कट्टरता के मुकाबिले मे नई कट्टरताओ के नारे लगाता है हिन्दुओ और मुसलमानो की आध्यात्मिक धरोहरो की विभिन्नताए राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों की स्पर्धा को तीव्र कर देती हैं। इस अपूर्व दिग्दर्शन मे बहुत कुछ है और जो भी है उसका क्षत्र विशाल है नारी के विविध रूपो की झाकिया हैं—परित्यक्ता पत्नी, कामोद्दलित भामिनी, व्यथा की मौन चिरसगिनी गृहिणी परम्परा और धर्म के विरुद्ध विद्रोह करने वाली आधुनिक महिला अस्पृश्यता की विकृतिया भी दीख पडती हैं जिनमे आक्रोश का वेग समानता के वायदो से जल्दी ही शान्त नहीं होता भारत मे औद्योगीकरण के प्रारम्भिक परिणाम और नये उद्योगपतियो की स्वतन्त्रता सग्राम के प्रति दोरुखी चाल भी प्रदर्शित है, सम्राट् पचम जार्ज की भारत यात्रा के समय ब्रिटिश सत्ता की शक्ति और सामर्थ्य का अवलोकन होता है तो उसी सत्ता को गाधी जी द्वारा दी गई चुनौती का अभिनन्दन भी हम देखते हैं कि सरकारी कर्मचारियो मे रिश्वत और बेईमानी का बाजार कस गरम होता रहा है और यह कि बीसियो वर्षों मे केवल उसका चोला बदला है

करतव नहीं।

उपन्यास में जितनी सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियां समायी हुई हैं यदि उनकी फहरिस्त ही बनायी जाय तो अच्छी-खासी रोचक बही बन जायगी जिससे मन ऊब न जाय। किन्तु वर्मा जी उनकी व्याख्या या विश्लेषण नहीं करते। वे तो कथाकार हैं और जानते हैं कि इनमें से हरेक सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्ति का धरातल एक उवरा भूमि है जिसमें अगणित सजीव पात्र, अगणित मानवीय और कौतूहलपूर्ण परिस्थितियां और आख्यानों का प्रचुर शस्य पैदा होता है। काल के विस्मृत इतिहास के शुष्क पृष्ठों में स्फुरण और सचरण हो उठता है और यों एक रुचिर प्रसंगों का ताता सा बंध जाता है जिनमें नाटकीय कार्य-व्यापार आप ही प्रस्फुटित हो जाता है। जहां तक दृष्टि जाती है यह शोभा यात्रा अपना रंग बिरंगी छटा अपने असख्य जीवन-व्यापी स्पंदनों विविध भावनाओं को आमंत्रित करने वाले अगणित स्वरों का अदृश्य शृंखला में बांधे निरंतर अग्रसर प्रतीत होती है।

सत्रहवीं सदी के अन्त में इंगलैण्ड और यूरोप के कुछ अन्य देशों में 'पिकारेस्क नावेल' नाम से अभिहित उपन्यासों की रचना हुई। वर्मा जी के इस उपन्यास में कुछ-कुछ पिकारेस्क परिपाटी का आभास होता है। किंतु यह आभास मात्र ही है क्योंकि घटनाओं का रोचक क्रम प्रस्तुत करना ही वर्मा जी को अभीष्ट नहीं है। उनका नाटकबोध सवदा सजग और प्रखर रहा है। इसलिए वे घटनाओं का विवरण (नरेशन) करके संतुष्ट नहीं हो सकते थे। उन्होंने तो लगभग प्रत्येक घटना को अपने में सम्पूर्ण, नाटकीय-संवेदना समन्वित रूपक-खण्ड बनाया है। हरेक प्रसंग एक नग है और लेखक ने जौहरी की भांति संतुलित बारीक और धैर्यपूर्ण नक्काशी की है। कुछ पात्र जो प्रधान नहीं हैं जो मानो कथा विकास की बाढ़ में अनायास ऊपर आ जाते हैं इतने हृदयग्राही हैं कि तबियत करती है कि लेखक उन्हें कुछ और समय के लिए हमारे साथ छोड़ देता। लेकिन लेखक है कि मोह को पास नहीं फटकने देता। हर प्रसंग और पात्र का अपना नाटकीय महत्त्व है। जैसे अधिक एक्सपोज़ करने से फोटो विकृत हो जाता है, ऐसे ही रुचिर पात्रों का भी अतिशय प्रदर्शन अथवा मोहक प्रसंग का पुनरावृत्ति नाटकीय सघनता को छितरा देती है। इसलिए वर्मा जी उस प्रलोभन के शिकार नहीं बने हैं जिसमें पड़कर अनेक उपन्यासकार या तो कविसुलभ भावावेग की अभिव्यक्ति या नग्न वासना का वाग्विस्तार करने लगते हैं। सतवंती, जिस ज्वालाप्रसाद का कामासक्ति ने विषयविलास के पथ पर अग्रसर कर दिया है कलकत्ता के वैभवशाली अभिजातवर्ग में पहुंच कर जश्न और भोगविलास में

सराबोर हो जाती है। उसके वारांगना और जिस हेय और अनैतिक समाज में वह रम गई उसे अनावृत्त करने में लेखक कुछ पन्ने रंग देता तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होता। ऐसा ही तो दस्तूर है। आखिर एक ऐसी मजेदार और चंचल कथा के लिए पूरी सामग्री यहाँ मौजूद थी जिसका उन लोगों पर जादू तुरन्त चल जाता है जो विकृत मनोवृत्तियों की सरेआम छीछालेदर में रस लेते हैं। किन्तु वर्मा जी सतवन्ती के प्रसंग को उसी क्षण तिलांजलि दे देते हैं जब कथा की प्रधान और मौलिक शोभा-यात्रा की विशाल प्रगति में उसका कोई तारतम्य नहीं रह जाता।

लेखक यह संयम इस ग्रंथ में प्रायः सर्वत्र निभाता है। अपने निजी जीवन में, और विशेषतः मित्रों के बीच, वर्मा जी मताग्रही माने जाते हैं और अपने मत की घोषणा जोरदार और उग्र शब्दों में भी कर देते हैं। जिन प्रेमचन्द से वर्मा जी ने अपने शिल्प की सर्वाधिक धरोहर पायी वे प्रायः इतने आदर्शप्रिय रहे और अपनी जीवनसंध्या में सोवियतवाद से इतने तदात्मीय हो गए कि अपनी रचनाओं में उनके लिए निरपेक्ष रहना सम्भव ही न था। किन्तु वर्मा जी उपन्यास लेखक ही नहीं नाटककार भी हैं (प्रेमचन्द ने एकाध नाटक लिखा था परन्तु वह अपवाद (कर्बला) भी उपन्यास की श्रेणी ही का था)। वर्मा जी में जो नाटककार है वह उन्हें निरपेक्ष होकर मंच के एक कोने पर खड़े होने को मजबूर करता है ताकि वे अपने पात्रों को अठखेलियाँ करते देख सकें, उन्हें आज़ादी दें, जो चाहे बनने की—कपटी या भावुक, तुच्छ या महत, आदर्शप्रिय अथवा दाम्भिक, प्रगतिशील अथवा जड़। उनमें से किसी के भी साथ तादात्म्य स्थापित करने के प्रलोभन में वर्मा जी नहीं पड़ते, चाहे वह पात्र कितना ही उदात्त क्यों न हो। इस निरपेक्षता से प्रसूत उनका व्यंग्य कहीं-कहीं वैसा ही सस्पर्शी जैसा ही साकेतिक और प्रभावोत्पादक है जैसा अंग्रेज़ी में भारतीय उपन्यासकार आर० के० नारायण का। उदाहरणतः कट्टर आर्यसमाजी उपदेशक स्वामी जदिलानन्द और उन्हीं के तुल्य हास्यास्पद और वाग्जाल विशारद मौलवी अल्लामा बहशी के बीच शास्त्रार्थ में पाठक रस इसलिए पाता है कि लेखक अलग खड़ा होकर मानो अपनी हँसी को दबाता हुआ चुटकियाँ ले रहा है। आर० के० नारायण का व्यंग्य इसी भाँति उपहासात्मक होते हुए भी उतनी गहराई तक नहीं जा पाता जितना वर्मा जी का क्योंकि जिन समस्याओं में वर्मा जी उलझे हैं वे नारायण की फुलझड़ियों से कहीं अधिक गम्भीर और बुनियादी हैं।

वर्मा जी गंभीर निस्सन्देह हैं, किन्तु उनकी गरिमा आडंबरयुक्त नहीं है। मानवीय संवेदना से संपृक्त अवश्य हैं वे, किन्तु सहजावेशी नहीं हैं। वस्तुतः 'भूले-

बिसरे चित्र' या एक विशेष उल्लखनीय गुण है उसम सस्ती भावुकता और प्रबल पक्षधरता का अभाव। प्रेमचदोत्तर हिन्दी उपन्यास—विशेषत 'प्रगतिवादी' लेखकों के हाथ—अत्यन्त पक्षधर हो चला था। इस तरह की अस्थिर मनोवृत्ति के चक्कर म भगवतीचरण वर्मा कभी नही पडे। किंतु आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रियाओं स अछूते रहने के कारण ही शायद वह प्रहार जो उन्होंने अक्सर आर्थिक शोषण पर किया है उसम कहीं अधिक ताजगी और ममवधक है जो प्राय प्रगतिशील लेखकों द्वारा हुआ है। सेठ लक्ष्मीचन्द जिसने पहले तो गगाप्रसाद और उसके पिता का बुरी तरह अपमानित किया था यह जानने पर कि गगाप्रसाद उसी के नगर म सिटी मजिस्ट्रेट नियुक्त हो गया है सेठ से उसके साथ मित्रता का दम भरने लगता है। कुछ ऐसे ढग म इस घटना का उल्लेख होता है कि उस सामाजिक परिस्थिति के प्रति पाठक के मन म जुगुप्सा पैदा हो जाती है जिसने लक्ष्मीचन्द जैसे हृदयहीन व्यक्तियों को ऊचे आसन पर बिठा रखा है। समाज की वह आलोचना कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है जो दलील नही वरन् परिस्थिति और व्यवहार के माध्यम का प्रयोग करती है।

परिस्थिति और व्यवहार के दर्पण इस उपन्यास ने अन्य भवन म इतनी प्रचुरता से जड़ हुए हैं कि कभी कभी उन अधेरी कोठरियो, उन तग तहखानो की कमी महसूस होने लगती है जिनम अलक्षित और अनजानी व शकाए वे आक्रोश, व शृखलाबद्ध उच्छृखलताए घुटी घुटी सिसकती रहती हैं जिनका उद्गम मानव के अचेतन म है। आधुनिक व्यक्ति-केन्द्रित उपन्यास म अचेतन की गहराइयो का चित्रण प्राय मिलता है। यह सही है कि इसका अभाव वर्मा जी की कथा को एक तरह की मुक्त सार्थकता प्रदान करता है और कथा के परिवेश का अधिक व्यापक, उसके प्रभाव को अधिक सघन कर देता है। किन्तु यह भी मानना होगा कि व्यक्ति के बहिरग स वर्मा जी इतने अधिक बँधे हैं राजनीतिक और सामाजिक उथल पुथल उनकी लखनी का इतना सहज विलास है कि इस उपन्यास म युग की उस अन्तर्मथनकारी गाथा का अभाव खलता है जो इन बाहरी व्यापारो के उथल धरातल के नीचे व्यक्ति के भीतरी मानस की बेबस, गुमराह और अनवरत खोजो म स्पदित है। बगला लेखक बिमलमित्र के उपन्यास 'साहेब बीबी गुलाम' से 'भूले बिसरे चित्र' की तुलना कर तो यह बात साफ हो जाती है। जिन ध्वस्त सामाजिक परिस्थितियो का मित्र के उपन्यास म प्रत्यक्षीकरण हुआ है व वस्तुत उन दुरूह हृदयद्रावक और सूनी व्यथाओं की प्रतिबिंब है जो छोटी बहू के अलम म बसती है। पाठक की स्मृतियों की होमाग्नि के लिए वर्मा जी इस तरह की कोई समिधा प्रस्तुत नही करते। भगवतीचरण वर्मा और बिमलमित्र म बहुत

कुछ वसा ही व्यतिरेक है जसा प्रेमचद और शरतचद्र की कृतियो मे प्रकट हाता है।

हा सक्ता है कि कुछ पाठक इस भ्रम म पड जायें कि स्थूल नाटय व्यापार और घटनाचक्र तथा औत्सुक्य का घटाटाप 'भूले विसरे चित्र म इतना बहुल है कि ममस्पर्शी प्रसग लुप्तप्राय हो जाते है और सुकोमल एव गहन भाव शृखलाए प्रदीप्त नही हा पाती। किंतु यदि पाठक कथा की तियक और चक्करदार धारा के पथ का पुनरवलोकन करे ता यह भ्राति दूर हो जायगी। इस धारा मे अनेक भवर, अनक जलावत्त मिलेंगे जयदेई की वह अतिम घडी जब अपने स्वार्थी बेटे की निमम और हृदयहीन उपक्षा की काली छाया म वह अपन पुरान अवध अनुराग के शाश्वत सौंदय म विभोर होती है गगाप्रसाद की पाशविक चेष्टाआ का सता द्वारा पहली बार प्रबल विराध किन्तु बरसो बाद कलकत्ते के पापपकिल और भावशून्य वातावरण म अपन भोगासक्त किन्तु चिर त्रस्त जीवन पर पश्चात्ताप नवल के हृदय मे उपा क प्रति मधुर प्रम क कारण पदा हुआ असह्य सघष, जा इसलिए पाठक को विशेष द्रवित कर दता है कि नवल उपा स उत्कट प्रेम करत हुए भी उसे पा नही सकता—माना कोई क्रूर नियति प्राप्ति के क्षण म उस निरुपाय बना दती है।

नियति। आधुनिक जीवन पर महाकाव्य (उपन्यास को वतमान साहित्य म महाकाव्य की सज्ञा देना अनुचित नही है) क रचयिता के लिए भी अलक्ष्य शक्तिया के उस पुजीभूत महाकार दत्य की कराल छाया से बचना कितना कठिन है जिसे नियति कहा जाता है! 'भूले बिसर चित्र' म भी दा विपरीत प्रवृत्तिया अन्तर्धाराओ की भाति बराबर प्रवहमान है एक तो है पूर्वनिश्चित भाग्य लेखा की सी स्वीकृति जिसम मानो लेखक करुणोत्पादक निरुपायता और आश्वस्त आत्मसतोष का मिश्रित वातावरण प्रस्तुत करता है। दूसरी प्रवृत्ति है आशा और विद्रोह की जिसकी प्रेरणा से सचालित अग्रगामी चरण बार बार कठोर वास्तविक परिस्थितिया स ठोकरें खाते हैं और क्षत विक्षत हाने पर भी आगे बढने को तत्पर हा जाते है।

आश्चय यह है कि लेखक कटु यथाथ की ओर अपने रुझान और स्वाथ-परता एव कामादिक दोषा की व्यापकता पर जोर देन के बावजूद आशा और साथक विद्रोह की प्रवृत्ति को विश्वास के साथ चित्रित करता है। वस्तुत हम इस उपन्यास म चाहे कथा का सिलसिलेवार क्रम न मिले तथापि विचारधारा का एक बुनियादी क्रम अवश्य दीख पडता है। लेखक सतही नैतिकता और भावुक आदश प्रियता की कमजोर जडा का कठोर वास्तविकता के प्रहार से हिला दता है। जीवन की नग्नता हम अस्थिर कर दती है। लेकिन उसक

विशेषताएं हैं, तो कुछ में दूसरी कोटि की। प्रेमचन्द का समाज के सस्थाबद्ध जीवन से जितना घना परिचय है उतना असाधारण संवेदना वाले व्यक्तियों की चेतना से नहीं, जैनेन्द्र और अज्ञेय में असाधारण चेतनाओं के विश्लेषण की क्षमता है पर उन्हें अपेक्षित मूर्त रूप देने, मूर्त घटनाओं से सम्बद्ध करने की शक्ति कम है। फलतः यह कहना कठिन हो जाता है कि उक्त लेखकों में कौन सर्वश्रेष्ठ है। दार्शनिक प्रभावशीलता की दृष्टि से इन तीनों में प्रेमचन्द का स्थान सबसे नीचे और जैनेन्द्र का सबसे ऊपर है, संवेदना के सूक्ष्म अंकन में, और कहीं कहीं भावनात्मक प्रवेग में (यह विशेषता 'शेखर' में अधिक प्रतिफलित हो सकी है) अज्ञेय उक्त दोनों लेखकों से बाजी ले जाते हैं। प्रेमचन्द की सबसे बड़ी विशेषताएं हैं—ऋजु स्फुटता और प्रवाह। अपने एक उपन्यास 'दिव्या' में यशपाल जीवन दृष्टि एवं जीवन स्थितियों में सामंजस्य का पूर्ण निर्वाह कर सके हैं। इस दृष्टि से उनका यह उपन्यास प्रौढ़ बन सका है।

सहसा विश्वास नहीं होता कि हमारी भाषा में उसके विकास की इस अवस्था में, 'नदी के द्वीप' जैसी रचना प्रस्तुत की जा सकती है। 'नदी के द्वीप' एक ऐसी भाषा की कृति मालूम नहीं होती जिसका छोटा-सा इतिहास है और जो अभी निर्माण की अवस्था में है। अज्ञेय के उपन्यास में हमारी भाषा एक अनोखी सादगी, स्वाभाविकता एवं स्वच्छता, कान्ति और परिपूर्णता लिए हुए दिखाई पड़ती है। उसका प्रत्येक शब्द मानो हाल ही में टकसाल से ढल कर नई चमक तथा व्यंजकता लेकर, आगत हुआ है। वे शब्द जो सुपरिचित हैं और वे जो अल्प परिचित हैं सभी वहां निराली सार्थकता से दीप्त और मुखर हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए हम विभिन्न पदों की इस आभामयी अर्थवत्ता से अनवरत विस्मित एवं पुलकित होते चलते हैं और हम आश्चर्य करते हैं कि क्या ये उसी परिचित भाषा के परिचित शब्द हैं जिन्हें हम सैकड़ों पुस्तकों में प्रयुक्त होते देखते हैं। संस्कृत तथा हिन्दी के कोशकार अभी तक पर्यायवाची शब्दों से परिचित रहे हैं, समानार्थक दीखने वाले शब्दों के अर्थों में 'छायागत' कितने अन्तर हो सकते हैं—कितने अन्तरों को देखा और प्रेषित किया जा सकता है—यह अनुभूति 'नदी के द्वीप' के परिश्रमी पाठकों को विशेष उपलब्ध होगी। उक्त उपन्यासकार द्वारा प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक वाक्य और पंक्ति इतनी शालीन सावधानी से लिखी गई है कि आलोचक के लिए निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वह उक्त विशेषता के निदर्शन के लिए कहाँ से, कौन सा उद्धरण ले।

यह पत्र समाप्त करके जब वह उठा तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खड़कता रहा कि नहीं, चन्द्रमाधव

ने नही सुना। (पृ० ६८) और दो तीन मिनट के बाद ही उसकी साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी सकल्पना का नहीं, उससे निरपेक्ष प्रकृति का अनुशासित है और उसके औंधे शरीर की सब रेखाओं मे एक बेबस शिथिलता आ गई। (पृ० ६६)

अज्ञेय के शब्द प्रयोग की विशेषता वस्तुत उनके व्यक्तित्व की अथवा अनुभूति की क्योकि व्यक्तित्व अनुभूतियो का पुंज मात्र है—विशेषता है। वस्तु जगत् परिवेश अथवा पात्र की प्रत्येक विशेषता को यह कलाकार भिन्न विशिष्ट रूप मे देखता है उसकी प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक प्रेक्षण व्यक्तित्व सम्पन्न है। फलत उसके द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता प्रतीत होता है। शब्दो की पैनी सीमाएँ और तीखी भिन्नताए लेखक की देखने, अनुभव करने की उन विशेषताओ को प्रतिफलित करती है। परिपार्श्व की प्रत्येक विशेषता को अज्ञेय मानो एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण से देखते और आकते हैं। सक्षेप मे अज्ञेय की दृष्टि प्रखर रूप मे विश्लेषणशील है।

इसके साथ ही यह दृष्टि सस्कृत एव शालीन भी है। उक्त उपन्यास के प्रमुख पात्र—भुवन रेखा गौरा—अपने स्रष्टा की इन विशेषताओ से सम्पन्न हैं। उनका रहन सहन बातचीत एव मान्यताओ, सब पर एक शोभन, शिष्ट शालीनता की छाप है। वे उस सस्कृत सुघड जीवन के प्रतीक हैं जिनमे शिक्षा एव सौजन्य का सहज सामजस्य रहता है यह जीवन ही, अपनी समग्रता मे लेखक का आदर्श है। चन्द्रमाधव के स्वभाव की जिह्नताओ एव स्थूल वृत्तियो के वपम्य द्वारा उक्त आदर्श को परिस्फुट करने का प्रयत्न किया गया है। चन्द्रमाधव भुवन आदि की सूक्ष्मतम भिन्नताओ को पकडने एव प्रकाशित करने की चेष्टा की गई है।

'नदी के द्वीप' की एक महत्वपूर्ण विशेषता है उसका प्रकृति चित्र। इस चित्र विधान मे अज्ञेय की शब्द शिल्पता चरम सीमा पर पहुची दिखाई देती है। शायद ही हिन्दी के किसी दूसरे लेखक ने सौन्दर्य के इतने बारीक, विशिष्ट गुम्फित, चित्र अंकित किये हो। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'कुदसिया बाग मे उन दिनो फूल लगभग नही होते—कोई फूल ही उन दिनो म नही होता, सिवा वजयन्ती के जो चटक रंगीली चूनर ओढे बीबी शटल्लो बनी धूप म खडी रहती है। लेकिन खण्हर पर चढी हुई बेगम बेंरिया लता की छाँह सुहावनी थी—फूल इसम कई तेज रगो के भी होते हैं पर इसकी लम्बी पतली बाहो म हवा म झूमते गुच्छा गुच्छा फलो म, एक अल्हडपन होता है जो वैजयन्ती के भू निष्ठ आत्म सतोष से सवथा भिन्न होता है और फिर

विशेष लता व फूल भी तेज रग के नही थे एक धूमिल गुलाबी रग ही उनम था जो पत्तियो के गहरे हरे रग की उदासी कुछ कम कर देता था बस।' (पृष्ठ १३४)।

अब हम नदी के द्वीप की कुछ कमियो का सकेत करेंगे। एक शब्द म कहें तो यह उपन्यास एक अनाकर कृति है। नीचे हम इस अनाकृति के उपादानो या कारणो की खोज करेंगे।

नदी के द्वीप' म किसी स्पष्ट प्रकार आस्था अथवा जीवन दर्शन की अभि व्यक्ति देने की कोशिश नही की गई है। कहीं कहीं अस्तित्ववादी जीवन दृष्टि के सकेत हैं पर वे विरल तथा निर्बल हैं। कहीं-कहीं नितान्त साधारण भले शिक्षित वग के विचार अनावश्यक आडम्बर स व्यक्त किये गए है—जैसे जापान के युद्ध म मान की खबर से भुवन का विशेष विचलित होना (पृ० ३७० ७१)। भुवन द्वारा गौरा को लिखे हुए इस पत्र म किसी ऐसी समस्या से उलझने का प्रयत्न नही है जिसका विचारशीलता के लिए भी महत्त्व हो। रेखा और गौरा के सारे आदर के बावजूद हम यह महसूस नही होता कि भुवन के विचारो एव सकल्पो का स्तर विशेष ऊचा है वह एक खास शिक्षित शिष्ट वग के सदस्यो के सामान्य चिन्ता धरातल से अधिक ऊँचे उठते नही दीखता। कहीं भी भुवन के विचारो अथवा सकल्पो म ऐसी शक्ति नही है जो विचारवान् पाठक को बरबस बहा ले जाए। भुवन का कास्मिक रश्मियो सम्बन्धी अन्वेषण पाठको का कुछ दूर की चीज जान पडता है। उसके महत्त्व को व साक्षात अनुभव नही करते और उसके दूसरे विचार किसी भी अथ म असाधारण अथवा क्रान्तिकारी नही हैं। इस दृष्टि से रेखा तथा गौरा के चरित्र भी सशक्त नही बन सके है।

यहाँ एक बात कह दी जाए—'नदी के द्वीप' का पाठक अपने तथा उपन्यास के पात्रो के बीच गहरे तादात्म्य का अनुभव कम कर पाता है। लेखक ने पात्रो के सतही मान मनस से सम्बन्धित व्यापारो तथा भावनाओ का जितना सतक चित्रण किया है, उतना उनकी मूल वासनाओ तथा उनसे सम्बद्ध क्रियाओ का नहीं। यही कारण है कि हम व पात्र कुछ दूर दूर से जान पडते हैं और हम उन्हे अपनी आन्तरिक रस वृत्ति द्वारा पूरा पूरा नहीं पकड पाते। ऊपर हमने जो प्रकृति चित्र उद्धृत किया है उसम भी यही बात है—उसके नये निराले नाम हमारी रसात्मक वृत्ति के उन्मेष म बाधक होते हैं। साहित्य किसी भी प्रकार की विशिष्ट (Specialised) जानकारी के प्रदर्शन का माध्यम नहीं है उसम उतना ही बोध आना चाहिए जितना कलाकार या पात्रो की भाव चेतना से गहरा सम्बन्ध हो।

'नदी के द्वीप' का कोई भी पात्र सशक्त रूप में हमारे सामने खड़ा नहीं होता चन्द्रमाधव भी नहीं। किसी भी पात्र से हमारा बहुत गाढ़ा परिचय नहीं हो पाता। हम किसी पात्र का प्रगाढ़ परिचय दो तरह से पाते हैं—उसकी विभिन्न प्रेरणाओं को सम्बद्ध रूप में ग्रहण करके और उसे विभिन्न परिस्थितियों में उन प्रेरणाओं के अनुसार प्रतिक्रिया करते देखकर। हमने ऊपर कहा कि नदी के द्वीप में किसी पात्र की जीवन-दृष्टि का सबल संकेत नहीं है—शरत बाबू के 'शेष प्रश्न' में नायिका कमल के विशिष्ट दृष्टिकोण का दर्जनों सदर्भों में शक्तिपूर्ण प्रतिपादन एवं प्रकाशन कराया गया है। वैसा-कुछ 'नदी के द्वीप' में नहीं मिलता उसकी कथा का उद्देश्य भी किसी खास दृष्टि या सिद्धान्त का संकेत नहीं जान पड़ता। लेकिन यथार्थ शिकायत की बात दूसरी है—यहाँ विभिन्न पात्रों की जीवन प्रेरणाएँ पूर्ण रूप में प्रकाशित नहीं हो सकी हैं। वस्तुतः जीवन के लम्बे चौड़े सन्दर्भ के अभाव में ऐसा प्रकाशन कठिन हो जाता है। रेखा क्या चाहती है, कैसा साथी चाहती है, किस दिशा में अपने जीवन को ले जाना चाहती है इसका स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं मिलता। रेखा और भुवन के व्यक्तित्वों में कितने स्थलों पर कितना मेल है, यह हम नहीं समझ पाते। कारण यह है कि हमें दोनों के प्रमुख प्रेरणा-स्रोतों का परिचय नहीं होता। बाद में जब वे अलग होते हैं तो यह समझना कठिन हो जाता है कि दोनों को कितनी व्यथा हुई या होनी चाहिए।[1] गौरा तथा रेखा के व्यक्तित्वों में कहाँ कौन-सा मौलिक अन्तर है क्या भुवन दोनों को प्यार करते हुए भी बाद में गौरा के पास चला जाता है—इन प्रश्नों का उपन्यास में कहीं समुचित समाधान नहीं है।

उपन्यास में भुवन और रेखा जगह-जगह दूसरे कवियों के उद्धरण प्रयुक्त करते पाए जाते हैं, जैसे वे स्वयं अपनी प्रेरणाओं से न जीते हुए विभिन्न कवियों के भाव-स्पन्दन में अपने खोखले जीवन को भरने की सामग्री खोज रहे हों। उद्धरणों द्वारा वे जिन मनोदशाओं का भावन करते हैं उनका स्रोत स्वयं उनके सामाजिक सम्बन्धों एवं वैयक्तिक आकांक्षाओं में होना चाहिए। सामान्य नर नारियों की भाँति व्यवहार न करके जब वे कविताएँ उद्धृत करने लगते हैं तो पाठकों को धीरज रखना कठिन हो जाता है। स्वयं भुवन ने एक बार 'कुछ शिकायत के स्वर से कहा, तुम सिर्फ 'कोटेशन' बोल रही हो—अपना कुछ न कहोगी ?' (पृ० २०५)। जिन क्षणों में नर-नारी स्वयं जीवन्त होते हैं—और

[1] रेखा और भुवन के बाद के अलगाव से पाठकों को विशेष कष्ट नहीं होता, यह इसका संकेत है। उन दोनों का लगाव, उपन्यास की परिधि में, गहरा चित्रित नहीं हो सका है।

यदि प्रेम के क्षणों में जीवन्त न होंगे तो कब होंगे ? उस समय वे स्वयं अपने उमड़ते हुए आवेगों को प्रकट करते हैं पढ़ी या सुनी हुई बातों को नहीं। और उन क्षणों में परम्परागत संस्कार उस जीवन्त भाव-स्पन्दन का अखण्ड अंग बनकर प्रकट होते हैं, पृथक् उद्धरणों के रूप में नहीं।

हमने ऊपर कहा कि 'नदी के द्वीप' में सुन्दर प्रकृति चित्र हैं। दुर्भाग्यवश वे चित्र भी उपन्यास को आकर्षक बनाने का हेतु बन गए हैं। शायद उपन्यास में प्रकृति के वही चित्र स्थान पा सकते हैं जो पात्रों की भावनाओं में रंगे हों, अथवा उन भावनाओं को सबल बनाते या अभिव्यक्त करते हों। 'नदी के द्वीप' के प्रकृति चित्रों में वैज्ञानिकता अधिक है, भाव-सबलता कम। वे अकसर रेखा और भुवन के बीच व्यवधान खड़ा कर देते हैं जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध की रसात्मकता कम हो जाती है। असली जीवन की अपेक्षा उपन्यास में पात्र एक दूसरे के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। विशेषतः प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के साथ होते हुए सम्भवतः किसी तीसरी ओर ध्यान नहीं ले जा सकते—कम-से-कम साहित्य में ऐसा ही होता है। 'नदी के द्वीप' में इस नियम का विपर्यय है जो उसके प्रभाव के लिए घातक है।

'नदी के द्वीप' एक शक्तिपूर्ण उपन्यास नहीं है इस तथ्य का एक पहलू यह है कि उसमें गहरा रसोद्रेक कर सकने वाले प्रसंगों की विरलता है। यों उक्त उपन्यास का प्रत्येक अंग किसी न किसी प्रकार की अर्थवती चेतना जगाता है किन्तु ये विश्लिष्ट चेतनाएं समन्वित होकर बड़ा प्रभाव कम पैदा कर पाती हैं।

इस सामान्य नियम के अपवाद भी हैं। अवश्य ही 'नदी के द्वीप' में कुछ प्रसंग हैं जो रसोद्रेक करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ होते हैं। उपन्यास का प्रारम्भिक परिच्छेद जहाँ भुवन गई हुई रेखा की याद कर रहा है, ज्यादा प्रभावशाली होता यदि उसमें बिखरी हुई अनुभूति अधिक पुंजीभूत हो सकती। चन्द्रमाधव से सम्बन्धित दो एक प्रसंग मार्मिक हैं, जैसे उसकी पत्नी कौशल्या के साथ की घटना। हमें डा. रेखा के पूर्व पति का प्रसंग भी तीखे रूप में याद रहता है। चन्द्रमाधव का जगह जगह रेखा तथा गौरा को एक साथ पत्र लिखना तथा दोनों को ही 'कोर्ट' करने का प्रयत्न करना और फिर दोनों ओर से रूखे उत्तर पाना हमारी विनोदवृत्ति को खाद्य देता है। काश्मीर में रेखा और भुवन का पहला मिलन भी एक प्रभविष्णु प्रसंग बन सका है।

'नदी के द्वीप' का सबसे शक्तिपूर्ण अंश वहाँ से शुरू होता है जहाँ श्रीनगर में रेखा ने अपने कोख के शिशु को नष्ट करके शरीर को संकट में डाल लिया है। उसके बाद प्रायः अन्त तक उपन्यास की कथा विशुद्ध मानवीय धरातल पर चलती

है—अनावश्यक उद्धरणों तथा अन्य विवरणों से मुक्त रहकर, यद्यपि वहाँ भी इन तत्वों का एकान्त अभाव नहीं है। अन्तराल खण्ड में केवल विभिन्न पात्रों के पत्र ही पत्र हैं। ये पत्र अज्ञेय के सचेत निर्माण शिल्प के प्रतीक हैं। गौरा के कक्ष में जलती हुई अँगीठी के सामने बैठे भुवन का आवेग आवेश उपन्यास का अपेक्षाकृत सशक्त एवं महत्वपूर्ण स्थल है। आपरेशन के बाद पीड़ित, क्लान्त और मृदुल स्निग्ध रेखा तथा भुवन का मिलन प्रसंग भी करुण तथा मार्मिक है। मृत शिशु की चेतना से आक्रान्त भुवन अंगीठी की आग को देख रहा है उसका वर्णन भुवन की भावनाओं का मार्मिक प्रतिफलन करता है—

आग लपकती और गिरती, कभी एक अधजली लकड़ी बीच में से टूटकर गिरती और आग का एक भाग दबकर अँधेरा या नीलाभ हो जाता फिर फुरफुराकर एक छोटी सी शिखा उसमें से उमँग आती और बढ़ जाती। उसी प्रकार भुवन का स्वर कभी मद्धम पड़ जाता, कभी धीरे धीरे ऊँचा उठ जाता, कभी उसकी वाणी क्षण-भर अटककर फिर कई एक द्रुत चिनगारियाँ फेंक देती।'

(पृ० ३८६)

किन्तु यह प्रसंग जो अब तक ज्ञात भुवन के नैतिक व्यक्तित्व से ठीक ठीक मेल नहीं खाता। इसलिए वह उसके रेखा के प्रति विरक्ति महसूस करने का पर्याप्त कारण नहीं जान पड़ता। लगता है जैसे भुवन गौरा के पास जाने का बहाना खोज रहा है।

इन सीमाओं के बावजूद, विशेषतः भाषा प्रयोग की दृष्टि से, 'नदी के द्वीप' एक ऐतिहासिक महत्व की कृति है।



डॉ० रमेशकुंतल मेघ

९

चारु चन्द्रलेख : रंगीन इतिहास-खंड का दर्पण

यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का दूसरा उपन्यास है जो उपन्यास की दृष्टि से एक नया प्रयोग जरूर कहा जाएगा—बहुत कुछ 'एंटी नावेल' जैसा प्रयोग। इस प्रयोग को चाहे असफल कहें या सफल, लेकिन प्रयोग जरूर है। यदि हम 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को हर्षकालीन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में कला का मयूर कह सकते हैं तो 'चारु चन्द्रलेख' को भी पृथ्वीराज जयचन्द्र के परवर्ती काल के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन समाज चिंतन की भूल भुलैयाँ। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में कला और धर्म की नीरक्षीर मैत्री है, तो 'चारु चन्द्रलेख' में धर्म और इतिहास का अमर चंपक कुयोग। सारे उपन्यास में आधुनिक शिक्षित संस्कारों से समावृत वैष्णव दृष्टि से जडीभूत मध्यकालीन धार्मिक और सामाजिक संस्कृति की विवेचना की गई है। इस वैष्णव दृष्टि में एक साधारण समाज [गृहस्थ जन] की भाँति एक ओर तो सामाजिक यथार्थता है दूसरी ओर विवेकशीलता तथा परम्परा। उपन्यास में तथ्य कल्पना, यथार्थता और अन्वेषण का जो इतना अद्वितीय और किंचित् अगल्पात्मक संयोग हुआ है उसने पूरी तरह से उस युग के समाज तथा लोकचित्त को साक्षात् कर लिया है जिसके विषय में या तो इतिहास मौन है या इतिहास कुछ महान् पुरुषों के रूप में पुष्पित नहीं हो पाया या फिर इतिहास ने उस युग की विशाल जनता को अपना उपजीव्य नहीं बनाया। इसलिए इस उपन्यास की महत्ता [शायद न्यूनता भी] इस बात में है कि उपन्यास कला पर बल देने की अपेक्षा इसने महान् नायक और महान् घटनाओं से विहीन अधोमुखी 'मध्यकाल के इतिहास की पुनरचना' की है। इसलिए लेखक को एक काल्पनिक घुड़सवार राजा सातवाहन को नायक मानना

पडा और एक कल्पित रानी चन्द्रलेखा का नायिका। किन्तु उस काल के इतिहास की पुनरचना म 'पृथ्वीराज रासो' को उपजीव्य बनाकर लेखक ने विद्याधर [विज्जाहर] धमायण [बाचा प्रधान के पिता], नाटी माना [कनवज्ज समय की करनाटी] सुराग दवी [सूहव दवी] जल्हन चद्रवलिद्दय [चदवरदाई] हाहुलीराय, धीर शर्मा, सीदी मौला जम राज एव जन जीवन के अल्पख्यात पात्रों द्वारा एतिहासिक रासास को एतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक अनुसधान के स्तर पर उद्धारित किया है। इसके अलावा एक बात और भी प्रमाणित की गई है पुरातन प्रबंध सग्रह तथा 'पृथ्वीराज रासो की तुलना म रासा व इतिहास तथा ऐतिहासिकता की स्थापना। इस प्रकार परोक्ष रूप से यह उपन्यास पृथ्वीराज रासो की उपन्यासात्मक छानबीन भी है। सारांश यही है कि राजा रानी नागनाथ आदि की आधिकारिक कथा का ता मेरुतुग के जन प्रबंध ('प्रबंध चितामणि') से गृहीत किया गया है [जो काल्पनिक है], और प्रासगिक कथाओ को 'पृथ्वीराज रासो' 'पुरातन प्रबंध सग्रह', 'तबकाते नासिरी' आदि से ग्रहण किया गया है [जो ऐतिहासिक है]। इस तरह यहा एक निजधर [लीजेंड] की वृत्ति पर एक इतिहास का आच्छादन ही उस युग के समाज और युगबोध को उद्घाटित कर सका है,। यह स्वय म लेखक के इतिहास लेखन—उपन्यास को निमित्त बनाकर इतिहास-लेखन—के क्षेत्र मे राहुल की तरह एक साहसपूर्ण प्रयास है और काफी उत्तजक है। चूकि समय पृथ्वीराज जयचद के बाद का है इसलिये यूग जननिक आता है। चदवरदाई का बटा जल्हण आता है नालदा के [बख्तियार की ध्वसलीला के बाद] राहुल भद्र और अक्षोभ्य भैरव आते हैं जयचद का बटा हरिश्चद्र आता है सीदी मौला आते हैं। सीदी मौला मध्य एशिया का काफी प्रामाणिक इतिहास भी बताते हैं दो बार। यहा राहुल साकृत्यायन कृत 'मध्य एशिया का इतिहास' से सामग्री ली गई है। यू तो पूरे उपन्यास म लेखक न स्वय अपनी पुस्तक मध्यकालीन धमसाधना स भी सामग्री ली है।

उपन्यास मे कथन शैली की दृष्टि म 'बाणभट्ट की आत्मकथा वाली पहेली ही चली आई है। सारा उपन्यास चद्रगुहा पर अकित शिलालेख का भाषातर है जिस अघोरनाथ न व्योमकेश शास्त्री को सपादित करन का दिया। हजारी प्रसाद द्विवदी अर्थात् व्योमकेश शास्त्री न इस पर टिप्पणिया लिखीं। मू भूल कथा नदिनी शैली म है। यहा आत्मकथा शली कम जीवनी शली ही प्रधान है। इसके अलावा दसम बाणा के विभिन्न प्रकारो का उपयोग किया गया है। रानी चद्रलेखा प्रथम पुरुष म बात कहती है। नागनाथ ने मध्यम पुरुष म कहना शुरू

किया था, किन्तु नही कह पाये । राजा उत्तम पुरुष मे कहते हैं। इस तरह पुस्तक मे प्रथम पुरुष मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष की सावना को उदघाटित करने की योजना भी रही थी, जो बाद मे त्याग दी गई । कला रूपा की दृष्टि से यहा लेखो, पत्रो और सबोधनात्मक भाषणो की भरमार है, पत्रो के अनूठे रंगा चित्र यत्र तत्र छिटके हैं श्लोक, उनके अर्थ, उनकी व्याख्याए टिप्पणियां भी कहीं कही मिल जाती हैं। इस तरह उपन्यास मे एक ओर तो ऐतिहासिक तथ्यो [घटनाओ को भी] को सोच विचार कर पिरोया गया है तो दूसरी ओर चित्रो के खण्ड-खण्ड खिचे-से सजे हैं जिनके बीच मे काय-व्यापार का सीर लडखडाता हुआ निकलता चलता है । लेखा और पत्रा की—विशेषत चद्रलेखा के चारलेखा की—बहुतायत से ही कृति का नाम 'चार चद्रलेख' पडा है। नाम के अन्य हेतु भी हैं जसे, चद्रगुप्त का लेख या जिसमे चारचद्रलेखा (नायिका) हो ।

पहले हम घटनात्मक इतिहास लें जो इस उपन्यास मे आया है। यहा घटनाएँ दो ही केन्द्रो मे अभिमुख हैं—धर्मसाधनाए तथा युद्ध । घटनाओ का बहुमत धार्मिक साधनाओ से जुडा है । इस प्रकार कृति मे मध्यकालीन साधनाओ का तथा सामतयुग के समाज एव राजनीति का इतिहास जुड जाता है। लेकिन जहा तक राजा राज्य राजनीति का सम्बन्ध है वहा काल्पनिक राजा सातवाहन एव रानी (बाद मे सिद्धयोगिन) चद्रलेखा के कई ऐतिहासिक पात्र एव घटनाए गुथी हैं । इसकी वजह से कृति मे मध्यकालीन सामतीय सेना सगठन अर्थतन्त्र समाज आदि का अनुभव भी जुड जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' मे लेखक ने अपने कला-दर्शन और मर्यादा के आदर्श को प्रस्तुत करना लक्ष्य बनाया था । इसमे लेखक ने सामाजिक दर्शन और धार्मिक साधनाओ के सर्वेक्षण विश्लेषण का अपना आदर्श बनाया है । यद्यपि साधनाओ की भरमार के कारण कथातन्त्र बहुत ज्यादह ढीला हो गया है किन्तु दिल्ली के सुलतान को छोड कर सभी पात्र राजा और रानी की धुरी मे बधे हैं । इस प्रकार राजा तत्कालीन नाम और समाजचित्र का एव रानी तत्कालीन व्यष्टिमूलक सिद्धियो की खोज और व्यक्ति के असतुलित व्यक्तित्व का प्रतिनिधि हो जाती है। इस पृष्ठभूमि के द्वारा कृति के दो पक्षो को बताने के बाद हम क्रमश घटनात्मक इतिहास का उदघाटन करेंगे जो कथातन्त्र मे विन्यस्त है। पहले परिच्छेद मे सीदी मौला से परिचय होता है जो हिन्दू मुसलिम (सिद्ध+मौला) सस्कृति के सगम हैं । वे बिल्कुल फक्कड हैं किसी मे विश्वास नही करते । बिल्कुल कबीर जसे हैं । दूसरे परिच्छेद मे हम पुरातन प्रबन्ध सग्रह' के विद्याधर मन्त्री को पाते हैं जो अब राजा सातवाहन के मन्त्री हैं । व महाराज जयिनचद्र की डोम रानी सूहव दवी की बीती

एतिहासिक कथा का आख्यान करते हैं तथा सस्कृत कवि श्रीहृप के अपमान की कथा भी गूथते हैं। चौथे परिच्छेद मे लेखक एक ओर तो चद्रलेखा को परमाल की दौहित्री बनाकर उन्हे ऐतिहासिक गति देता है तो दूसरी ओर जयचद परमाल के विग्रह के कारण की स्वयमेव व्याख्या करता है (इस विषय म इतिहास चुप है)। छठे परिच्छेद म राजा सातवाहन के यहा वृद्ध जगनिक को ला कर लेखक वीरगाथा काल का वृत्त पूरा करता है। सातवें परिच्छेद म उज्जयिनी के भर्तृयाताल की दन्तकथा के पीछे लेखक वास्तविक इतिहास का उदघाटन करता है। यहा सरस्वती, विक्रमादित्य अडोलिया की एतिहासिक गुत्थी सुलझती है और कालिदास के 'शाकुतल की कथा म इसका मूल सस्कार उदघाटित होता है। इस व्याख्या के द्वारा लखक ने लोक-कथाओ म से ऐतिहासिक तथ्य ढूढ निकालन की वैज्ञानिक पद्धति का भी अनुसरण किया है। दसवें परिच्छेद म नाना गोसाइ के माध्यम म दक्षिण म नव जना के द्वन्द्व के ऐतिहासिक तथ्य को प्रकट किया गया है। बारहवें परिच्छेद म एतिहासिक धमायन मायस्थ के काल्पनिक पुत्र बोधा प्रधान का प्रवेश हुआ है। तेरहवें परिच्छेद मे कन्हू चाचा की कथा द्वारा ढागी सामतीय दप की खिल्ली उडाई गइ है। इसके बाद बादसवें परिच्छेद मे बोधा राष्ट्र कूट, चालुक्य, हायगल वन के इतिहास म घम की पहल का विवचन करते हैं। तेइसवें परिच्छेद म मूहव दवी के पुत्र हरिश्चद्र का अनुसधान होता है जो तुर्कों की सहायता किया करता था। इसी म भभल के द्वारा कारनटा के मयतात्त्विक (सीमटिक) इतिहास की व्याख्या होती है। भभल ही नाटी माता और कदबवास मत्री के सम्बधो की कथा कहकर करनाटी (नाटी माता) का पूरा इतिहास खोल दता है जिसस 'रासो' के एक समय पर पूरा प्रकाश पड सकता है। चौबीसवें परिच्छेद म काशी के हरिश्चद्र घाट की एतिहासिक छानबीन है। पच्चीसवें परिच्छेद मे अद्योक चल्ल नाम के एतिहासिक पात्र का आगमन होता है जिससे कि नालदा का भी पूरा इतिहास खुल जाता है (सत्ताइसवें परिच्छेद म)। अट्ठाइसवें परिच्छेद मे एतिहासिक जल्हन के प्रवेश ने 'रासो म वर्णित कई एतिहासिक तथ्यो का उपयोग करान म मदद की। जल्हन अपने पिता चदबरदाई का पूरा चरित्र प्रकाशित करता है पृथ्वीराज द्वारा कदबवास मत्री की हत्या का भेद खोलता है हाहुली राय प्रसग को गूथता है करनाटी (नाटी माता) के प्रति पृथ्वीराज की आसक्ति की बात भी बताता है। इस तरह यह पूरा परिच्छेद 'रासो' पर आधारित है। उन्तीसवें परिच्छेद म दिल्ली के सुल्तान का नपथ्य आभास चलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहा इतिहास सस्मरण के रूप म आया है। इन तथ्यो म लेखक ने जो प्रचुर कल्पना की है वही तत्कालीन समाज का यथाथ चित्र

रखती है।

इतिहास-परिचर्चा में आगे भावात्मक इतिहास लिया जा सकता है। यहाँ राज्य, युद्ध, राजा इतिहास, क्षण, काल, संयोग, घटना आदि जो अवधारणाओं के रूप में आए हैं वे एक ओर तो लेखक के इतिहास-दर्शन की समग्र सर्वांगीणता में प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरी ओर उसके सामाजिक आलोचनाशील का प्रतिपादन।

इस संदर्भ में लेखक ने पहला सवाल किया है कि इतिहास क्या है ? इतिहास काल प्रवाह (जिसे वह 'कालदेवता' का आधिभौतिक प्रतीक मानता है) है या क्षण-खण्ड ? इतिहास अंतर्मुखी (एक ब्रह्माण्ड व्यापी समष्टि मन) है या बाहरी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का पुंज ? इतिहास हम बनाता है या हम इतिहास को बनाते हैं ? क्या इतिहास की आवृत्ति होती है ? क्या इतिहास से सीखा जा सकता है ? क्या इतिहास में संयोग, जिसे लेखक हमेशा देवसंयोग में रूपान्तरित कर देता है, अपनी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देते है ?

लेखक का इतिहास दर्शन अंतर्विरोधों से भरा है क्योंकि उसमें रहस्यवाद एवं मानवतावाद का द्वंद्व है। एक ओर तो वह इतिहास प्रवाह तथा क्षण या काल-खंड का सामंजस्य करता है जहाँ अनेक विरोधी शक्तियाँ एक के महान् मंत्र में दीक्षित हो जाती हैं (पृ० ३४३) तो दूसरी ओर इतिहास में क्षण की कोई सत्ता ही नहीं मानता (पृ० ४१०)। एक ओर वह मानव चेतना से परे ब्रह्माण्ड चेतना मानता है तो दूसरी ओर ब्रह्माण्ड चेतना को मानव चेतना का ही समष्टि रूप मानता है। हाँ दो बातें पूर्णत सुदृढ़ हैं—पहली, इतिहास महान् सम्राटों और महान् युद्धों का लेखा-जोखा नहीं है बल्कि लोकचित्त का आत्मबल और जन जीवन है दूसरी इतिहास से सीखा जा सकता है भविष्य की दिशाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इन्हीं दो मजबूत नींवों पर लेखक ने चारुचन्द्रलेख में अपना इतिहास-दर्शन और इतिहास विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

लेखक इतिहास और देवसंयोग का अंतसम्बन्ध बताता है। इतिहास और देव-संयोग से घटने वाले जागतिक व्यापार में अंतर है। इतिहास मानवीय संकल्पों से बनता है। ये कोमल मानवीय संकल्प बाहरी कठोर परिस्थितियों से टकराकर परिवर्तित होते हैं अत इतिहास वैसा ही नहीं होता जैसा हम चाहते हैं (पृ० ३०५)। अत इतिहास हम बनाता भी है और हम इतिहास का निर्माण भी करते हैं। इस निर्माण में अनुकूल मंगल है और प्रतिकूल अमंगल। यह द्वंद्वात्मक संबंध स्वीकार करने पर लेखक देव-संयोग को जरा अलग हटा देता है। इतिहास का आंदोलक शक्ति क्या है—मूल है- धरती और सोना। यही इतिहास के अंतरतत्व

का मूल है। धरती का मतलब केवल इस मिट्टी से नहीं किंतु किसानों और साधारण प्रजा वर्ग से है जिनकी अपूर्व निष्ठा कठोर परिस्थितियों को जीत लेती है। यह धरती उन असंख्य गृहस्थों के बलिदान की कथा है जो परंपरा के रूप में अनुभव होकर समष्टि चित्त हो जाती है और जो भविष्य को दिशाएँ बताती है। गरीब देशों और सामंत-व्यवस्था में अर्थ व्यवस्था (सोना) और युद्ध (सेना) साथ साथ रहते हैं। जिसके हाथ में सोना होगा, उसके कब्जे में सेना। उस युग की चेतना वेतनभोगी लोगों के ऊपरी युद्धों से चला करती थी किंतु बाहरी चेतना किसानों, गृहस्थों साधारण प्रजा के आपसी सम्बन्धों में।

इसी क्रम में लेखक ने इतिहास के सामंत युग (भारत में विशेषकर) पर एक आलोचना शिला रची है। इस युग में जन और प्रजा का राज्य में सहक्रम नहीं होता, इसलिए अर्थ-व्यवस्था (राज्यलक्ष्मी) खंड विक्षत हो जाती है। फलस्वरूप छोटे छोटे राज्यों की स्वार्थी राजनीति विच्छेदकारिणी ही होती है। सामंतयुग में वंशानुक्रम से राजा, मांडलिक, नृपति आदि चलते आते हैं जो लगातार कृषकों का शोषण करते हैं। फलतः सारी व्यवस्था बिखर जाती है। यह पहला दोष है। दूसरे, भूमि-व्यवस्था का बटवारा होता जाता है और सारी संपत्ति टूटती जाती है। तीसरे सीधे जनसंपर्क रखने वाले राज-नेता नहीं होते। ऐसी राजनीति और ऐसी रणनीति भयंकर अत्याचार तथा आतंक फैलाती है। इस तरह लेखक ने अपने इतिहास चिंतन के क्रम में मध्यकालीन सामंतीय भारत की राज्य, युद्ध, राजनीति और अर्थनीति की भी मीमांसा की है। राजनैतिक आर्थिक निष्कर्षों को प्राप्त करने में यह कृति सामंतवाद का एक समाज-दर्पण हो जाती है।

इस ऐतिहासिक एवं राजनैतिक आलोचना शील के साथ साथ लेखक ने भारत के उस सामंत युग की सामाजिक चेतना का भी संधान किया है। लेखक ने पहले परिच्छेद में ही सार दे दिया है कि लोगों को बाहुबल की अपेक्षा तंत्र मंत्र पर अधिक विश्वास था। प्रजा सिद्धों-योगियों के प्रति श्रद्धा नहीं रखती थी, बल्कि उनसे डरती थी। सारे समाज में नाना भांति की तंत्र-मंत्र-जंत्र मूलक साधनाएं फैली थीं जो व्यक्ति-स्वार्थ या व्यक्तिगत मोक्ष को ही बल देती थीं। अतः समष्टिगत चित्त और स्वस्थ मन का अभाव हो गया था। हम देखते हैं कि जनता का तंत्र मंत्र में, शकुनों में, रानी की सिद्धियों में नारियों पर देवी आने में (वज्रेश्वरी मंदिर की सेविका का प्रसंग, पृ० ३८२), अलौकिक चमत्कारों और अवश भाग्यवाद में घोर विश्वास था। मंत्री और पुरोहित, और कवि भी ज्योतिष शकुन, व्रण, साधु आदि के प्रति गहरी आस्था रखते थे (विद्याधर ज्योतिष में विश्वास रखते हैं, प्रद्योत चल्ल और जल्हन शकुनों में)। गृहस्थ धर्म और सती नारी की

महत्ता को सिद्धों ने समाप्त-सा कर दिया था। अत इनकी प्रतिष्ठा के लिए आंदोलन चल पडे थे। लोगों के विचारों कार्यों और कथनी में खाई बन चुकी थी। सभी जगह से सहज जीवन, समष्टि चित्त और सास्कृतिक गौरव लुप्त हो गया था। इसलिए सामाजिक दर्शन की दृष्टि से लेखक ने सिद्धरस के बजाय प्रेमरस मठों के बजाय गृहस्थ, गृह और व्यक्ति, स्वार्थ के बजाय सेवा भाव—इन तीनों अनिवार्यताओं का अभिषेक करके अपने सामाजिक दर्शन का उत्कर्ष प्रस्तुत किया है। उनके सामाजिक दर्शन की दलित द्राक्षा का निचोड है—१—सिद्धियाँ मनुष्य को पशु पक्षी अजगर, प्रेत बना दें, किन्तु मनुष्य को मनुष्य बनाने में तब तक सहायक नहीं होंगी जब तक सहज शरीर धर्मों को ही परम लक्ष्य समझा जाता रहेगा (पृ० १५७) एव २—एक साधारण किसान जिसमें दया माया है सच झूठ का विवेक है और बाहर भीतर एकाकार है वह भी बडे-से-बडे सिद्ध से ऊँचा है। जाहिर है कि यह लेखक की वैष्णववादी रवीन्द्रवादी मानवतावादी जीवन दृष्टि का चरम विग्रह रूप है।

धार्मिक चेतना की दृष्टि से तो यह उपन्यास मध्यकालीन भारतीय धर्म साधनाओं का एक समाजशास्त्रीय शब्दकोष ही है। शिल्प की दृष्टि से इन साधनाओं ने कथावस्तु को बहुत विलंबित, शिथिल और खडित किया है, इससे न तो चरित्रों की अधिक विविधता उद्घाटित हुई है और न ही विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याएं चरमोत्कर्ष के रूप में उठी हैं। कुतूहल की दृष्टि से इनमें एकरसता है और परिणाम की दृष्टि से भक्ति और सिद्धि की दो दिशाएं। लेकिन उस युग का धार्मिक इतिहास—जनता के बीच में जिस तरह धर्म की माया फैली थी—प्रस्तुत करने के लिए इन सभी साधनाओं का वर्णन शायद वाछनीय था। मध्ययुगीन धार्मिक साधनाओं के विषय में हमारे देश में बहुत कम विद्वानों का हस्तामलकवत ज्ञान है। द्विवेदी जी उनमें से एक हैं। इन साधनाओं के समावेश ने उपन्यास को ही धार्मिक साधनाओं का सदर्भ ग्रंथ बनाने के अलावा एक शोध ग्रंथ भी बना दिया है। इस धरातल पर लेखक ने मानो मध्ययुग का नया अनुसंधान ही किया है जिसमें विभिन्न साधनाओं मत्र शक्तियों चक्र तत्र, उपासना पद्धतियों आदि का पूरे प्रमाण के साथ वर्णन ही नहीं, इतिवृत्त भी है। यहाँ पारद अभ्रक की सिद्धि वाली रसेश्वर साधना है (नागनाथ-चन्द्रलेखा) सीदी मौला की भी रसेश्वर सिद्धि है तिब्बत के प्रसग में बौद्धों की महायानी साधना है, शक्ति आगमों की षोडश-कुमारी साधना है (अमोघ वज्र) वज्रयानी साधना है महाचीनाचार है वामाचारियों का चक्र पूजन है नील सरस्वती की साधना है (जल्हन, अशोक चल्ल) लौकिक साधना का साधारण रूप है (साधारण

पुरुषों तथा नारियों पर दबी का भाव आता है) नानागोसाई तथा धुंधलेश्वर की बहुत कुछ शैव तथा पाशुपत साधना है। इसके साथ साथ और समानांतर दो साधनाएँ और हैं—पहली है नाटी माता की मधुर भाव (राधा भाव) की वैष्णव उपासना, और भगवती विष्णुप्रिया की वज्रयान-सी साधना। लेखक ने आधुनिक मनोविज्ञान के आलोक में—किन्तु उसी युग की भाषा शैली में—इन साधनाओं के रहस्यों के तात्त्विक निरूपण की कोशिश की है। इस तरह पहले तो इन साधनाओं का इतिवृत्त और विवरण दिया गया है फिर उनके मनोवैज्ञानिक अर्थ खोजे गए हैं तदुपरांत सामाजिक प्रभाव की दृष्टि से इनमें से कई की तीखी आलोचना की गई है—स्वयं इनके साधकों के द्वारा। सबसे पहले रसेश्वर साधना करने वाली रानी चंद्रलेखा को लें। आठवें परिच्छेद से वे स्वयं को प्रथम पुरुष में 'चंद्रलेखा' कहकर संबोधित करने लगती हैं जहां से उनकी प्रथम पुरुष की साधना शुरू होती है। किन्तु वास्तव में मनोवैज्ञानिक तौर से उनका व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है और उनके मस्तिष्क का संतुलन नष्ट हो जाता है। भगवती विष्णुप्रिया अमोघवज्र और मैना तीनों विमर्शों के द्वारा उन्हें पुनः 'शामिल' बनाना चाहती हैं क्योंकि वे 'अवनामिल' हो गई हैं। जहाँ उनके गुरु नागनाथ ने कोटिवेधी रस की साधना के लिए उन्हें अभिभूत किया है वह भी मात्र विमर्श है जब अमोघवज्र उनको भरथरी और युद्धरत राजा दिखाते हैं और रानी देखती हैं वहाँ वशीकरण की क्रिया है। अमोघवज्र स्वयं कहते हैं— 'ध्यान से देखो। कहीं कुछ नहीं सब दृष्ट तथ्य सत्य नहीं होते। यह सब तुम इसलिये देख सकी कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति श्रद्धा व विश्वास है। प्रत्यक्ष देखा पर सत्य नहीं था।' (पृ० २०८)।

रानी चंद्रलेखा की फंटेसी विधायक क्षमता अत्यंत प्रचंड है। प्रत्येक विमर्श को वे इस कदर फैलाती हैं कि वह मायावरण का रूप ले लिया करता है। इसी लिये वे उड़नी हैं आनंद भैरव देखती हैं, भरथरी देखती हैं आदि आदि। इनके विषय में अमोघवज्र कहते हैं कि ये रानी चंद्रलेखा के भयग्रस्त चित्त के विक्षोभ से निकली हुई अद्भुत सिद्धि-कथाएँ हैं—मात्र किस्से! वे प्रत्येक विमर्श को प्रत्यक्ष (बिंब) या मायावरण को रूपांतरित करने की अद्भुत क्षमता रखती हैं। पुरानी शब्दावली में भगवती विष्णुप्रिया कहती हैं, "चंद्रलेखा की मनोग्रंथियाँ ग्रंथियों में कठिन गाँठें (द्वंद्व) पड़ गई थीं। देख यह कल्पिका नाड़ी (फंटेसी) सूज गई है।' इसमें अनेक साधनाओं में तारा, आनंद भैरव अक्षोभ्य बुद्ध योगिनियां, छिन्नमस्ता आदि के अवतरित होने के जो जीवंत विवरण है उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या विमर्श फंटेसी, विभ्रम मायावरण के द्वारा की जा सकती है। साधनापीड़ा में या तो मद्यपान के कारण नाड़ियां शिथिल हो जाती हैं, या हवनीय द्रव्य की

उत्कट गंध के कारण अवचेतन आदोलित हो जाता है, या भयत्रस्त वातावरण के कारण या गुरु अथवा तांत्रिक के अधिक सशक्त मनोबल के कारण वशीकरण की स्थिति आ जाती है। जैसे राजा बोधा आदि भी ऐसे ही चमत्कार देखते हैं। उन्मादावस्था में राजा को भी काले बादलों में रानी के उड़ने आदि का विभ्रम हो जाया करता है। इसके अलावा ये सिद्ध मनोवैज्ञानिक विचार-पठन (thought reading) भी काफी करते हैं। अक्षोभ्य भैरव भद्रकाली की तथा राजा रानी चन्द्रलेखा की याद करता है, जो विचार-पठन के उदाहरण हैं। कई स्थलों पर 'टेलिपेथि' (telepathy) प्रक्रिया भी मिलेगी। इन मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं के अलावा लेखक ने बौद्धिकतावादी व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। चंगिस खान द्वारा ज्वाला देवी की साधना का वर्णन बाकू क्षेत्र में किरोसीन तेल की खोज का मध्यकालीन वातावरण में विवरण है। रसेश्वर साधना अणु परमाणु से तुलनीय है।

ऊपर से नीचे झांकने पर मैना को मानो लगता है कि कोई बलात् उसे पकड़कर नीचे फेंक रहा है—इसका मनोविश्लेषण बोधा करते हैं और फलस्वरूप उसके एक शैशव ट्रौमा (childhood trauma) का निराकरण कर देते हैं। तान्त्रिकों के चमत्कार पर स्वयं मैना भी कहती है कि ये तान्त्रिक लोग केवल उतनी ही बात बता सकते हैं जितनी प्रश्नकर्त्ता के मन में होती है। इसी का पूरक है भैरव का जल्हन को उत्तर—"भाई जल्हन तू समझता है कि मैं सारी दुनियाँ की बात जानता हूँ। ना भाई मैं स्वयं अपनी मर्मवेदना का उत्तर नहीं जानता।' इस तरह हम देखते हैं कि इन मध्यकालीन साधनाओं की व्याख्याओं में लेखक ने रहस्यवाद का नहीं आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं का सहारा लिया है। यह उसकी परंपरा और विवेकगामिता की एक श्रेष्ठ उपलब्धि है जो पहली बार इन साधनाओं को बीसवीं शती के सदसद्‌शील मन के सम्मुख स्पष्ट करने की कोशिश करता है। इन साधनाओं का तीसरा पहलू है इनकी आलोचना। यह आलोचना स्वयं सिद्धों के मुँह से कराई गई है। धार्मिक और सामाजिक आलोचना मिली जुली है। गुरु गोरखनाथ स्त्रीपूजा के स्थान पर ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा करने को व्याकुल हैं व माया को हराने के लिये कटिबद्ध हैं और सिद्धों की साधनाओं के बजाय मनुष्य द्वारा सहज समाधि लगाने को मोक्ष घोषित करते हैं। वे सिद्धों की मूर्खता की भर्त्सना करते हैं। राजा को संदेह है कि क्या सचमुच ही इन विचित्र साधनाओं से संसार जरा मृत्यु के चक्र से त्राण पाएगा? नाटी माता सिद्धि को गल्ती बताती है। मनसिंह कहता है इन बकवादी निठल्ले सिद्धों के चक्कर में मत पड़ो। ये बिगाड़ना जानते हैं सँवारना नहीं। व्यक्तिगत साधनाओं के द्वारा इन्होंने सत्य को खंडित किया है।' शव घुड़केश्वर स्वार्थ के लिये हिंसा, बलि,

लूटपाट करता है और दिल्ली क सुलतान स मिल जाता है। सदेहवादी अमोघवज्र कहते हैं—"मैं देख रहा हू कि सिद्धिया के पीछे पागल बने लोगो न देश को निर्वीय और कायर बना दिया है। माया को पराभूत करन का ढोग रचने वाले लोग माया के सबसे मजबूत वाहन सिद्ध हुए है।' इस तरह अमोघवज्र और मिसिलपाद (बौद्ध) काफी विवकशील हैं और बाद म सदेहवादी भी हो जात हैं। इस युग की आलोचना क उपरात लखक न विकल्प दिय हैं—साधना के क्षत्र म भक्ति (पण आत्मसमपण) और अपन भाव के अनुरूप विभाव पुरुष की कल्पना सिद्ध रस के बजाय प्रेम रस की प्रतिष्ठा समाज के परिवेश म समष्टि चित्त की साधना जनता के मन म भय के बजाय श्रद्धा विश्वास की प्रतिष्ठा, प्रजा म छोटी से छोटी और अत्यत पतित समझी जाने वाली जातियो पर भी स्नह रखना। दश के पैमाने पर लेखक न तत्र मन्त्र-बल के बजाय शस्त्र बल तथा बलिदान की स्त्री-पूजा के विकृत रूपो के बजाय नारी क दुर्गा रूप, क्रिया रूप (युद्धरत रानी, अटवी योद्धा मर्नसिंह) की महिमामय स्थापना की है। लेखक ने तान्त्रिको और सिद्धा के बजाय एक सरल किसान और एक सहज गृहस्थ को अधिक महान् माना है। उस युग का इससे अधिक यथाथवादी आदश और क्या हो सकता है धमयुग को युगधम म रूपायित करन का।

उपन्यास की सारी कथावस्तु भति की दृष्टि से साधनाओ की बहुलता और अवातरता के कारण बडी मथर तथा बिखरी हुई है। इसम आवृत्ति है —बार बार युद्ध (एक ही शत्रु मुडकेश्वर—तुक सेनापति से) और बारबार तान्त्रिक साधनाएँ। काय को घटनाओ से अधिक प्रतीक अग्रसारित करते हैं। प्रतीक काय व्यापार का चक्रमित-सा कर लेत हैं। यहाँ प्रतीक और प्रयोजन एकतान हो गए है। स्वप्न एक जबदस्त प्रतीक है काय व्यापार और वृत्ति (थीम) के। चिडिया और पिंजर का प्रतीक तो सारी कथा मे व्याप्त है। ये कृति के 'आर्के टाइप' हैं। एक 'आर्के टाइप' त्रिकोण और भी है जा आद्यत लीलायित हुआ है—इच्छा (रानी), ज्ञान (राजा) और क्रिया (मना) नामक तीन शक्तियो का सयोग वियोग। जब सयोग होता है तब कथा निर्झर-सी फूट निकलती है जब वियोग होता है तो अतर्चेतना की स्थिर झील बन जाती है। श्रीकृष्ण की गोदी म अस्त-व्यस्त भाव से पडी विद्युत् गौरी किशोरी राधा की मूर्ति मधुरोपासना के प्रतीक के साथ-साथ एक सामाजिक प्रतीक भी है—सिद्धा की ठूठ, नगोडी, गृहस्थधम विध्वसक साधना के विरोध म सहज भाव की सगुण अवतारवानी सामाजिक जिन्दगी का। यह नारी सुलभ मधुरोपासना की दीक्षा है। नटनागर राधिका मूर्ति नाटी माता का विरेचन (कैथार्सिस) करती है रानी चद्रलेखा की सच्ची साथकता का निर्देश करती है,

सिद्धों के मिथ्याचार और शुष्कता के विरोध में सामाजिक जीवन की रसधारा और मंगल सौभाग्य का प्रतिनिधित्व करती है, अतः व्यष्टिचित्त की साधना का उच्छेदन करके समष्टिचित्त की लोकचित्त की साधना का प्रचार करती है। यह मूर्ति प्रतीक मध्यकालीन व्यक्ति साधनाओं के विरोध में युगभ्रान्ति है और वैष्णव की चेतना तथा समाज दर्शन का निष्कर्ष भी है। इसी का पूरक पान का प्रतीक है। यह प्रेम विवाह नारी पुरुष, शिव शक्ति के लीलाविलास का प्रतीक है। यही गृहस्थ का औचित्य है। मैना के निःशेष आत्मसमर्पण के गंगाजल की धारा में नारी हृदय के फल का प्रतीक पूरी तरह गमगमा उठा है। सारांश यह है कि प्रतीकों की रचना द्वारा लेखक ने समाज मार्तण्ड और समाज-दर्शन की गाथा का संक्षेप किया है। कृष्णराधा मूर्ति हमें 'आत्मकथा' की महावराह मूर्ति की याद दिलाती हुई यह स्पष्ट करती है कि इसमें उद्धार का क्षेत्र स्वरूप और स्वभाव बदल गया है। इतिहास ने ऐसा परिवर्तन कर लिया है।

कथावस्तु में कई संपूर्ण परिच्छेद प्लाट के निमित्त नहीं बल्कि धार्मिक या सामाजिक या ऐतिहासिक दर्शन के हेतु विन्यस्त हुए हैं। मिसाल के लिये छठे परिच्छेद में युद्ध और जनता, जनता और राजा, राजा और कुलीनता के संबंध में सामाजिक राजनैतिक आलोचना प्रस्तुत की गई है। इस परिच्छेद में नारी और पुरुष के विरोधी तत्त्वकल्प को समाप्त कर दिया जाता है। यह एक अन्य सामाजिक भ्रान्ति है। बाणभट्ट की आत्मकथा की दवोपम नारियाँ युद्ध में भाग नहीं लेतीं किन्तु यहाँ रानी और मैना क्रमशः दुर्गा की तरह शत्रुसंहार करती हैं या गुरिल्ला सेना (अटवी सेना) का संचालन करती हैं। आठवें और नवें परिच्छेद में कोटि वधी रस की साधना और महाविद्या कुलदविद्या की साधना है। सातवें परिच्छेद में गदभल्ल सरस्वती कालिदास आदि के संबंध में ऐतिहासिक अन्वेषण हैं। ग्यारहवें परिच्छेद में स्त्री पूजा के विकृत रूपों का दिग्दर्शन हुआ है जिस की शिकार चंद्रलेखा तथा तापस बाला है। अठारहवें परिच्छेद में मैना द्वारा सिद्धों की कसकर भर्त्सना की गई है। इक्कीसवें परिच्छेद में भगवती द्वारा गृहस्थधर्म की श्रेष्ठता और अवतार की सामाजिक व्याख्या का उपाख्यान है। पच्चीसवाँ परिच्छेद देश की चहुँमुखी अवस्था व्यवस्था का दर्पण है। छब्बीसवें परिच्छेद में *शिव साधना दी गई है। तीसवें परिच्छेद में देश की समसामयिक व्यवस्था की* राजनीति व अर्थनीति का विश्लेषण हुआ है। ये परिच्छेद प्रधान रूप से वृत्ति मूलक (thematic) हैं क्योंकि उपन्यास में इनकी प्रधानता और प्रचुरता होना है, इसलिये यह रचना इतिवृत्तात्मक के बजाय वृत्तिमूलक हो जाती है। जाहिर है कि इससे उपन्यास शिल्प बिखरेगा ही, गल्प के बजाय तर्क व चिंतन

छायेगा।

अब कथातत्व वाले परिच्छेदों का लेखा जोखा किया जाय। इनसे कुछ नतीजे पाए जा सकते हैं—(i) कुछ परिच्छेद पात्रों की पिछली घटनाओं को उदघाटित करके उनका पूरा चरित्रांकन कर देते हैं (ii) कुछ परिच्छेद घटनाओं के एकत्रीकरण और फिर युद्ध द्वारा उनके आकस्मिक विस्फोटन का तकनीक स्पष्ट करते हैं, (iii) कुछ परिच्छेद पात्रों की अतकथा अतव्यथा अतर्लीला का प्रकाशन करते हैं तथा (iv) कुछ परिच्छेद (विशेषत तेरहवाँ) हास-परिहास के लिए हैं, कुछ धीरता के उन्मेष के लिये (१६ ३१, २२, १५) और कुछ दो विरोधी रसों के समतानन के लिये जिससे कि सघर्षों म तेजी आए (१५, २२, २५, ३१)। सबसे अधिक गत्यात्मक ये विरोधी स्थितियों का समतोलन करने वाले परिच्छेद हैं। प्रभाव की दृष्टि से ये कौशल हैं। ये परिच्छेद कथा को अचानक १८० डिग्री का विरोधी या विपरीत घुमाव दे देते हैं। इसके अलावा लेखक ने कुछ पात्रों को, विशेष रूप से सीदी मौला को केवल इतिहास तथा ऐतिहासिक सूचनाओं का डाकिया बना दिया है। अन्य है विद्याधर और बोधा। पात्रों का अकस्मात प्रवेश और गमन—अपटीक्षेप प्रवेश—घटनाओं का स्वाभाविकता की कीमत पर गति देता है। इस अपटीक्षेप प्रवेश के अलावा सयोग से मिलन और गमन की पद्धति भी लेखक ने पूर्व उपन्यास की भाँति रखी है, किन्तु काफी कम। लेखक ने जीवनियों और सस्मरण म कथना द्वारा बारबार कथा को काल की दृष्टि से पीछे लौटाया है। इसमे गति की धारा थमी है। लेखक न दो छल भी फँसाये हैं—पहला है, युवती मना का पुरुष वश मे मनसिह होकर रहना। उसके इस भेद को थोड़े ही पात्र जानते हैं। दूसरा है, बाइसवें परिच्छेद के बाद चारो और रानी के जीवित या मृतक होने के भ्रम। इसके बाद यद्यपि रानी तो उपन्यास म अदयमत नहीं आती, किन्तु व नारी शक्ति सिद्धयोगिनी विमला देवी क रूप म राजा को अविश्रात प्रेरणा देती रहती है।

दोनों प्रकार के परिच्छेदों को मिलाने पर हम पाते हैं कि कथानक के चार वातावरण मूलक खण्ड हैं। पहले खंड मे (पद्रहवें परिच्छेद के अर्धाश तक) नाना भाँति की नाथपथी व सिद्धपथी साधनाओं का पूरा प्रभाव और राजा तथा विद्याधर द्वारा समाज सगठन की परिकल्पनाएँ हैं। यह खंड फिल्म की भाँति चित्रखंडों से गुथा है। दूसरे खंड म (पद्रहवें परिच्छेद के उत्तरार्ध से बाईसवें परिच्छेद तक) इन साधनाओं का विरोध करने वाली शक्तियों का विस्फोट शुरू होने लगता है। तीसरे खंड मे (तेइसवें परिच्छेद से इकतीसवें परिच्छेद तक) समष्टिचित्त की क्रिया शक्ति का तेजी म सधान शुरू होता है। शनै शनै समाज का मोहभग

होता है । उपसहार रूप मे चौथे खड (बत्तीसवा परिच्छेद) म इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति विखडित हो जाती हैं। देश पुन अनिश्चय और अधकार म डूब जाता है। राजा रानी मना-जोधा के रूप म देश की आदर्श और भविष्य धर्म शक्तियो पर युग रूपी खलनायक का मनमान अधिकार कर लेता है । इस तरह यह उपन्यास आदर्शवाद का नही, बल्कि एक त्रासदी और सामाजिक यथार्थता का अनुसधान एव अभिज्ञान करा देता है ।

चारु चद्रलेख की यही महत्ता और न्यूनता, प्रयोगात्मकता और ऐतिहासिकता, आधुनिकता एव पुनर्व्याख्या है ।

श्री नेमिचन्द्र जैन

१०

बूँद और समुद्र : सामाजिक जीवन की सक्रांति का जीवन्त आलेख

अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र' घटनाओं और चरित्रों के चारों ओर बुना हुआ ऐसा उपन्यास है जिसे एक प्रकार से प्रेमचन्द की परंपरा में माना जा सकता है। प्रेमचंद मूलतः सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं पर, व्यक्ति के जीवन के साथ उनके प्रकट संघात पर, बल देते थे, और उसी परिप्रेक्ष्य में मनुष्यों के बाह्य आचरण के चित्रण द्वारा उनके मानसिक संघर्ष और नैतिक अंतर्द्वन्द्व का अंकन करते थे। उन्होंने मुख्यतः व्यक्ति के जीवन के सामाजिक पक्ष को ही अपनी व्यापक और अशेष सहानुभूति द्वारा पहचाना और चित्रित किया है। उनकी रचनाओं में सहानुभूति की यह व्यापकता जितनी मिलती है व्यक्ति की निजस्व भावनाओं और पीड़ा की गहराई उतनी नहीं मिलती। किंतु उनके परवर्ती उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति की ओर भी गया। उन्होंने समझा कि समाज मूलतः व्यक्ति की अधिकतम आत्मोपलब्धि और आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है और सामाजिक समस्याएँ इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे मनुष्य के इस चरम उत्कर्ष, उसकी सार्थकता के चरम प्रतिफलन के साथ जुड़ी हुई होती हैं—उसमें बाधा बनती हैं अथवा सहायक होती हैं। साथ ही व्यक्ति भी समाज में रहकर अपने व्यापक उत्कर्ष के उद्देश्य से अपने तात्कालिक, क्षणस्थायी और क्षुद्र स्वार्थों का परित्याग करता है और इस भांति अपनी आत्मोपलब्धि के, अपने व्यक्तित्व के, पूर्णतम विकास का मार्ग अधिक प्रशस्त करता है। व्यक्ति की ऐसी महत्ता प्रेमचंद के युग तक हमारे सामाजिक जीवन में ही स्पष्ट न थी। इसलिए उस युग के साहित्य में भी व्यक्ति के इस रूप का समस्या के इस पक्ष का, कोई चित्र नहीं मिलता, न उसको समझने अथवा सुलझाने की चेतना ही

दीखती है।

प्रेमचद के परवर्ती कथाकारो ने कई रूपो और स्तरो पर इस कमी को पूरा करने का यत्न किया। वे या तो व्यक्ति के केवल निजी आतरिक जीवन का अनुसधान करने म लगे या फिर सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओ को एक प्रकार से समानातर अथवा परस्पर सबद्ध मानकर उनके बीच प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सूत्रो की खोज करने लगे। फलत एक ओर व्यक्ति के आचरण और उसके अत सघर्ष के अध्ययन म अधिक तीव्रता और गहराई आई, और दूसरी ओर सामाजिक समस्याओ को भी एक नई सार्थकता और उनके चित्रण को एक नई गभीरता प्राप्त हुई। *बूद और समुद्र इसी श्रृखला का बड़ा उल्लेखनीय उपन्यास* है जिसका प्रकाशन सन् १९५६ म हुआ है। उसकी दुनिया भी वसी ही व्यापक विस्तृत और जनसकुल है जसी प्रेमचद के उपन्यासो म मिला करती थी। किंतु साथ ही उसम व्यक्ति के मन की एकात निजी भावनाओ कुण्ठाओ, उलझनो और आत्मसघर्ष को समझाने का भी बडा सच्चा प्रयत्न दिखाई पडता है। इसम कोई सदेह नही कि शहरी जीवन के विभिन्न स्तरो के विशेषकर निम्न और उच्च मध्यवर्ग के अथवा किसी हद तक सुसपन्न वर्गों के भी जीवन का ऐसा सूक्ष्म और बहुमुखी किंतु साथ ही अधिक से अधिक सहृदयतापूर्ण रूपायन हिन्दी उपन्यासो म बहुत कम ही देखने को मिलता है। बूद और समुद्र म एक पूरे नगर, एक पूरे समाज के जीवन के कुछेक महत्त्वपूर्ण पक्ष सजीव हो उठते हैं। उसम जहाँ एक ओर परपरागत जीवन पद्धति रीति रिवाज, आचार व्यवहार विचार विवक पुरानी चाल के लोगो और उनकी जीवन दृष्टियो का सटीक चित्रण है, वहा दूसरी ओर आधुनिक सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक शक्तियो विचारधाराओ और परिस्थितियो के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली जीवन दृष्टियो व्यक्ति और उनकी समस्याए रहन सहन उलझन आदि भी अधिक से अधिक व्यापकता म मौजूद है। एक ओर ताई नदो बडी कल्याणी राजाबहादुर द्वारकादास लाले दलाल मनिया जसे लोग है तो दूसरी ओर वनकन्या विभा शीला स्विग, सज्जन महिपाल जसे लोग भी हैं। जहा एक ओर आटे के पुतले बनाकर मारण मत्र के उपयोग में पक्का विश्वास करने वाले एक स्तर पर अत्यत सहज सरल किंतु दूसरे स्तर पर अत्यत उलझाव भरे प्राणियो की दुनिया है वही हवाई जहाज से पर्चे *गिराकर चुनाव के आदोलन की सरगर्मियाँ भी हैं।* और साथ ही इन एक दूसरे से सवथा भिन्न दुनियाओ को जोडनेवाली कडियाँ भी कम नही हैं। कनल रामजी मि० वर्मा, तारा ऐसी ही कडियाँ हैं जो इन दोनो दुनियाओ के बीच आर-पार गुथी हुई हैं।

एक प्रकार से 'बूद और समुद्र' मे इन दो भिन्न जीवन पद्धतियो और जीवन दृष्टियो का इतना विस्तृत और व्यापक किंतु एक हद तक एक-दूसरे मे असबद्ध चित्रण ही उपन्यास की महत्त्वपूर्ण विशेषता भी है और उसकी दुर्बलता भी। निस्सदेह लेखक ने ऐसे कई सूक्ष्म और सुस्पष्ट दोनो प्रकार के सूत्रो को उपस्थित करने का यत्न किया है जिनसे ये दोनो जगत एक-दूसरे से सबद्ध और प्रभावित होते हैं, एक-दूसरे की समस्याओ को जन्म देते और सुलझाते हैं एक-दूसरे का सस्कार करते हैं। इस प्रकार जहाँ हमारे आज के आधुनिक जीवन और उसकी समस्याओ की जड़ें, विशेषकर इन समस्याओ के साथ उलझने वाले व्यक्तियो के सस्कारो के मूल रूप किन्ही परिचित अपरिचित पुरानी मान्यताओ, धारणाओ और आचार व्यवहार मे छिपे हुए हैं और अपना वर्तमान रूप उन्ही सस्कारो द्वारा प्राप्त करते हैं वही दूसरी ओर इन आधुनिक प्रवृत्तियो और विचारो के सघात से जीवन की पुरानी मान्यताएँ धीरे धीरे विघटित हो रही हैं विशृखल हो रही हैं और नए तत्त्व उन्हें एक नया ही रूप प्रदान कर रहे हैं—यह रूप न तो पुराना है और न नया ही, इसलिए चरित्रहीन है, किसी हद तक प्राणहीन जर्जर और आधारहीन है। सामाजिक जीवन की इस सक्रान्ति का अध्ययन आज के महाकाव्य का विषय है और इसमे कोई शक नही कि अमृतलाल नागर ने अपने इस उपन्यास को महाकाव्य का फलक ही प्रदान किया है और उसे उतनी ही गरिमा तक उठाने और स्थित रखने का प्रयत्न भी किया है। बूद और समुद्र मे लखनऊ के जिस चौक का चित्र नागर जी ने उपस्थित किया है उसमे एक जीवन-व्यवस्था टूटती और एक नई जीवन-व्यवस्था जन्म लेती दीखती है। इसीलिए उपन्यास मे एक ओर प्राचीन परम्परा के ढहने की करुणा है तो दूसरी ओर नई आलोक किरण की प्रथम रोमाचकारी सिहरन भी।

टूटती हुई पुरानी व्यवस्था और जन्म लेती हुई नई व्यवस्था के इस सबध को दिखाने के लिए नागर जी ने उपन्यास मे कई एक कथा-सूत्रो और जीवन खडो का समानातर प्रयोग और चित्रण किया है चौक की गलियो मे पुरानी परपराओ के अनुसार चलने वाली जिंदगी जिसकी केंद्र ताई है, इस जिंदगी की परिधि से छूकर निकलती हुई या किसी हद तक काटती हुई, वनकन्या और सज्जन की जीवन गाथा और सज्जन के मित्र होने के नाते इस जीवन से हल्की सी जुडी हुई लेखक महिपाल उसके परिवार और प्रेमिका डा० शीला स्विग की कथा। मुख्य सूत्र ये तीन ही हैं, पर इनको बीच-बीच मे काटते-गूथते चलने वाले अन्य प्रसग हैं, जैसे बडी विरहेश काड, महिला-सेवा-मडल का भडा फोड राधाकृष्ण विवाह आदि, विविध व्यक्ति हैं जैसे कर्नल, रामजी बाबा,

चित्रा, आदि। इस प्रकार बड़े पैमाने पर लेखक ने जीवन को समेटना चाहा है और अनगिनती व्यक्तियों घटनाओं और समस्याओं को एक साथ पिरोने की कोशिश की है—यहाँ तक कि प्रभाव की एकाग्रता नष्ट होने लगती है और सारा उपन्यास असंख्य रेखाचित्रों की लड़ी जैसा लगने लगता है। वास्तव में मुख्य प्रसंगों में से प्रत्येक अपने आप में एक विराट उपन्यास के फलक पर उठाया और चलाया गया है। इन स्वायत्त सूत्रों की अपनी अपनी अलग सत्ता और गति है। वे एक दूसरे को कहीं कहीं स्पर्श करने पर भी स्वतः संपूर्ण हैं और केवल व्यक्तियों के माध्यम से एक-दूसरे से थोड़ा बहुत जुड़ पाते हैं। इस प्रकार 'बूंद और समुद्र' में प्रधानता विभिन्न पात्रों की है जो कुछेक सूत्रों से विभिन्न स्तरों पर जिंदगी के विभिन्न क्षेत्रों में, एक-दूसरे से संबद्ध तो हैं, किंतु कोई एक समन्वित सूत्र नहीं उभरता जो विभिन्न तत्त्वों को अपने भीतर आत्मसात कर जीवन की समग्रता को संप्रेषित करता हो। विभिन्न प्रमुख कथा सूत्र अपने सहारे 'पारंपरिक' और 'आधुनिक' जीवन पद्धतियों, दृष्टियों और व्यवस्थाओं के चित्र मात्र उपस्थित करते हैं जो कहीं-कहीं संबद्ध होकर भी स्वतंत्र हैं। कुल मिलाकर उससे टूटती-बनती संक्रांतिकालीन जीवन व्यवस्था की झाँकी भले ही मिले पर जीवन की कोई अखंड स्थिति अपनी आंतरिक द्वंद्वात्मकता में विभिन्न तत्त्वों की समग्रता में उभर कर सामने नहीं आती।

बल्कि इन विभिन्न जीवन-खंडों का अलग अलग अनुसरण करते-करते अंत में यह लगता है कि नागर जी वास्तव में उस पुरानी पारंपरिक दुनिया को ही जानते और समझते हैं उसी के साथ उनका आंतरिक व आत्यंतिक लगाव है। इसी से उनके जितने प्रामाणिक और सच्चे चित्र इस पुरानी दुनिया के हैं उतने नयी दुनिया के नहीं। नंदो ताई, बड़ी मनिया, लाले दलाल टिल्ली उस्ताद और उनका अखाड़ा, गोकुलद्वारा के मितरिया जी, जलघड़िया जी, कीतनिया जी, मुखिया जी, खन्ना की बहुरिया आदि के चित्र संपूर्णतः सजीव ही नहीं उनके अंकन में ऐसा सूक्ष्म कला बोध है और सहज सहानुभूति के साथ साथ ऐसा कलाकार का संयम भी है जो उन्हें हिंदी के कथा साहित्य में बेजोड़ बनाता है। सज्जन, महिपाल, चित्रा, वनकन्या के चित्र इतने प्रामाणिक नहीं। दोनों में यह अंतर इतना स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि एक में लेखक का आत्मीय और गहरा परिचय तथा दूसरे से एक प्रकार का काल्पनिक लगाव पूरी तरह उजागर हो उठता है। पुरानी दुनिया के ये सब पात्र अपने स्वाभाविक संपूर्ण परिवेश में अपनी समस्त संभावनाओं, दुर्बलताओं और क्षमताओं के साथ प्रगट होते हैं, वे अपने जीवन का सुपरिचित मार्ग बड़ी सहजता के साथ तय करते

हुए अपनी चरम परिणति प्राप्त करते हैं। उसम नदा की विकृति अथवा वडी की दुर्गति दोनो एकदम सहज लगती हैं। यह दुनिया एक प्रकार म अपने आप में पूर्ण है। और यदि केवल इसी के सदभ म देखा जाय तो इस अश के चित्रण म विस्तार की इतनी बातें प्रस्तुत करने पर भी प्राय एसा अनुभव नही होता कि यह केवल एतिहासिक अथवा सामाजिक डायरी अथवा घटनाओ और व्यक्तियो का सग्रह मात्र है। नागर जी उस जीवन क विभिन्न पक्षो और तत्त्वो को वडी सूक्ष्म कला-दृष्टि के साथ समन्वित करके रख सके हैं जिससे हर चित्र अपने आप म सपूर्ण होकर भी एक वृहत्तर चित्र का अग जान पडता है।

इसीलिए वास्तव म देखा जाय तो 'बूंद और समुद्र' की मुख्य पात्र ताई है। वह हिन्दी कथा-साहित्य की एक अद्वितीय सृष्टि है जिसकी गणना होरी और देवकर जसे पात्रो के साथ होगी। ताई का व्यक्तित्व असाधारण है। उसका क्रोध भी जसा असयत और अनियन्त्रित है वैसा ही निश्छल और उत्कृष्ट उसका स्नेह और ममत्व भी। उसम तीव्र प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की धधकती हुई ज्वाला है, तो दूसरी ओर असीम करुणा का सागर भी। ऐसा सजीव और सप्राण चरित्र हिंदी उपन्यासों म बहुत कम देखने को मिला है। ताई जीवन की अनत सार्थकता और अनिवार्य दु खातता को एक साथ मूर्त करती है। इन दो परस्पर विरोधी तत्त्वो को नागर जी जिस रासायनिक प्रक्रिया से समन्वित कर पाये हैं वह उनकी अपूर्व क्षमता और प्रतिभा की परिचायक है। निस्सदेह लेखक को कितनी अगाध और अपरिमित करुणा तथा सहानुभूति उँडेल कर ताई के चरित्र को निर्मित करना पडा होगा कि उससे मार खा कर भी, उससे गालियाँ सुन कर भी, उसे भयकर स भयकर मुद्राओ म देखकर भी, हमारा स्नेह उस पर कम नही होता। वह मनुष्य के बच्चो को मारने क लिए पुतला बनाती है और बिल्ली के बच्चों का प्यार करन के लिए अपना नम धम सब कुछ छोड देती है। अत म जब वह अपने पति को मारने के लिए 'मूठ' चलाती है और फिर एकाएक जोर स नईं नईं नईं चीखती हुई बडी तेजी से और व्यग्रता से मन पढकर मूठ को अपने ऊपर लौट आने के लिए पुकारती है तो उसके सस्कारों की ट्रेजेडी और व्यक्तित्व की गहराई एक साथ प्रकट हो जाता है। बूंद और समुद्र का मूल उत्स और केंद्र ताई और उसके चारो ओर का वह सारा सरल और उलझा हुआ सस्कारनिष्ठ और सस्कारभ्रष्ट, परोपकारी और स्वार्थी आत्मीय और निमम परिवेश ही है जिसम ताई उत्पन्न होती है जाती है और विलीन हो जाती है। यदि उपन्यास मूलत उसी की जीवन गाथा और काय-कलाप के घेरे को लेकर विकसित होता और उसकी मृत्यु क साथ समाप्त हो जाता तो सभवत कही

अधिक सशक्त और सक्षम लगता। उसकी मृत्यु के बाद तो बाकी सब घटनाएँ उपसहार जैसी लगती है उनमे अधिक सजीवता नहीं आ पाती।

यही बात सज्जन और वनकन्या के प्रेम तथा महिपाल और उसके जीवन की दुखात परिणति के बारे म नही कही जा सकती। यह अकारण नही है कि जहाँ पहली दुनिया के चित्रण म लेखक न उसके निवासियो के सहज सरल आचार व्यवहार द्वारा जीवन की गहराई और उनके चरित्र की सूक्ष्मता प्रगट की है, वहाँ सज्जन, महिपाल वनकन्या शीला चित्रा आदि के साथ उसन बेशुमार वाद विवाद चर्चा विवेचन विश्लेषण आदि का अम्बार लगा दिया है। पर फिर भी उनके जीवन म गहराई नही आ पाती। इन आधुनिक पात्रो को हम उनके सहज वास्तविक जीवत रूप म जीवन की छोटी छोटी घटनाओ के प्रति उनकी प्रति क्रिया द्वारा नही जानते हम कही अधिक परिचित होते है उनके विचारो से, उनकी बौद्धिक मान्यताओ स उनकी बहस और चर्चा से अपने ही विषय म उनके आत्म चिंतन और आत्म विश्लेषण से। इसलिए ये सब पात्र अवास्तविक और काल्पनिक लगन लगते है। उनके चरित्र की रेखाए धुधली और अस्पष्ट हो जाती हैं, कही कही अनियत्रित असगत और कलाहीन भी लगती हैं। उनका मानवीय रूप हमार सामने उजागर नही होता और यदि कही होता भी है तो वह बहुत ही क्षीण और प्राणहीन जैसा लगता है। यही कारण है कि बहुत सा मनोविश्लेषण प्रस्तुत करने के बाद भी सज्जन और वनकन्या का प्रेम तथा उस लेकर उनके का सघष किताबी और सैद्धातिक लगता है ठीक उसी प्रकार जसे महिपाल के मन की विकृति और उसकी अतिम परिणति आकस्मिक तथा सनसनीपूण। इन चरित्रो के जीवन म एक विचित्र प्रकार की सूत्रहीनता असबद्धता और सस्कार हीनता है यद्यपि लेखक उन्हे विशेषकर सज्जन और वनकन्या को बडी सहानु भूति से अपने उपन्यास के मुख्य पात्र नायक नायिका के रूप मे प्रस्तुत करना चाहता है। सज्जन और वनकन्या को तो लगक ने लगभग आदश चरित्रो के रूप मे प्रस्तुत किया है और सभवत सारे उपन्यास म सज्जन और वनकन्या मे अधिक भले या शरीफ चरित्र दूसरे नहीं हैं।

व्यक्तित्व के विकास और प्रतिफलन की दृष्टि से महिपाल के प्रकन म भी नागर जी पर्याप्त सूक्ष्मता और अतद्वद्व नही दिखा सके हैं। यह ठीक है कि महिपाल के चरित्र मे एक तरह के सतुलन क अभाव का तत्त्व लेखक ने शुरू से ही रक्खा है और इसी आधार पर एक ओर उसकी आदर्शवादिता तथा दूसरी ओर उसकी स्वार्थपरता का साथ साथ दिखाने का यत्न किया है। किंतु इस प्रकन म आतरिक सगति नही है। बूद और समुद्र म महिपाल सबसे अधिक जाग्रत और

आत्मसजग व्यक्ति है। उपन्यास के प्रारभ म ऐसा अनुभव होता है कि वह लेखक का प्रतिनिधित्व करता है लगता है कि जीवन की गहरी पीडा में तप कर उसने वह ओजस्वी व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन प्राप्त किया है जो उसे एक प्रकार का बौद्धिक नतृत्व प्रदान करता है। प्रारभ म उसकी बातो म ऐसी धार महसूस होती है जो प्रतिभा और जीवन के गहन अनुभव के बिना नही प्राप्त होती। ऐसा अनुभव होता है कि लेखक उसके चरित्र का एक ऐस पृष्ठफलक के रूप मे प्रस्तुत कर रहा है जिसके परिप्रेक्ष्य म अन्य लोगो का व्यक्तित्व सुस्पष्ट उभर कर दिखाई पडेगा। किंतु अचानक ही उसकी यह मूर्ति टूट जाती है। जब क्रमश हम पारिवारिक जीवन का लेकर उसकी दुबलता, अनिश्चय और खीझ का चित्र देखते हैं और फिर एक प्रकार के आत्मपलायन के रूप मे डाक्टर शीला स्विग के साथ उसकी मत्री तथा प्रेम-सबध का परिचय पाते हैं तो ऐसा अनुभव होता है कि उसकी सारी बातें या डाडबर मात्र थी। अत मे ता लेखक दिखाता है कि किस प्रकार वह सपन्न बनने के मोह मे, समाज की रूढिया के अनुसार अपनी भानजी तथा कन्याओ के विवाह करने के आकर्षण मे तथा साधारण सुविधा और सपन्नता का जीवन बिताने के लालच से धन चुराता है, अपने आदशवाद को तिलाजलि दता है और अपने घनिष्ठ बधुओ से अलग होकर, बल्कि उनका तीव्र विरोध करके जीवन मे ऊँचा उठने की कोशिश करता है। यहाँ तक कि चरित्र की इस परिणति का अत आत्महत्या के अतिरिक्त लेखक के पास कुछ नही बचता। महिपाल के प्रारभिक और परवर्ती व्यक्तित्व म बहुत साथक आतरिक सगति नही है, न तो किसी उत्तरोत्तर विकास की ओर न किसी गहरे सूत्र द्वारा परस्पर विरोधी तत्त्वो क समजन की। इसी से महिपाल के चरित्र मे जोड लगे हुए जान पडते हैं। उसके व्यक्तित्व की गाठ पकड म नही आती, न वह केंद्र समझ मे आता है जहा स उसके चरित्र के ये परस्पर विरोधी सूत्र प्रारभ होते हैं। ऐसा अनुभव होता है कि लेखक उसका सही स्थान तथा महत्त्व अत तक ठीक से स्पष्ट नही पहचान सका। एक ओर लगता है कि वह सज्जन के साथ विसदृशता (कट्रास्ट) के लिए लाया गया है, पर दूसरी ओर वही बहुत सी गहरी सैद्धातिक चर्चा भी करता है जो विभिन्न विषयो पर लेखक के अपने, या कम से-कम प्रबुद्ध वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को प्रगट करती जान पडती है। उसके दृष्टिकोण म जो धार है वह बहुत बार आत्मद्रोही या आत्मघाती होने का भाव नहीं उत्पन्न करती, इस कारण उसकी परवर्ती अधोमुखी परिणति ऊपर से आरोपित और यात्रिक लगती है।

महिपाल के चरित्र को यदि सज्जन क साथ रखकर देखें तो यह यात्रिकता

लेखक की और भी बडी असफलता जान पडती है। इन दोनो मे अधिक क्षमता
वान और प्रखर महिपाल ही है। सज्जन उसकी तुलना मे कही अधिक प्राणहीन
और सार्थकताहीन चरित्र है, यद्यपि अत मे लेखक ने उसे जिस जीवन के आदर्श के
रूप मे प्रस्तुत कर दिया है। वास्तव मे सज्जन का सतुलन खोखला लगता है,
क्योकि वह किसी मूलभूत नतिक सघर्ष अथवा अतर्द्वन्द्व के ऊपर आधारित अथवा
विकसित नही है। उसके जीवन म हर घटना जसे सहज ही आसानी स, लेखक
की इच्छानुसार, होती जाती है। वह जो कुछ भी हाथ म लेता है, मन म
उसम सफल होता है यद्यपि कही भी उसके चरित्र म वह गहनता अथवा
अनुभव या समझ की ऊँचाई नहीं है कि उसके जीवन को आदर्श माना जा
सके या जो उसकी परिणति या सफलता को विश्वसनीय बना सके। महिपाल की
तुलना म उसे जीवन मे अधिक सफल दिखान म कुछ ऐसा प्रभाव पडता है कि
अधिक निकम्मे और अधिक अक्षम लोग ही, अधिक साधारण कोटि के लोग
ही अधिक सफल होते हैं। सज्जन की साधारणता लेखक के सारे प्रयत्नो के
बावजूद पुस्तक म से बार-बार छलकती है यद्यपि लेखक न बडी धूमधाम से
और बडे गहरे रगो म उसे अकित किया है। उसका अत सघर्ष फार्मूला के
अनुसार है और विरोधी तत्त्वो को केवल ऊपर से सजो दिया गया है। इसी
लिए उसके मूड बडे बचकाने और अस्वाभाविक लगते है कुछ यह किताबी
धारणा सिद्ध करने के प्रयत्न जैसे कि अचेतन मन की गूढ रहस्यमयी वृत्तियाँ
किस प्रकार चेतन मन को नियन्त्रित करती रहती हैं। सज्जन के अत सघर्ष स
इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो के पात्रों की मिथ्या मनोविश्लेषण-परक हालो का
स्मरण होता है। यह उचित ही है कि लेखक वनकन्या के साथ सज्जन के
व्यक्तित्व की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव को देख पाता है, पर उपन्यास
मे उसके लिए जो हेतु (मोटिवेशन) रखे गए है वे अत्यत ही सतही और
कृत्रिम हैं। अधिकतर उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन वर्णन द्वारा होता है,
सार्थक कार्य-व्यापार द्वारा नही। सज्जन बडा 'टिपीकल' फिल्मी नायक है
जिसमे बडी कमजोरियाँ है पर जो उन पर अत मे विजयी होता है समस्त
विघ्न-बाधाओ के बावजूद अपने शत्रुओ का नाश करता है और नायिका को
प्राप्त ही नहीं करता वरन् उसके हृदय को जीतने म भी सफल हो जाता है। उसे
अपार धनी माता पिता की एकमात्र सतान और कलाकार बना कर तो नागर
जी न उसके फिल्मी नायक होने म बची-खुची कसर भी पूरी कर दी है।

यही बात वनकन्या के सबध म भी है। साधारणत जीवन के प्रति यथार्थ
वादी और वस्तुपरक दृष्टिकोण रखते हुए भी वनकन्या के चित्रण म लेखक

स्वाभाविक रूप से रोमेंटिक हो उठा है। सज्जन के साथ उसका प्रेम संबंध कुछ अतिरंजित रूप में सरल तथा पवित्र बन गया है। उसे लेकर सज्जन और वनकन्या दोनों के मन में जो संघर्ष यदाकदा दिखाई पड़ता है वह भी बहुत ही फ़िल्मी ढंग का है। उसमें अंतःसंघर्ष की वैसी तीव्रता और प्रबलता नहीं है जो इस प्रकार के संबंधों में अनिवार्य होती है, इसलिए वह कोई गहन जीवन-दृष्टि की, अथवा मानव मन के गहरे संकट की छाप हमारे मन पर नहीं छोड़ती और नीति-कथाओं के अथवा फ़िल्मी कहानियों के संघर्ष और उनके सुखांत समापन जैसी जान पड़ती है।

सच पूछा जाय तो आधुनिक व्यक्ति के भीतर इस खिंचाव की उसके गहन अंतर्द्वंद्व और आधुनिक जीवन की परिस्थितियों में उसके विघटन की पकड़ नागर जी को नहीं है। यह बात विशेष और नीना सिंह के चरित्र में भी प्रकट होती है। दोनों ही एक प्रकार से असाधारण स्त्रियाँ हैं, क्योंकि दोनों ही पुरुष के साथ अपने संबंध के विषय में लीक से हटकर चलती और सोचती हैं। दोनों ही विद्रोहिणी हैं जो समाज के ढोंग और आडंबर की शिकार होने पर अपने अपने अलग अलग ढंग से उसकी अवज्ञा करके चलती हैं। वे साधारण स्त्रियों से भिन्न हैं—कम-से-कम उनकी मूल परिकल्पना में बड़ी तीव्र भिन्नता की संभावनाएँ मौजूद हैं। पर मूलतः वह भिन्नता उनके मन के अंतर्द्वंद्व में ही प्रकट हो सकती थी, किसी सामान्य केंद्र पर उनके चरित्र के दो सर्वथा विपरीत और विरोधी छोरों को एकाग्र कर देने में ही अभिव्यक्त हो सकती थी। नागर जी यह करने में सफल नहीं हुए हैं। इसलिए अत्यंत संभावनापूर्ण होकर भी ये चरित्र फीके और एक ही सामान्य आयाम में अंकित दीख पड़ते हैं और उनकी असाधारणता पूरी तीव्रता के साथ नहीं उभर पाती।

प्रसंगवश यह बात भी कही जा सकती है कि आधुनिक जीवन के किसी भी साधारण सहज मनुष्य को नागर जी प्रस्तुत नहीं कर सके हैं, न पुरुषों को न स्त्रियों को। जितनी सूक्ष्मता और सहानुभूति के साथ नागर जी पुराने समाज के साधारण पात्रों को अंकित कर पाते हैं वैसे आधुनिक समाज के पात्रों को नहीं। उनके आधुनिक पात्र या तो विरक्त अथवा विषाक्त जैसे पतित हो सकते हैं या वनकन्या जैसे असाधारण। दूसरी ओर कनल और रामजी बाबा जैसे चरित्र अपने साधारण आडंबर के बावजूद बड़े अच्छे लगते हैं। इन सबके अंकन में लेखक की सहज सहानुभूति और अंतर्दृष्टि स्वाभाविक रूप में प्रकट होती है क्योंकि वे सर्वथा उस पुराने जीवन के अंग न होकर भी, उससे कुछ-कुछ भिन्न होकर भी, अंततः हैं उसी के अधिक समीप, और इसीलिए लेखक

के अधिक परिचित हैं।

यह बड़ी दिलचस्प स्थिति है कि इस बात में भी अमृतलाल नागर प्रेमचंद से तुलनीय हैं। 'गोदान' में होरी और उसका परिवार जितना अभूतपूर्व, यथार्थ और विश्वसनीय है उतना 'गहरे प्रकरण' नहीं। 'बूंद और समुद्र' में भी ताई और उसका परिवेश ही जीवन है बाकी सब, कमोबेश मात्रा में उस परिवेश के साथ दूरी के अनुपात में जीवित या मृतप्राय हैं। इसमें इतना आश्चर्य भी नहीं। अभी तक हमारे सामर्थ्यवान लेखक भी बीते हुए युग में ही जीते हैं वे मूलतः संक्रांति काल के उस छोर पर खड़े हैं जहाँ से उन्हें डूबते सूरज के रंग तो स्पष्ट दिखाई देते हैं दूर उगनेवाले प्रभात की चर्चा वे अपनी कल्पना के सहारे ही करते हैं किसी जीवंत अनुभूति के बल पर नहीं। संभवतः प्रत्येक देश का संक्रांतिकालीन लेखक इस कठिनाई का सामना करता है, और यदि वह स्वयं इस विषय में सजग रहे तो नए युग के इच्छापूर्तिपरक चित्रण से बच सकता है कम से कम उस पर आग्रह करने से तो बच ही सकता है।

नागर जी की कला का यह अंतर्विरोध 'बूंद और समुद्र' के बौद्धिक पक्ष में और भी तीव्रता से प्रकट होता है। इस उपन्यास में लेखक ने अनगिनती सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य सदाचारिक प्रश्नों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं कहीं किसी पात्र के माध्यम से उसके आत्मचिंतन द्वारा, कहीं विभिन्न पात्रों के बीच विवेचन द्वारा, अथवा कहीं केवल परिस्थितियों के संघात द्वारा। अंतिम अध्याय में लेखक ने अपने आप भी अपने विचार रखे हैं।

मूलतः 'बूंद और समुद्र' में बूंद और समुद्र के, व्यक्ति और समूह के स्वरूप परस्पर संबंध—सहयोग और संघर्ष—को खोजने और समझने का प्रयास है। सत्य बुनियादी तौर पर द्वन्द्वमूलक है जीवन को उसकी द्वन्द्वात्मकता पहचाने बिना नहीं समझा जा सकता। यह द्वन्द्व जिस प्रकार व्यक्ति और समूह के बीच है, उसी प्रकार स्वयं व्यक्ति के भीतर भी है और इकाई रूप में स्वयं समाज के भीतर भी है। और, साथ ही ये द्वन्द्वग्रस्त व्यक्ति और समूह स्थिर नहीं हैं निरंतर गतिमान हैं परिवर्तनशील हैं। इस प्रकार स्थिरता और गतिमानता के बीच भी एक अनंत द्वन्द्व मौजूद है। यह बात उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है कि सत्य की द्वन्द्वात्मकता के इन विभिन्न रूपों और स्तरों को उनके पारस्परिक प्रभावों और संबंधों का एक साथ ही नागर अपने इस उपन्यास में खोजने का प्रयास करते हैं। बाबा रामजी एक जगह वनकन्या से कहते हैं 'हर बूंद का महत्त्व है क्योंकि वही तो अनंत सागर है एक बूंद भी व्यर्थ क्यों जाय? उसका सदुपयोग करो।' पर यह सदुपयोग हो कैसे? कैसे यह बूंद अपने आपको

महासागर अनुभव करे ? इस विशाल जनसागर में वह नितांत अकेली है। उसका कोई अपना नही। ऐसा लगता है जैसे उसके चारो ओर सागर सीमा बाँध कर लहरा रहा है और वह एक बू्ंद सागर से अलग रेत में घुलती चली जा रही है। और केवल उसकी ही यह हालत हो, सो बात भी नही। हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है। आदर्श का यदि महत्त्व है तो सबके लिए उसका मूल्य समान हो, यह क्योंकर सभव नही ? बडी बूंद हो, छोटी बूंद हो, नन्ही जसी बूंद क्यों न हो यह छोटाई बडाई नैतिक मापदंड के लिए कोई मूल्य नही रखती। वह मात्र यही देखता है कि बूंद मे, प्रत्येक अणु मे, सत्य के लिए निष्ठा कितनी है।'

स्पष्ट ही लेखक की सहानुभूति पुराने दकियानूसी विचारो, अधविश्वासो और मान्यताओ के साथ नहीं है। किंतु मनुष्य का धर्म नए युग का धर्म, परपरा से प्राप्त नई शक्ति के आधार पर ही आत्मविश्वास के आधार पर ही बन सकता है। पर आज हम वह आत्मविश्वास प्राप्त नही। इस अभाव का एक बडा कारण लेखक राजनीतिक पार्टियो को बताता है। एक जगह उसने लिखा है कि सब पार्टियां अधिकांश में एक से एक बढकर आकांक्षा वाले, जालसाज, और मगरूरो द्वारा अनुशासित है आदर्श और सिद्धात तो महज शिकार खेलने के लिए आड की टट्टियां हैं। ये राजनीतिक पार्टियाँ या तो पुरानी रूढ़ियां को देश के ऊपर लादना चाहती हैं या विदेशी परंपराओं को। इनमे से किसी पार्टी को भी बल्कि राजनीतिक मात्र को लेखक प्रगतिशील नही मानता। उसका विश्वास है कि रूढ़िगत अथवा राजनीतिजन्य अधविश्वासों और भ्रांतियां से जकडे हुए जन जीवन को केवल अपने देश से प्रेम करनेवाले बुद्धिजीवी ही रास्ता दिखा सकते हैं। पर यह काम बुद्धिजीवी तभी कर सकेंगे जब एक ओर उन्हें अपने देश की परंपरागत सृजनात्मक शक्तियां पर अभिमान हो और दूसरी ओर आज के युग की आवश्यकताओं की पकड भी। नागर चाहते हैं कि 'मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख दुःख मानना चाहिए। विचारो में भेद हो सकता है विचारो के भेद से स्वस्थ द्वद्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर बात यह है कि सुख-दुःख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सबध बना रहे—जैसे बूंद से बूंद जुडी रहती है—लहरा से लहरें। लहरो से समुद्र बनता है—इस तरह बूंद में समुद्र समाया है।

इसमें कोई सदेह नही कि विभिन्न विचारधाराओं के प्रबल सघर्ष के इस युग में यह उपलब्धि एक सवेदनशील लेखक और बुद्धिजीवी के लिए महत्त्वपूर्ण

है, बल्कि एक प्रकार से रास्ता दिखा सकने में निरन्तर सहायक हो सकती है। किन्तु साथ ही यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि इस उपन्यास में यह उपलब्धि बड़ी सरल जान पड़ती है। जब तक वह जीवन के तीव्र संघर्ष और घात प्रतिघात से उत्पन्न न हो तब तक वह निरे शब्दजाल से अधिक कुछ नहीं। इस बात का बड़ा भारी भय है कि वह भी एक अन्य विचारधारा बन कर रह जाय जिसके पीछे सदाशयता हो तो हो जीवन की अनुभूति नहीं।

यह बात इसलिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'बूंद और समुद्र' उपन्यास अनुभूति और कलात्मकता के स्तर पर इस उपलब्धि की ओर ले जाता हुआ नहीं जान पड़ता। लेखक उसे जीवन के संघर्ष में से उद्भूत दिखाने की बजाय अंत में 'यह चाहिए' 'वह चाहिए' कहने को बाध्य होता है। समर्थ रचना में ऐसे चाहिए-वादी सिद्धांत-वाक्य आवश्यक ही नहीं रह जाते। इसका मूल कारण जैसा कि पहले भी कहा गया है, यह है कि समूचे उपन्यास में जैसी सहानुभूति और आत्मीयता लेखक ने पिछले युग के जीवन के साथ अनुभव की है और अभिव्यक्त की है आज के जीवन संघर्ष के विषय में उसकी तीव्रता, उसकी पीड़ा और उसकी व्यग्रता के विषय में वह नहीं कर सका। पुस्तक के अन्त में किन्हीं पात्रों के बारे में यह कह देना कि वे 'एक लगन लेकर अपने छोटे-से क्षेत्र में मानवता का दर्शन करने के लिए कमरत हो गए' पर्याप्त नहीं है। अन्य श्रेष्ठ आदर्शों की भाँति यह उपलब्धि भी यदि ऊपर से आरोपित है और अनुभूतिजन्य नहीं है तो वह तो केवल थोथे और खोखले आत्मसंतोष को ही जन्म दे सकती है। सज्जन और वनकन्या बहुत हद तक इसी थोथे आत्मसंतोष के प्रतीक लगते हैं। वे आधुनिक जीवन की विषमता का सामना ही नहीं करते उनका संघर्ष आज के व्यक्ति का संघर्ष नहीं है, न वैयक्तिक स्तर पर न सामूहिक स्तर पर। आदर्शों और भौतिक परिस्थितियों के बीच मान्यताओं और आचरण के बीच, युद्ध और शान्ति के बीच, सृष्टि और संहार के बीच जैसा भीषण संघर्ष आज सामाजिक जीवन में और व्यक्ति-व्यक्ति के मन में छिड़ा हुआ है उसका आभास भी सज्जन और वनकन्या की चेतना में नहीं है। बल्कि राम जी बाबा के रूप में जिस समाधान की ओर लेखक इंगित करता जान पड़ता है वह चाहे जितना रोचक हो, प्रेमचन्द के 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' से केवल एक-दो कदम से अधिक आगे नहीं है। निस्सन्देह यह आवश्यक नहीं है कि लेखक किसी भी समस्या का समाधान प्रस्तुत करे ही। पर 'बूंद और समुद्र' तो आग्रहपूर्वक जीवन की मूलभूत समस्याएं उठाने और उनके समाधान खोजने की बात करता है। ऐसी स्थिति में उनका कैसा निर्वहण उपन्यास में हुआ है इसका मूल्यांकन अनिवार्य हो जाता है।

ऐसे मूल्यांकन की कसौटी पर 'बूंद और समुद्र' बहुत खरा नहीं उतरता।

वास्तव में 'बूंद और समुद्र' उपन्यास परोक्ष रूप से आज के बुद्धिजीवी के इस तीव्र मानसिक संकट की एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। वह आज के जीवन की कृत्रिमता, पाखण्ड और स्वार्थपरता से अपनी संवेदनशीलता के कारण चौंकता है और उनसे बचने का यत्न करता है, किन्तु साधारणतः उसके जीवन में परम्परागत सृजनात्मक शक्तियों और आधुनिक जीवन की संभावनाओं तथा समस्याओं का ऐसा बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक समन्वय नहीं है कि किसी निश्चित मार्ग की उपलब्धि कर सके। इसलिए उसकी महानुभूति एक ओर जाती है और बौद्धिक मान्यताएं दूसरी ओर। यदि किसी प्रकार अपनी बौद्धिक मान्यताओं को वह किसी आदर्श की ओर उन्मुख भी कर पाता है तो अन्त में उसे यही पता चलता है कि वह प्रेरणा अवास्तविक और खोखली थी। अमृतलाल नागर भी इस उपन्यास में इस विषम स्थिति से उबर नहीं पाये हैं, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि इस विषय में उनकी खोज और उनकी ईमानदारी से किसी को इन्कार नहीं हो सकता।

'बूंद और समुद्र' के कथ्य का यह अन्तर्विरोध उसके रूपाकार और गठन में भी मौजूद है। अमृतलाल नागर हिन्दी के बड़े क्षमतावान शिल्पी हैं। उनके कथा कहने के ढंग में ऐसा अनूठापन और आकर्षण है कि उनकी किसी भी रचना को एक बार शुरू करने पर छोड़ना कठिन होता है। विशेषकर इस रचना में उनका परम्परागत जीवन का अध्ययन और अवलोकन इतना सूक्ष्म और गहरा है और उसको मूर्त रूप देने की क्षमता ऐसे अपूर्व रूप में प्रकट हुई है कि हिन्दी में उनका सानी नहीं। वे बड़े सहज भाव से एक के बाद एक ऐसे चित्र उभारते चले जाते हैं जिनकी आत्मीयता और सहानुभूति से कोई अछूता नहीं रह सकता। किसी क्षेत्र की बोली की पुनःसृष्टि में भी वे अद्वितीय हैं और किसी भी प्रसंग को अपनी भाषा और शैली के चमत्कार से स्मरणीय बना देते। पर लगता है कि 'बूंद और समुद्र' में यह सहजता और क्षमता ही उनकी कठिनाई और सीमा बन गई है। वे किसी भी प्रसंग को उठा कर उसके वर्णन के रस में स्वयं इतने डूब जाते हैं कि संपूर्ण उपन्यास के संदर्भ में उसकी स्थिति और आनुपातिक सार्थकता का उन्हें ध्यान नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक छोटे से छोटा वर्णन भी स्वतन्त्र रूप से अत्यन्त रोचक और चमत्कारपूर्ण हो उठता है और समग्र रचना की अन्विति को तोड़ देता है। सज्जन-वनकन्या का वृन्दावन-बरसाना यात्रा, राजा द्वारिकादास का जलसा, महिला सेवा मंडल का भंडाफोड़, ताई द्वारा राधाकृष्ण का विवाह, चित्रों की प्रदर्शनी आदि ऐसे अनगिनती स्थल हैं जहाँ रोचकता और वर्णन की विशदता के लिए पूरी रचना के समन्वित प्रभाव की बलि चढ़ा दी गई है।

ऐसे सब प्रसग अपने आप म स्वतत्र रेखा चित्र जैसे हो जात हैं। फलस्वरूप पूरी रचना के गठन मे अनुपात और आतरिक सम्बन्ध की शिथिलता बेहद खलती है। विभिन्न कथा सूत्रो के बीच, तथा उनके अन्तगत उप प्रसगो, विवरणो और वणनो के बीच कलात्मक सौंदर्यात्मक सतुलन और सयम नही रह पाया है। लेखक इतनी मधुरता की सृष्टि करता है कि वह कडवी लगने लगती है। साथ ही नागर जी के इस ससार म सरस हरियाली के पास ही बीच-बीच म उजाड बजर प्रदेशो की भी कमी नही। 'बूद और समुद्र' के सबसे बोझिल और अनावश्यक अश उसके लम्बे चौडे वादविवाद अथवा आत्म विश्लेषणात्मक स्थल ही हैं। विशेष रूप से जहाँ लेखक ने विभिन्न विषयो स सम्बधित अपनी जानकारी को किसी पात्र के माध्यम से कहने का यत्न किया है, वहाँ वह बहुत ही नीरस और अरोचक हो गया है। 'बूद और समुद्र' ऐसा उपन्यास है जो सक्षिप्त होकर निश्चय ही अधिक तीव्र और प्रखर हो सकता है।

यह असमता और अन्विति का अभाव उसमे शैली के स्तर पर भी है। लेखक की मुख्य पद्धति यथार्थवादी है पर बीच बीच म वह अतिशयोक्ति और अयथार्थवादी युक्तियो का सहारा लेता है जिससे विसगति पदा होती है। सयत यथार्थवाद के साथ कार्टून-जसी पद्धति सदा मेल नही खाती। नागर प्रथम कोटि के किस्सागो शैली के लेखक है और 'बूद और समुद्र' के अश के एक लिए उनकी यह शैली बहुत ही उपयुक्त भी है। कही-कही उनके वणन 'चकल्लस' वाली की याद दिलाते हैं और बडे चमत्कारपूण भी लगते हैं। पर सपूण उपन्यास म शलीगत सामजस्य नहीं है। कही वे ऐसे वणन करते हैं जसे घटनाएं इसी समय सामने घट रही हो कही इस प्रकार जस अतीत मे घट चुकी हो कही किस्सागो के ढग से, कही मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक ढग से। पूरे उपन्यास के सम्बन्ध मे इसमे विषयानुकूल विविधता के बजाय स्वर का विवादीपन और वैषम्य, प्रभाव का ऊबड़खाबडपन और वातावरण का टूटना-बनना ही अधिक उभरता है।

निस्सदेह यह सपूण विश्लेषण इस परिप्रेक्ष्य म ही है कि 'बूद और समुद्र' युद्धोत्तर हिन्दी उपन्यास की एक महत्त्वपूण और सशक्त कृति है जो अपनी अपूव उपलब्धि के कारण ही मूल्याकन के स्तर को अधिक ऊचा और कठोर रखने की माँग करती है। उसमे निश्चित रूप से इस दौर की सवश्रेष्ठ कथाकृति बनने की पूरी सम्भावना थी और अमृतलाल नागर के पास उस दायित्व को निभाने योग्य पर्याप्त सामर्थ्य भी है। पर इस बात से गहरी निराशा ही होती है कि यह उपन्यास उस स्तर तक नही पहुच सका। फिर भी, अपनी समस्त दुबलताओ के बावजूद वह पिछले दो दशको के सबमे महत्त्वपूण उपन्यासो म गिना जाने योग्य है, इसम कोई सदेह नही।

डॉ० रामदरश मिश्र

११

मैला आँचल : ग्रामाचल की मुखरित आत्मा

यह उपन्यास 'आंचलिक' नाम से अभिहित किया गया है। क्या इस उपन्यास को आंचलिक विशेषण यों ही दे दिया गया है या इसके वस्तु-संगठन और जीवन ग्रहण की दृष्टियों में कुछ ऐसी नवीनता है जिसे व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार को यह विशेषण जोड़ना पड़ा है। मैं समझता हूँ कि 'मैला आंचल' से प्रारंभ होने वाले हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों ने उपन्यास को एक नयी विधा प्रदान की है। वस्तुग्रहण, वस्तुसंगठन, टेकनीक भाषा सभी क्षेत्रों में एक नया उन्मेष पूरा है। आंचलिक उपन्यास का एक विशिष्ट अर्थ है। आंचलिकता का अर्थ बहुत-से लोगों ने स्थानीय रंगत से लिया है किन्तु यह भ्रम है। आंचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। जैसे नयी कविता ने तीव्रता से, सच्चाई से भोगे हुए, अनुभव की भट्ठी में तपे हुए पलों को व्यंजित करने में ही कविता की सुन्दरता देखी, वैसे ही उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिक उपन्यासों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट के पीछे न दौड़ कर अनुभव की सीमा में आने वाले अंचल विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया। आंचलिक उपन्यासकार जनपद विशेष के बीच जिया होता है या कम-से-कम समीपी द्रष्टा होता है। वह विश्वास के साथ वहां के पात्रों, वहाँ की समस्याओं, वहां के सम्बन्धों, वहां के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रूपों परम्पराओं और प्रगतियों को अंकित कर सकता है। आंचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी भू भाग की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है। इस संदर्भ में एक आक्षेप भी किया गया है—वह यह कि आंचलिक उपन्यासकार को युग के जटिल जीवन बोध का

रिचय नहीं होना अत वह नास्टल्जिया का शिकार हो कर मोहक अतीत की ओर भागता है या ऐसे भू भाग के जीवन की रंगीनियों की ओर भागता है जो पिछड़ा हुआ है, जो आधुनिक बोध से कटा हुआ सरल-तरल जीवन बिता रहा है। यह आक्षेप अपने आप म थोथा है क्योंकि यह खतरा तो किसी भी प्रकार के उपन्यास मे हो सकता है। आंचलिक उपन्यासों में काल की दृष्टि से दो श्रेणियाँ हो सकती हैं—एक तो वे हैं जो अतीतकालीन जीवन को चुनते हैं लेकिन उस अतीतकालीन जीवन को मोहक रूप म प्रस्तुत कर देना उनका लक्ष्य नहीं होता वरन् वे उसके भीतर स कुछ मूल्यों को उभारते हैं जो उनकी दृष्टि मे जीवन की शक्ति और सौन्दय होते हैं साथ ही साथ वे अचल विशेष के सघष सौन्दय की मूकता को स्वर देते हैं इस प्रकार अचल विशेष अपनी समस्त मोहकता और कुरूपता शक्ति और सौन्दय क साथ सजीव हो उठता है। विभूतिभूषण बनर्जी का आरण्यक इसी प्रकार का आंचलिक उपन्यास है। दूसरी श्रेणी के उपन्यास वे हैं जो अचल विशेष के समसामयिक जीवन को ग्रहण करते हैं। वे वतमान युग मे विकसित अचल विशेष के जीवन-सम्बन्धों, सघर्ष मूल्यों प्रश्नों और अभावों आदि की सूक्ष्म रेखाओं मे उसकी समग्र आधुनिक मूर्ति का कल्पन करते हैं। मैला आँचल इसी प्रकार का आंचलिक उपन्यास है। अत कुछ लोगो का यह आक्षेप कि आंचलिक उपन्यास लिखना मानो आधुनिक बोध से भाग कर नास्टेल्जिया का शिकार होना है अनिवाय रूप मे सत्य नहीं है।

'मैला आँचल' पूर्णिया जिले के एक पिछड़े हुए गाँव मेरीगंज की स्वतन्त्रता के पूव के दो तीन वर्षों की मैली ज़िन्दगी की सारी कशमकश का जीवित चित्र है। हिन्दी म पहली बार किसी अचल विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता सीमा विवशता और सभावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता से रूप दिया गया। वस मैला आंचल से पहले नागार्जुन के कई उपन्यास आ चुके थे जिन्हे आंचलिक कहा जाता है लेकिन नागार्जुन के उपन्यासो म एक ही साथ अचल जीवन की समग्रता और संश्लिष्टता लक्षित नहीं होती। उनम जीवन के अनेक अतर्विरोधी सूत्रों की जटिल बुनावट नहीं है। ये उपन्यास अचल विशेष स सम्बद्ध अवश्य हैं लेकिन वे एक तो साम्य वादी दृष्टि से प्रेरित होकर कुछ पिछड़े हुए पात्रों के प्रति सहानुभूतिशील होकर सीधे-सीधे वर्ग-सघर्ष को चित्रित करते हैं दूसरे उनका वस्तुसगठन भी सीधे ढंग का होता है क्योंकि वे अचल को नायक न मानकर किसी पात्र को नायक मान कर चलते हैं और पहले के उपन्यासों की तरह उसी के इर्दगिर्द

अन्य पात्रो और घटनाओ को बुनते हैं। इसलिए नागार्जुन के उपन्यासो मे बिखराव का प्रश्न कभी उठा ही नही, जबकि 'मैला आँचल' और उसके समान अन्य उपन्यासो पर बिखराव का आक्षेप लगाया गया है।

'मैला आँचल' एक पिछडे हुए गाव की कथा है 'इसमे फूल भी हैं, शूल भी है धूल भी है गुलाल भी, कीचड भी है, चदन भी, सुदरता है, कुरूपता भी'—लेखक किसी से भी दामन बचाकर निकल नही पाया है। लेखक की इस विज्ञप्ति से ही प्रतीत होता है कि वह गाव को समग्र और यथार्थवादी दृष्टि से देख रहा है—वह न तो गाव को सीधे सादे जीवन का आदर्श मान कर चलता है और न कुछ वर्गों की हिमायत करने के लिए उसे असतुलित टुकडो म बाट कर देखता है। अपनी समस्त कटुता और मृदुता और नये सम्बन्धो के साथ विकसित जो गाव है, अनेक जटिल सम्बन्ध सूत्रो से जकडा जो गाव है, उसे वह अखड भाव से देखता है। राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति सभी इस जीवन को अपनी अपनी सुदर असुदर रेखाओ से काटती हुई उसे नया रूप दे रही है। कहा जा सकता है कि रेणु ने 'मैला आचल' मे अचल विशेष की कथा ही नहीं कही है बल्कि अपनी सशक्त व्यग्य शैली से कथा को इस प्रकार नियोजित किया है कि समस्त अचल सजीव होने के साथ साथ जीवन के सौदर्य-असौदर्य सद् असद की ओर बडी ही सूक्ष्मता स सकेत करता है और इस प्रकार यह कथा अचल के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनतिक परिवेश म तथ्य आयोजन न रहकर जीवत मानव-सवेदनो मूल्य सघर्षों और अतर्विरोधग्रस्त वग चेतनाओ की कहानी बन जाती है।

कुछ पिछडे हुए गाव ऐसे हो सकते थे, और अब भी हैं, जहा इतनी राजनीतिक चेतना या सघप नही लक्षित होता। मुझे स्वय अपने गाव म (जो गोरखपुर का एक पिछडा हुआ गाव है) राजनीतिक दलो की चेतना का ऐसा सघप नही दिखाई पडा। इसलिए मैं अपने दोनो आचलिक उपन्यासो मे राजनीतिक दलो के सघप को बहुत दूर तक नही खीच सका हू किन्तु यह और बात है। हो सकता है मेरीगज मे यह सघप रहा ही हो और न भी रहा हो तो उसका होना असम्भव नहीं और लेखक को छूट है कि वह अपने अभिप्रेत को मूर्तित करने के लिए सम्भावना के भीतर के यथार्थ को ग्रहण करे। इस तरह वह एक गाव की कहानी के माध्यम से तत्कालीन चेतना के सघर्ष को अकित कर सकता है। रेणु ने एक गाव की मर्यादा के भीतर समेट कर तत्कालीन राजनीतिक दलो के आपसी टकराव और प्रतिवादिताओ को बडी मार्मिकता म चित्रित किया है। व्यग्य की शक्ति ने एक ओर लेखक को किसी

दल का पथधर और कटु होने से बचा लिया है दूसरी ओर प्रभाव में बड़ी तीव्रता भर दी है। लेखक की व्यंग्य-शक्ति प्राचीन और नवीन के संघर्षों प्राचीन प्राचीन के संघर्षों नवीन नवीन के संघर्षों राजनीति धर्म और समाज की नयी-पुरानी मर्यादाओं के आपसी संघर्षों तथा इन सबके बीच उलझते-सुलझते तीव्र अंतर्विरोधों को बड़ी कुशलता से चित्रित करती चलती है। लेखक की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति अनेक तथ्यों का मर्यादित करती हुई भी उनसे परे किसी सूक्ष्म सत्य की ओर संकेत करती रहती है। इस संकेत को न पकड़ पाने वाला 'मैला आँचल' के स्थूल वस्तुगठन और चरित्र भंगिमा का रस लेकर ही तृप्त हो जाएगा जो कि इस उपन्यास का चरम दान नहीं है। गुजराती कवि और विवेचक श्री उमाशंकर जोशी ने अपने एक लेख में 'मैला आँचल' के बारे में लिखते हुए कहा है— कथा का संघटन होना है कटाक्ष (irony) के द्वारा। मैला आँचल' को आकार प्रदान करने में और (बल्कि इसलिए) सर्जनात्मक भाषा पाने में श्री रेणु को यदि कुछ सफलता मिली है तो उसका कारण है यह कटाक्ष। यही कटाक्ष कथा को समकालीन घटनाओं का दस्तावेज बनने से अथवा समाजशास्त्रीय आलेख बनने से बचा लेता है और कलाकृति बनने की ओर उसे ले जाता है।

लेखक की व्यंग्य-वृत्ति पात्रों और वस्तुओं के अंतर्विरोधों या असंगतियों को बड़ी बारीकी से चीरती चली जाती है किन्तु वह क्रूर नहीं होती वह सदैव मानवीय तरलता से प्रेरित रहती है। क्रूर अमानवीय वृत्तियों के अंतर्विरोधों या असुंदरताओं को चीरते समय लेखक की व्यंग्यवृत्ति सत्य नहीं होती—जैसे नागा बाबा के क्रूर कर्म के प्रतिरोध में वातावरण का दल उसे मारता है और नागा भागता है तो नागा के मार खाने के प्रति न तो लेखक सदय होता है और न पाठक लेकिन ऐसे पात्र मैला आँचल में नहीं के बराबर हैं जो अपनी अदम्य क्रूरता या कोमलता के कारण लेखक की केवल निर्ममता या केवल ममता पा सके हों। सारे के सारे पात्र गतिशील परिस्थितियों में गिरते-पड़ते ममता पा सके हों। सारे के सारे पात्र गतिशील परिस्थितियों में बन्दी होते रहते हैं और लेखक जब लेखक की यथार्थवादी दृष्टि के कमरे में बन्दी होते रहते हैं और लेखक जब अपनी अंतर्निहित ममता के जल में धोकर उनके चित्र निकालता है तो ये पात्र अपने आप कहीं हमें क्रुद्ध करते हैं कहीं द्रवित करते हैं परिस्थितियों-जन्य उनकी विविध छवियाँ एक ओर यथार्थवाद का निर्वाह करती हैं दूसरी ओर गतिशील होने के कारण हम उनके प्रति पूर्वग्रहपूर्ण या एक विशेष धारणाबद्ध होने से बचा लेती हैं। मैला आँचल में मानवीय छवि की यह लीला आद्यो पात व्याप्त है। यहाँ तक कि 'मेरीगंज' का भूतपूर्व नीलवर मार्टिन, जिसके

किसी किसान के मुख से मेरीगज गाव का पुराना नाम निकल जाने से उसे गिन गिन कर पचास कोडे लगाये थे, अपनी ही परिस्थितियो की लपेट मे आकर दयनीय बन जाता है, वह पागला सा भटकता है और अपनी सम्पत्ति का ध्वमावशेष छोड कर मर जाता है। इसी प्रकार रामखेलावन बालदेव लछिमी, जोतिपी काका महथ सेवादास, कालीचरन तहसीलदार रामकिरपाल सिंह आदि सभी पात्र बहुत ही मानवीय रूप म आये है। लेखक न किसी के साथ अयाय नही किया है अपनी ओर से वह किसी की खिल्ली भी नही उडाता बल्कि उसकी व्यग्य विधायिनी शक्ति ऐसी परिस्थितियो का सयोजन करती है कि पात्र या प्रसग या धारणाए या मयादाए अपनी विसगतियो मे उपहासास्पद हो उठती है और उपहासास्पद होकर भी अपनी अनिवाय विवशताओ की सीमा मे हमे हँसने के साथ द्रवित भी करती है अपने से विरक्त नही अनुरक्त करती हैं। यही रेणु की एक महत्त्वपूण विशेषता है और 'मैला आचल' के सौन्दय का एक विशिष्ट रहस्य। बालदेव हो, चाहे काली चरन चाहे लछिमी चाहे रामखेलावन, चाहे रामदास चाहे और पात्र—सभी इसी प्रकार के परिस्थितिगत और स्वभावजन्य सघष तथा मानवीय विवशता पूण अर्तावरोध लेकर जीत हैं और इसीलिए 'मैला आंचल' एक ओर गाव के जीवन का बडा ही यथाथ स्वरूप उदघाटित करता है तथा दूसरी ओर गाव के प्रति एक अभूतपूव ममता उभारता है।

वस्तु सगठन का दृष्टि से यह उपन्यास अब तक के उपन्यासो से थोडा भिन्न है। यह भिन्नता मला आंचल की या अन्य सश्लिष्ट आचलिक उपन्यासा की अनिवायता है। कहा जाता है कि वस्तु सगठन की दृष्टि से मैला आंचल और कुछ अन्य आचलिक उपन्यासो म बिखराव है यानी उनम अनेक बिखरी हुई घटनाए और अनेक बिखरे हुए पात्र इस तरह एक दूसरे के विकास म अपरिहाय रूप से योग दिए बिना आते हैं और अपनी अपनी जगह पर स्थित हो जाते है कि उपन्यास एक सूत्र म सघटित नही हो पाते। वास्तव मे ऐसी आपत्ति इसलिए पदा होती है क्योंकि हम आचलिक उपन्यासा के अलग स्वरूप को परख नही पाते। आचलिक उपन्यास न तो घटना प्रधान उपन्यासो की तरह कुछ खास पात्रो के जीवन से सम्बद्ध घटनाओ और समस्याओ को लेकर वेगवती धारा की तरह नयी-नयी भूमिया को पार करता हुआ आगे बढता है और न वह मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की तरह कुछ गिने चुने पात्रा के मन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इन दोनो अवस्थाओ म बिखराव का कोई प्रश्न ही नही उठता, किन्तु आचलिक उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय म जीते हुए अचल के

व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करता। इस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त दोनो प्रकार के उपन्यासो का शिल्प कौशल अपर्याप्त है। अचल के समग्र जटिल जीवन चित्र को अकित करने के लिए लेखक कही मोटी रेखाए खीचता है कही पतली, कही अवकाशो को भरने के लिए दो चार बिन्दुओ को भाड देता है। अनेक पर्वो उत्सवो, विश्वासो व्यथा के अवसरो, गीतो सघर्षो प्रकृति के रगो, पुराने नये जीवन मूल्यो की उलभी पर्तों आदि स लिपटा हुआ अचल जीवन अभिव्यक्ति के एक नये माध्यम की अपेक्षा करता है। अत आचलिक उपन्यासकार एक दिशा म बहने के स्थान पर एक ही साथ पूरे अचल की चतुर्मुख यात्रा करना चाहता है और उन उपादानो को यहाँ वहाँ से चुनता है जो मिल कर अचल की समग्रता का निर्माण करते हैं। ये उपादान वास्तव म आपस म बिखरे नही होते इनम एक अत सूत्रता होती है। ये अपना अलग अलग पूरा अस्तित्व रखते हुए भी अचल जीवन के उस पक्ष क चितेरे होते हैं जो अन्य से छूट गया है। ये उन अन्यो स जुड कर व्यापक जीवन की एक कडी बन जाते हैं। कहना न होगा कि हिन्दी आचलिक उपन्यासो को कथा-सघटन का यह नया रूप मैला आचल' ने ही दिया है।

मैला आँचल म तमाम घटनाए आती हैं, तमाम प्रसग आते है तमाम पात्र आते है इतने कि याद नही रहते। य सीधे सीधे नही आते आपस म उलझे हुए आते है, एक दूसरे को काटते आते हैं इस प्रकार प्रत्येक सग कुछ चुनी हुई घटनाओ या चरित्र विशेषताओ की सीधी रेखाओ से खिचता हुआ नही आता बल्कि वह अनेक परस्पर अनुस्यूत जटिल और आडी तिरछी रेखाओ से अकित होता हुआ उभरता है। इस तरह उपन्यासकार एक ही साथ अनेक परस्पर लिपटी तहो अनेक गुथे हुए प्रसगो अनेक सश्लिष्ट मूल्यो और बोधो तथा अत विरोधो को सूक्ष्मता मार्मिकता एव व्यग्यात्मकता स उभारने म समर्थ होता है। लेखक को अपनी ओर से कुछ नही कहना पडता, प्रसगो परिस्थितियो और मनस्थितियो की नाटकीय पारस्परिकता ही सारी विद्रूपता सुन्दरता और जटिलता को ध्वनित करती चलती है। रेणु की यह शैली हिन्दी उपन्यासो के क्षेत्र मे नयी शैली है और जहा अनेक अतर्विरोधो, जटिल बोधो बनते बिगडते मूल्यो, जीवन की सक्रातियो स ग्रस्त अचल जीवन को मूर्तित करना उद्देश्य हो वहा इस कार की शैली का अन्वेषण उपन्यास के लिए एक अनिवार्यता और उपलब्धि । यदि रेणु न अलग अलग अध्यायो म अलग अलग पात्रो की कथा कही होती र अलग अलग घटनाओ को उभारा होता तो मैला आँचल को यह आतरिकता र सश्लिष्टता नही प्राप्त हुई होती। उदाहरण के लिए पहला ही अध्याय लीजिए।

ग्रम्पताल की भूमि की जाच पन्ताल करने क लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ग्रादमी ग्रान है तो कितनी चीजें एक-दूमरे को काटती ग्रापस म बुन जाती हैं—जनता का भय गाव क ग्रनक नेताग्रो के चरित्रो का सकेत उनका पारस्परिक विराध बालदेव के प्रति लोगो के बदलते भाव ग्रादि ग्रनक वातें ग्रापस म लिपटी हुई उभर जाती हैं।

मैंना ग्राँचन की यह शक्ति प्रकारातर स उसकी सीमा भी बन जाती है। वस्तुसघटन का यह ढग एसा है कि कोई भी प्रसग घटना या पात्र पाठक क सामन देर तक नही टहरता—चित्रो पर चित्र ग्राने हैं चले जाते हैं तमाम चित्रो की रेखाए ग्रापस म उलझ कर नये चित्र बनाती हैं लेकिन इस त्वरा मे कोई भी चित्र हमारे मन म गहरी लकीर नही बना पाता। ग्रलग ग्रलग ग्रध्यायो म कुछ विशेष पात्रो ग्रौर घटनाग्रो को प्रमुखता देकर बड इतमिनान से उन्ह उभारते चलत रहने का परिणाम यह होता था कि वे पाठको के चित्त पर ग्रपने प्रभाव की गहरी लकीरें खीचते चलते थ किन्तु मला ग्राचल म किसी को एक ही समय म बहुत देर तक ठहरने का मौका ही नही मिलता—छाया चित्र उडते रहत हैं। इस शैली म क्लासिक उपयास नही लिखा जा सकता। मैंला ग्राँचल गोदान की तरह किसी क्लासिक पात्र को नही दे सका है इसके पात्र मन को ग्रात्मीयता म सराबोर कर देते हैं लकिन कोई होरी या धनिया की भाति क्लासिक होने की शक्ति नहीं प्राप्त कर सका है। बावनदास मे इस शक्ति के सकेत मिलते हैं। किसी पात्र के क्लासिक न बन पाने का कारण यह भी है कि लखक की दृष्टि म कुछ विशिष्ट पात्र महत्त्व के नही हैं महत्त्व का है ग्रचल का व्यक्तित्व जिसे मूर्तित करने के लिए ही इन सारे पात्रो का नियोजन हुग्रा है। मैंला ग्राचल म ऐस भी पात्र हैं जो ग्रारम्भ से ग्रत तक चलत हैं ग्रौर रेखाए बनात हैं कुछ एसे भी हैं जो दो एक ग्रवसरो पर ग्राते हैं ग्रौर प्रसग विशेष को ग्रपने लघु ग्रस्तित्व से सार्थक बना कर विलीन हो जाते हैं ये छोटे छोटे बिन्दु हैं। चित्र बनाने क लिए सबका ग्रपना ग्रपना महत्त्व है। कोई किसी क लिए नहीं है सभी ग्रचल के लिए हैं ग्रत किसी को विशेष महत्त्व दकर नायक बनाना या प्रमुख पात्र बनाना लेखक का उद्देश्य नहा है सभी ग्रपनी ग्रपनी विशेषताग्रो को लिए हुए ग्रचल के व्यक्तित्व की व्याख्या हैं। किन्तु व प्रतीक पात्र नहीं हैं व वास्तविक ग्रौर उष्मामय जीवन जीने वाले सजीव ग्रौर जीवन्त व्यक्ति हैं।

डाक्टर मेरीगज म नयी रोशनी क ग्रान का माग बनता है। कितनी विडबना है कि उस गाँव का नाम एक ग्रग्रज नीलवर ने बहुत पहले मेरीगज रख दिया था बहुत ही ग्राधुनिक-सा नाम पश्चिमी रग का नाम। लेकिन

पश्चिम की या आधुनिकता की कोई स्वस्थ किरण उस गाँव को अब तक छ नहीं सकी है, गाँव फटी पुरानी जिन्दगी जीता हुआ अपने ही नाम का उपहास कर रहा है। लेकिन अस्पताल बनने के प्रारभ से ही गाँव म एक नयी हलचल पैदा हो जाती है और डाक्टर आता है यहा वैज्ञानिक शोध करने, यहाँ की बीमारियो का निदान ढूढने। मगर डाक्टर यहाँ आकर डाक्टर की सी, वैज्ञानिक की-सी अनासक्ति नहा रख पाता वह धीरे धीरे वहाँ की जिन्दगी के रस मे घुलने लगता है। वहाँ की जिन्दगी उसे बहुत प्रिय लगती है। वहाँ की जिन्दगी की प्रियता का प्रतीक है कमली—और मौसी और गनेस और । डाक्टर की जिन्दगी का एक नया अध्याय शुरू हुआ है। उसने प्रेम प्यार और स्नेह को "बायोलोजी" के सिद्धान्तो से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी। वह हम कर कहा करता—'दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर म हम नहा मालूम। अब वह यह मानने को तैयार है कि आदमी के दिल होता है जिसम दद होता है उस दद को मिटा दो आदमी जानवर हो जाएगा। ' वह वहाँ की जनता के दु ख दद से अनासक्त नही रह पाता अपने को खपा कर उनकी सेवा करता है। वहाँ के लोगो की जिन्दगी के असुन्दर और क्रूर पक्ष उभरते है उसे सालते हैं किन्तु वह इसीलिए वहा की जमीन से और भी लिपटता है क्योंकि इस सारी असुन्दरता और क्रूरता के मूल म कोई रोग दिखाई पडता है। वह उन कीटाणुओ की खोज म है जो सारी जिन्दगी की सुन्दरता को साल रहे है और उसका रिसच पूरा होता है। वह बडा डाक्टर हो गया है (यानी बडी मानवीय सवेदना से युक्त डाक्टर)। उसने रोग की जड पकड ली है गरीबी और जेहालत इस रोग के दो कीटाणु हैं—एनोफिल्म से भी ज्यादा खतरनाक, सण्डफलाई, से भी ज्यादा जहरीले । डाक्टर की यह खोज स्वय लेखक की खोज है उस जीवन को देखने की उसकी अपनी दृष्टि है—पूर्ण मानवीय दृष्टि ममतामयी यथार्थवादी दृष्टि । बडा ही प्रिय पात्र है डाक्टर, और वसी ही कमली है, किन्तु डाक्टर जैसी विशद वह नही है। वह भावुकतापूर्ण प्रिय लडकी है डाक्टर की पत्नी मराठ और उनकी डाक्टर भी। बालदेव, कालीचरन वासुदेव आदि पात्र एक ओर तो गाव की परिधि म उभरने वाली राजनीति के विकृत अवचरे रूपा को उजागर करने वाले पात्र है, दूसरी ओर अपने निजी दु ख दर्दों से स्पदित सजीव व्यक्तित्व भी हैं। शहरों से परिचालित होने वाली परमुखापेक्षी गाव की राजनीति किस प्रकार अविवेकपूर्ण ढग से चलती है और किस प्रकार शहरा मे बठे हुए विभिन्न दलो के राजनीतिक नेता उसका दुरुपयोग करते अपना उल्लू सीधा करते हैं

और मुसीबत के समय इन गाव वालो को पूछते भी नही हैं ये सारी बातें बहुत ही जीवत और सश्लिष्ट ढग से उभरी हैं, लेकिन एक बात निश्चित है कि भले रूप म हो या बुरे रूप म—आज के गाव भी राजनीति से अछूते नही रह सकते। रेणु ने इस सत्य को बडी गहराई से परखा है। इन समस्त राजनीतिक मल्यो के बिखराव और अराजकता के बीच भी लेखक की दृष्टि उसके सुदर पक्ष को अदृष्ट नही छोड देती। बालदेव की परिणति बडी ही निर्जीव और परिपाटीवादी होती है काली वासुदेव आदि अपनी अपनी सीमित परिधि मे घिरे हुए, अपनी अपनी आग लिए हुए डकती और खून के केस से सम्बद्ध करार दिये जाकर खुभा दिये जाते हैं। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की परिणति भी बहुत ही साम्प्रदायिक होती है। इन सारी चीजो के बीच बामन दास गाव की अपूर्व निष्ठा त्याग और ईमानदारी लेकर अपना बलिदान देता है और राजनीति को एक उच्च मूल्य प्रदान करता है लेकिन विडबना या सामाजिक विसगति के परिप्रेक्ष्य स जोडकर लेखक इस घटना को भी एक अजब दद स भर देता है। बामनदास की झोली का फीता चिचरिया पीर को चढाया गया चिथडा मान लिया जाता है और फिर चिथडे ही चिथडे । मौसी का चरित्र भी बहुत ही प्रभावशाली है—सामाजिक विसगति मे अपनी करुणा और त्याग से उभरता हुआ एक प्यारा, पर उपेक्षित व्यक्तित्व। लेखक ने सभी पात्रो को उस अचल की मिट्टी से गढा है, परन्तु उनम उभरने वाली सवेदनाए समस्त मानवता को छूती हैं।

लेखक की ममता समस्त अचल के जीवन के प्रति उसकी सारी कुरूपता और पिछडेपन के बावजूद हम अनुरक्त करती है। उसकी यह मानवीय दृष्टि बहुत ही सुदर है किन्तु उसकी एक सीमा भी है और वह यह कि कभी-कभी वह आवश्यक स्थलो या पात्र प्रसगो मे स्पष्ट या विरक्त होने से बचा कर प्रकारातर से रुढ अभिजात सस्कारो का समथन करती है। ऐसा लगता है कि लेखक के मन म कहीं-न-कहीं आभिजात्य के प्रति मोह है इसीलिए 'मला आंचल म महीन रूप से सारे कुकृत्य करते हुए तहसीलदार साहब के प्रति पाठको को कोई रोष पैदा नही होता और अ त म तो तहसीलदार साहब अपने त्यागपूर्ण व्यवहार से अत्यधिक मोहक बन गये हैं, जबकि गाव के छोटे वर्गों के नेता यातनाओ की आधी म बहते हुए दश्य से ही ओझल हो गए है। इसी प्रकार 'परती परिकथा' म जमीदार जित्तू के माध्यम से गाव की जागृति को स्वर दिया गया है वह अपनी असामान्यता और आभिजात्य म अत्यत आकर्षक बन गया है। यह ठीक है कि स्पष्ट तौर पर वग सघष खडा करना और किसी

श्री देवराज उपाध्याय

१२

रस-सिद्धान्त : सार्वभौम काव्य-सिद्धान्त का अग्रलेख

आज जब हम हिंदी साहित्य में काव्यशास्त्र तथा उसके विकास की प्रगति का पर्यवेक्षण करते हैं तो हमारी दृष्टि डा० नगेन्द्र और 'रस सिद्धान्त' की ओर जाती है। 'रस सिद्धान्त' जैसाकि लेखक ने अपने निवेदन में स्वीकार किया है, उसकी साहित्य साधना की परिणति है और तीस वर्षों में काव्य के मनन और चिन्तन से उसके मन में जो अन्तःसंस्कार बनते रहे हैं उनकी संहृति 'रस सिद्धान्त' में पाई जा सकती है। अतः 'रस सिद्धान्त' पर विचार करते हुए हम पुस्तक पर तो विचार प्रकट करेंगे ही, परन्तु डा० नगेन्द्र पर भी विचार करना अनिवार्य हो जायगा, क्योंकि डा० नगेन्द्र और 'रस सिद्धान्त' दोनों घुल मिलकर इस तरह एक हो गए हैं कि दोनों के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

इसलिए, 'रस सिद्धान्त' को डा० नगेन्द्र से अलग कर देखना कठिन है। यह इसलिए कठिन है कि हमारी दृष्टि अनायास ही आज से ३० वर्ष पहले के काव्यशास्त्रीय अध्ययन की ओर आकर्षित हो जाती है, जो वस्तुतः दयनीय-सी ही थी।

पर आज यह परिस्थिति बदल गई है। संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रायः जितने ग्रंथ हैं उनका अच्छा, विशद, बोधगम्य, विस्तृत अनुवाद उपलब्ध है और यदि थोड़ा भी मेधावी और परिश्रमी अनुसंधाता हो तो वह काव्यशास्त्र सम्बन्धी कठिन नियमों का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस सुविधाजनक और वांछनीय परिस्थिति को सुलभ बनाने में मुख्य प्रेरक की खोज होने लगेगी तो सहसा हमारा संकेत डॉ० नगेन्द्र की ओर होगा—इसमें किसी तरह के सन्देह का अवसर नहीं

है। यहा पर काव्यशास्त्र के उन ग्रथो के नाम गिनाने की आवश्यकता नही जिनका सम्पादन स्वय डा० नगेन्द्र ने किया है ग्रथवा स्वय लिखे हैं ग्रथवा उनकी प्रेरणा से लिखे गए हैं। हिन्दी काव्यशास्त्र तथा आलोचना से थोडा भी सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति उनसे पूर्ण रूप से परिचित है। जिस वक्त हिन्दी मे काव्यशास्त्र के विकास का इतिहास लिखा जाएगा और इतिहासकार राग द्वेष से मुक्त होकर तटस्थ दृष्टिकोण से विचार करने लगेगा, उस वक्त डा० नगेन्द्र की इस महनीय सेवा का भुलाना उसके लिए कठिन होगा। जहा तक मेरा प्रश्न है मुझे तो अनायास वह प्रसग याद आ जाता है जिसमे कुमारिल भट्ट के द्वारा वेदोद्धार की कथा कही जाती है सरस्वती रो रोकर कह रही है कि—

किं करोमि क्व गच्छामि, को वेदानुद्धरिष्यति।
मा रुदीह वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले॥

उसी तरह मेरी कल्पना मे सस्कृत-काव्यशास्त्र का पठन-पाठन, जैसा कि 'रस सिद्धात' के पढने मे मालूम होगा, मम्मट के बाद नही तो पडितराज जगन्नाथ के बाद अवश्य ही एक तरह से रुक ही गया था। उस समय मौलिक चितन का प्रवाह अवरुद्ध सा हो गया था। उस प्रवाह के अवरोध का विनाश अब जाकर हुआ है और मौलिक चितन का मार्ग उद्घाटित हुआ है। दूसरे शब्दो मे वेदो का, मतलब काव्यशास्त्र का उद्धार अब हुआ है हो रहा है और यह उद्धारीकरण की प्रक्रिया कुछ और दिनो तक चलेगी। शुक्लजी ने जरूर इसकी प्रेरणा दी थी और काव्यशास्त्र की समस्याओ पर भी मौलिक रूप से विचार प्रारम्भ किया था। उनकी दृष्टि नीतिवादी थी और वे परम्परा के पालक भी थे परतु इस ओर उनका कार्य केवल अग्रयायी (पायोनियर) का ही रहा। एक तो उनका बहुत सा समय हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर तथा सूर, तुलसी और जायसी के अध्ययन की ओर ही लगा रहा दूसरे जब उनका ध्यान 'रस मीमासा' की ओर गया और वे काव्यशास्त्र की समस्याओ पर गम्भीर चितन मे प्रवृत्त हुए तब वे काल-कवलित हो गए। इसलिए उनका यह कार्य अधूरा सा ही रहा। इस कार्य को अग्रसर डा० नगेन्द्र ने किया है और आज भी उनके हाथो इस महान् अनुष्ठान का सम्पादन हो रहा है।

हिन्दी मे गत २० वर्षों मे साहित्य और काव्यशास्त्र का गम्भीर विवेचन जिस आवेग और उत्साह के साथ हुआ है वह हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए अभूतपूर्व वस्तु है। प्राचीन साहित्यशास्त्र के बारे मे तो विशेष कुछ कहा नही जा सकता क्योकि इतिहास की सारी कडिया हमारे सामने स्पष्ट नही हैं। भरत और दण्डी के बीच मे शताब्दियो का अतर है—इन दोनो के बीच काव्यशास्त्र

की चिंतनधारा किस ओर बढ़ती रही, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। जो कुछ कड़ियाँ हम जोड़ सकते हैं, वह इन पुस्तकों में उल्लिखित बातों के आधार पर किया गया अनुमान मात्र है, भले ही उस अनुमान के लिए हम कुछ आधार मिल जाने दें। भरत के बाद काव्यशास्त्र की चिंताधारा किस ओर प्रवाहित हुई होगी और रस सिद्धांत के विरुद्ध किस तरह की प्रतिक्रिया किस किस रूप में हुई होगी फिर आगे चलकर रस शास्त्र के प्रति काठिन्य किस प्रकार गला होगा और तत्स्थान ध्वनि शास्त्र में किस तरह समन्वय की चेष्टा की गई होगी, इसका स्वच्छ तथा दर्पण की तरह साफ इतिहास यदि आपको देखना हो तो 'रस सिद्धान्त' से अन्यत्र जाने की कोई जरूरत नहीं। शायद कोई ऐसा अन्य साधन भी नहीं है। जिस व्यक्ति ने इस तरह श्रमपूर्वक कौड़ी कौड़ी माया बटोरकर एक नया संसार आपके सामने अपने भरे पूरे रूप में उपस्थित कर दिया हो उसके प्रति किसका हृदय कृतज्ञता से भर नहीं जाएगा?

काव्यशास्त्र एक बहुत ही दुरूह विषय है। तत्त्वों की छानबीन से एक तो स्वयं लेखक की तबीयत ऊब जाती है और दूसरी ओर पाठक भी इस तरह की छुईमुई की दुनिया के मायाजाल में पड़कर ऊब जाता है। इसलिए इस क्षेत्र में सफल साहित्य-श्रम के लिए उन चीजों की जरूरत पड़ती है जिनका मम्मट ने काव्य के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। शक्ति, लोकशास्त्र तथा काव्य के अध्ययन से प्राप्त निपुणता और काव्य शिक्षाभ्यास—ये सब बातें 'रस सिद्धान्त' के प्रणेता में प्रचुर रूप में पाई जाती हैं। परन्तु सबसे ऊपर जो अभीष्ट साधक वस्तु उसमें पाई जाती है वह है बाहर से भिन्न भिन्न सी लगनेवाली उपाधियों की तह में मूल प्रेरणा के रूप में सक्रिय रहनेवाली प्रवृत्ति की पहिचान, अर्थात् अनेकता में एकत्व सूत्र को ढूँढ निकालने की शक्ति और यह कार्य वही कर सकता है जो कवि हृदय हो जिसमें कल्पना करने की शक्ति हो जो टूटी कड़ियों को अपनी कल्पना की तड़प से भर देता हो। यह शक्ति 'रस सिद्धान्त' के लेखक में पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। कहीं से भी पुस्तक उठा लेने पर इसका प्रमाण उपलब्ध हो सकता है। और इसका बहुत कुछ श्रेय लेखक की इसी कल्पना शक्ति को है।

डा० नगेन्द्र ने अपना साहित्यिक जीवन कवि के रूप में आरम्भ किया था और उस क्षेत्र में भी काफी प्रतिभा का परिचय दिया था। बाद में वे मुड़कर आलोचना के क्षेत्र में आए—क्यों आए? इसकी व्याख्या करना या तो ऐतिहासिकों का कार्य होगा या मनोवैज्ञानिकों का और ऐतिहासिक प्रमाण यदि उपलब्ध न हों तो मनोवैज्ञानिक उसके लिए बहुत ही मनोरंजक व विश्वासपूर्ण कारण बतला सकता है। पर फिलहाल मेरा वह विषय नहीं है। इस समय तो इतना

ही कह सकते है कि कविता के क्षेत्र म डा० नगेन्द्र ने जो ट्रेनिंग प्राप्त की, वह बडे मौके पर काम आई और काव्यशास्त्र को बीहड जगला मे से निकालकर एक विकासशील धारा के रूप म उपस्थित करनेवाली शक्ति के रूप म सहायक हुई।

दूसरी जो बात उन्हे इस कठिन साहित्य काय म सफलता प्रदान करने म सहायक हुई है, वह है उनकी स्पष्ट और अभिव्यजक, सजीव और सशक्त भाषा। उन्होंने लिखा तो है काव्यशास्त्र के सिद्धान्ता पर किन्तु जिस भाषा का उन्होंने प्रयोग किया है वह एक वैज्ञानिक की है, जो बहुत ही स्पष्ट और साफ ढग से अपनी बात का प्रतिपादन करता है। उदाहरणार्थ, भरत के रस निष्पत्ति विषयक प्रसिद्ध सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति' म 'सयोग' से क्या अभिप्राय है, यह विवादास्पद रहा है। डा० नगेन्द्र इस पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे विश्वासोत्पादक प्रमाण देंगे, अत म सबका समाहार करते हुए कहेगे— सूत्र बना सयोग=उपचेय उपचायक सम्बन्ध=उत्पाद्य-उत्पादक+गम्य गमक+पोष्य पोषक सम्बध।' ऐसा लगता है कि कोई वैज्ञानिक बोल रहा हो, समीकरण की भाषा म।

डा० नगेन्द्र अभिनवगुप्त के प्रशसक है, परन्तु उनकी सीमाओ का उल्लेख करते हुए उन्हे कहना है कि अभिनव ने शकुक तथा भट्टनायक के सिद्धान्तो के साथ न्याय नही किया, उन्हे अपने रग म इस तरह रग दिया कि उनका वास्तविक रूप ही छिप गया। डा० नगेन्द्र कहते—'श्री शकुक के विवेचन म भी कला सम्बन्धी अनेक मूल्यवान् सकेत हैं परन्तु अभिनव ने भट्टतौत की सहायता से दर्शन के अखाडे म उन्हे एसा पछाडा है कि उनके गुण भी मिट्टी म मिल गए हैं। भट्टनायक के सिद्धान्ता के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वे अत्यन्त पुष्ट, गम्भीर आधार भूमि पर स्थित हैं काव्य चिंतन के विकास म उनका योगदान अभूतपूर्व है, स्वय अभिनव ने उनके आधारभूत सिद्धान्ता को यथावत स्वीकार कर लिया है। फिर भी उन्हें इस बुरी तरह रगडा गया कि एक हजार वष तक भट्टनायक का महत्त्व प्राय नगण्य ही बना रहा।"—यह बहुत ही पारदर्शक, स्पष्ट और निर्मल शैली है। ऐसा लगता है लेखक जरा शास्त्रीय गम्भीरता के उच्च स्तर से उतरकर भूमि पर स्थित पाठको को हाथ बढाकर ऊपर खीच लेने की चेष्टा करता हो ताकि गम्भीर शास्त्रीय बाता को बोधगम्य रूप म मजे म गले के नीचे उतारा जा सके।

कहा जाता है कि संस्कृत पडिता की भाषा थी, जनसाधारण की नही। इस लिए संस्कृत म जो ग्रथ लिखे जाते थे व उच्च कोटि के गम्भीर और चिंतनपूर्ण होते थे और उनका लक्षीभूत पाठक भी उच्च कोटि का विद्वान् होता था सर्वसाधारण नहीं—इसीलिए जहा संस्कृत तत्त्वद विषयो के उच्च-से उच्च कोटि के

ग्रथा का प्रणयन कर सकी, वहा वह कुछ लाख क्या, हजारा तक भी अपने मान का प्रसार नही कर सकी। पता नही, सस्कृत क विरद्ध यह जो लाछन लगाया जाता है वह कहा तक सत्य है। परन्तु इस लाछन के लिए सबसे अधिक प्रमाण यदि मिला होगा तो काव्यशास्त्र के ग्रथो ने ही उसे प्रस्तुत किया होगा। दो एक काव्यशास्त्रियो को छोड कर अभिनव इत्यादि जितने काव्यशास्त्री हुए ह, उनकी शली इतनी निविड वागाडम्बरपूण कठिन और दुरुह है कि कभी कभी त' सामान्य तथ्य भी उलझ जात हैं, गम्भीर तत्त्वा के सुलझन की तो बात ही दू' है। विशेषत, अभिनवगुप्त ता इसके लिए प्रसिद्ध हैं। परन्तु हिन्दी के काव्य शास्त्र का यह उद्धारक इस दोष से बचकर चलना है। वह सूक्ष्म गहन, दा' निक तत्त्वा का भी इस तरह विश्लेपण करता है कि उस सामान्य जिज्ञासा की बुद्धि सहज ही ग्रहण कर लेती ह। इस दृष्टि से मैं इस काव्यशास्त्र के नए उद्धा रक को अभिनवगुप्त का नया अवतार मानता हू, केवल इस रिजर्वेशन' के साथ कि उसम अभिनवगुप्त की शली की निविडता नही है।

मैंने अभी 'रस सिद्धान्त के लेखक को अभिनवगुप्त का नूतन अवतार कहा है। बात कुछ बडी सी और अनुपात हीन सी मालूम पड सकती है और ऐसा लगता है कि अतिपरिचयादवज्ञा वाली वृत्ति इसे ग्रहण करने म बाधक बनगी परन्तु मैंन जानबूझकर यह बात कही है। सम्भव है कि विचारो की मौलिकता के क्षेत्र मे रस सिद्धान्त का लेखक अभिनवगुप्त की प्रतिस्पर्धा न कर सके। हालाकि यह बात भी मैं अतिपरिचयादवज्ञा वाली वृत्ति के लिए 'कन्सेशन' के रूप म कह रहा हू क्योकि डा० नगेन्द्र म मौलिक विचार देने की शक्ति की कमी नही है। परन्तु यदि यह कमी मान भी ली जाए और यह स्वीकार किया जाए कि ये अभिनवगुप्त की समता मौलिकता क क्षेत्र म, सूक्ष्म गहन तात्त्विक विश्लेपण के क्षेत्र मे नहीं कर सकत तो जहा तक प्रसन्नस्मितप्रवाह शली का प्रश्न है, उसमे अभिनवगुप्त भी डा० नगेन्द्र का समता नही कर सकते। इसलिए एक क्षेत्र की कमी दूसरे क्षेत्र की वृद्धि क द्वारा पूरी हो जाती है।

यदि अभिनवगुप्त की बातो को ही प्रमाण माना जाए तो यह स्वीकार करना होगा कि अपने पूववर्ती आचार्यों के द्वारा स्थापित सिद्धान्ता को अच्छी तरह सगति बैठा कर उपस्थित कर देना भी मौलिक सिद्धान्त की स्थापना के ही बराबर है। 'पूवप्रतिष्ठापितयोजनासु मूलप्रतिष्ठाफलमामनन्ति"—मतलब यह कि आख्यान और पुनराख्यान करनवाल गम्भीरचता आचाय भी मौलिक विचा रक का श्रेणी म ही आते हैं। हिन्दी म काव्यशास्त्र पर आज कुछ ग्रथ उपलब्ध हैं परन्तु इस तरह से स्पष्टतापूवक विचारो का प्रतिपादन करनेवाला और वेदो

म लेकर भरत तक एव भरत से लेकर रामचन्द्र शुक्ल तक काव्यशास्त्रीय चिंतन की एक जो धारा चलती रही है उसके स्पष्ट प्रवाह सूत्र को सम्यक रूप से पकडने वाला दूसरा कोई विचारक नही है। डा० नगेन्द्र की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि उन्होंने एक सार्वभौम रस सिद्धांत का अनुसधान किया है और देशी व विदेशी—प्रत्येक सिद्धांत की समीक्षा करते हुए, उसके गुणों की प्रशसा करते हुए रस सिद्धांत को एक सार्वभौम सिद्धांत के रूप म उपस्थित किया है। सभव है कि इस प्रयत्न म उन्हे कही-कही खीचातानी भी करनी पडी हो पर वह खीचातानी भी जिस ढग से की गई है, उसके पीछे भी एक प्रौढ और चिंतनशील मस्तिष्क का आधार है। मैं किसी से 'रस सिद्धांत' के लेखक की तुलना नही करता—तुलना सदा ठीक भी नही होती, परन्तु आज हम जब शकराचार्य या रामानुज के सिद्धांतो का अध्ययन करने लगते हैं या मीमासा शास्त्र की वेद सम्बन्धी उपपत्तियो का अध्ययन करते हैं तो हम उसमे सहमत भले ही न हों, पर जिस शक्ति सावेग आवेग और पाण्डित्य के द्वारा वे अपने सिद्धांतो का प्रतिपादन करते हैं उसे यो ही कहकर टाल देने की हिम्मत नही रहती। इसी तरह की मनोवृत्ति 'रस सिद्धांत' के लेखक का अध्ययन करते समय बनी रहती है। यह लेखक भी कही तो अपनी चिंताधारा की मौलिकता से और कहीं अपनी शैली के द्वारा पाठक को अभिभूत कर लेता है।

वास्तव म हिन्दी म साहित्यशास्त्र के अध्ययन की जो परिस्थिति है उसमे क्रांतिकारी मौलिक विचारधारा का आविर्भाव आज सम्भव भी नही मालूम होता। हमारी सबसे बडी समस्या यह है कि सस्कृत के काव्यशास्त्र के विशाल क्षेत्र म जो सूक्ष्म, गहन विशद तथा सर्वांगपूर्ण विचारधाराए एक तरह से अस्त व्यस्त रूप म उपलब्ध हैं, उनको व्यवस्थित तथा बोधगम्य रूप म पाठको के लिए उपलब्ध कर दिया जाए। जब पाठक इन विचारधाराओ स पूर्ण रूप म परिचित हो जाएगा और इनके मार्म को ठीक तरह म स्वायत्त कर लेगा तब स्वय ही मौलिक चिंतन का द्वार खुलेगा। काव्यशास्त्र के क्षेत्र म मम्मट न यह काय किया था। भरत ने रस विवेचन के व्यावहारिक तथा अभिनव ने रस विवेचन के तात्त्विक तथा दार्शनिक विचारो को सुलझे हुए रूप में पाठकों के लिए उपलब्ध कर दिया था। आज यही काय हमारे लिए आवश्यक है और प्रकृति स्वय हमारे लिए कुछ लेखकों को निमित्त बनाकर जिनम 'रस सिद्धांत' का लेखक भी एक है अपना काय-सम्पादन कर रही है। न जाने क्या, मैंने अपने मन म यह बात स्वीकृत कर ली है कि किसी युग म साहित्य या विज्ञान के क्षेत्र म जो काय होना है वह उस युग के लिए जैविक और मनोवैज्ञानिक माग है जिसकी पूर्ति प्रकृति, या वह

प्रथा का प्रणयन कर सका, वहा वह कुछ लाग्य बया, हजारा तक भी अपने ज्ञान का प्रसार नही कर सकी। पता नही सस्कृत के विरुद्ध यह जो लाछन लगाया जाता है वह कहा तक सत्य है। परन्तु इस लाछन के लिए सबसे अधिक प्रमाण यदि मिला होगा तो काव्यशास्त्र के ग्रथा ने ही उसे प्रस्तुत किया होगा। दो एक काव्यशास्त्रियो को छोड कर अभिनव इत्यादि जितने काव्यशास्त्री हुए हैं, उनकी शैली इतनी निबिड, वागाडम्बरपूर्ण कठिन और दुरूह है कि कभी कभी तो सामान्य तथ्य भी उलझ जाते हैं, गम्भीर तत्त्वो के सुलझने की तो बात ही दूर है। विशेषत, अभिनवगुप्त तो इसके लिए प्रसिद्ध है। परन्तु हिन्दी के काव्यशास्त्र का यह उद्धारक इस दोष से बचकर चलता है। वह सूक्ष्म, गहन, दार्शनिक तत्त्वो का भी इस तरह विश्लेषण करता है कि उसे सामान्य जिज्ञासा की बुद्धि सहज ही ग्रहण कर लेती है। इस दृष्टि से मैं इस काव्यशास्त्र के नए उद्धारक को अभिनवगुप्त का नया अवतार मानता हू, केवल इस 'रिजर्वेशन' के साथ कि उसमे अभिनवगुप्त की शैली की निबिडता नही है।

मैंने अभी 'रस सिद्धान्त' के लेखक को अभिनवगुप्त का नूतन अवतार कहा है। बात कुछ बडी सी और अनुपात हीन सी मालूम पड सकती है और ऐसा लगता है कि अतिपरिचयादवज्ञा वाली वृत्ति इसे ग्रहण करने में बाधक बनेगी परन्तु मैंने जानबूझकर यह बात कही है। सम्भव है कि विचारो की मौलिकता के क्षेत्र में रस सिद्धान्त का लेखक अभिनवगुप्त की प्रतिस्पर्धा न कर सके। हालाकि यह बात भी मैं अतिपरिचयादवज्ञा वाली वृत्ति के लिए 'कन्सेशन' के रूप में कह रहा हू क्योकि डा० नगेन्द्र में मौलिक विचार दान की शक्ति की कमी नही है। परन्तु यदि यह कमी मान भी ली जाए और यह स्वीकार किया जाए कि ये अभिनवगुप्त की समता मौलिकता के क्षेत्र में सूक्ष्म गहन तात्त्विक विश्लेषण के क्षेत्र मे नहीं कर सकते, तो जहा तक 'प्रसन्नस्मितप्रवाह' शैली का प्रश्न है, उसमे अभिनवगुप्त भी डा० नगेन्द्र की समता नही कर सकते। इसलिए एक क्षेत्र की कमी दूसरे क्षेत्र की वृद्धि के द्वारा पूरी हो जाती है।

यदि अभिनवगुप्त की बातो को ही प्रमाण माना जाए तो यह स्वीकार करना होगा कि अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा स्थापित सिद्धान्तो की अच्छी तरह सगति बठा कर उपस्थित कर देना भी मौलिक सिद्धान्त की स्थापना के ही बराबर है। 'पूर्वप्रतिष्ठापितयोजनासु मूलप्रतिष्ठाफलमामनन्ति'—मतलब यह कि व्याख्यान और पुनराख्यान करनेवाले गम्भीरचेता आचार्य भी मौलिक विचारक की श्रेणी में ही आते है। हिन्दी में काव्यशास्त्र पर आज कुछ ग्रथ उपलब्ध हैं परन्तु इस तरह से स्पष्टतापूर्वक विचारो का प्रतिपादन करनेवाला और वहा

स लेकर भरत तक एव भरत से लेकर रामचन्द्र शुक्ल तक काव्यशास्त्रीय चितन की एक जो धारा चलती रही है उसके स्पष्ट प्रवाह सूत्र को सम्यक रूप से पकडने वाला दूसरा कोई विचारक नही है। डा० नगेन्द्र की सबसे वडी उपलब्धि यह है कि उन्होने एक सावभौम रस सिद्धात का अनुसधान किया है और देशी व विदेशी—प्रत्येक सिद्धात की समीक्षा करत हुए उसके गुणो की प्रशसा करत हुए, रस सिद्धात को एक सावभौम सिद्धात क रूप म उपस्थित किया है। सभव है कि इस प्रयत्न म उन्ह कही कही खीचातानी भी करनी पडी हो पर वह खीचातानी भी जिस ढग से की गई है उसके पीछे भी एक प्रौढ और चितनशील मस्तिष्क का आधार है। मैं किसी से 'रस सिद्धात' के लेखक की तुलना नही करता—तुलना सदा ठीक भी नही होती परन्तु आज हम जब शकराचाय या रामानुज के सिद्धातो का अध्ययन करने लगत हैं या मीमासा शास्त्र की वेद सम्बन्धी उपपत्तियो का अध्ययन करते हैं तो हम उसम सहमत भले ही न हो, पर जिस शक्ति तारत, आवेग और पाण्डित्य के द्वारा व अपन सिद्धातो का प्रतिपादन करते हैं उन्हे यो ही कहकर टाल देने की हिम्मत नही रहती। इसी तरह की मनोवृत्ति 'रस सिद्धात' के लेखक का अध्ययन करते समय बनी रहती है। यह लेखक भी कही तो अपनी चिताधारा की मौलिकता से और कहीं अपनी शैली के द्वारा पाठक को अभिभूत कर लेता है।

वास्तव म, हिन्दी म साहित्यशास्त्र के अध्ययन की जो परिस्थिति है उसमे क्रातिकारी मौलिक विचारधारा का आविर्भाव आज सम्भव भी नही मालूम होता। हमारी सबसे बडी समस्या यह है कि सस्कृत के काव्यशास्त्र के विशाल क्षेत्र म जो सूक्ष्म, गहन, विशद तथा सर्वांगपूर्ण विचारधाराए एक तरह से अस्त व्यस्त रूप म उपलब्ध हैं उनको व्यवस्थित तथा बोधगम्य रूप म पाठको क लिए उपलब्ध कर दिया जाए। जब पाठक इन विचारधाराओ से पूर्ण रूप मे परिचित हो जाएगा और इनके मार्ग को ठीक तरह मे स्वायत्त कर लेगा, तब स्वय ही मौलिक चितन का द्वार खुलेगा। काव्यशास्त्र के क्षेत्र म मम्मट ने यह काय किया था। भरत ने रस विवेचन के व्यावहारिक तथा अभिनव न रस विवेचन क तात्त्विक तथा दार्शनिक विचारो को सुलझे हुए रूप म पाठको के लिए उपलब्ध कर दिया था। आज यही काय हमारे लिए आवश्यक है और प्रकृति स्वय हमारे लिए कुछ लेखको को निमित्त बनाकर जिनम 'रस सिद्धात' का लेखक भी एक है अपना काय सम्पादन कर रही है। न जाने क्यो, मैंने अपन मन म यह बात स्वीकृत कर ली है कि किसी युग म साहित्य या विज्ञान के क्षेत्र म जो काय होना है वह उस युग के लिए जविक और मनोवैज्ञानिक माग है जिसकी पूर्ति प्रकृति, या वह

लीजिए, हमारी सामूहिक चेतना स्वयमेव करती है। कवि या लेखक स्वय गलत हो सकता है, पर कविता और साहित्य कभी गलत नही हो सकते। जिस रूप म वह अपने स्वरूप को प्रकट करता है, वही उसका सच्चा स्वरूप है।

वास्तव म हिंदी मे काव्यशास्त्र का गम्भीर और व्यवस्थित अध्ययन उस समय प्रारम्भ हुआ जिस समय 'रस सिद्धात' के प्रणेता डा० नगेन्द्र की पुस्तक 'रीतिकाव्य की भूमिका' प्रकाशित हुई। डा० नगेन्द्र की प्रतिभा को जो कुछ काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे अनुदान के रूप म देना था, वह बीज रूप म रीतिकाव्य की भूमिका म प्राय विद्यमान है। मैंने वही पर प्रथमत रस निष्पत्ति सम्बन्धी इतना सुन्दर और साङ्गोपाङ्ग विवेचन पढा था। साधारणीकरण के सम्बन्ध म कुछ बातें पढी तो अवश्य थी परन्तु सूक्ष्म, गहन, तात्त्विक विवेचन पहले पहल वही पर पढने को मिला। गाधी जी द्वारा दाढी भाव का उदाहरण देकर उन्होने काव्यानुभूति और वास्तविक अनुभूति म पार्थक्य का निदेश करते हुए जो रसानुभूति के स्वरूप को स्पष्ट किया है, वह अपनी स्वाभाविकता और सहजता मे अद्वितीय है। साधारणीकरण किसका होता है, इस प्रश्न को छेडते हुए साथ ही प्राचीन और अर्वाचीन सिद्धान्तो का अध्ययन करते हुए उन्होने जो इस मत की स्थापना की है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है वह तो मुझे उस सम्बन्ध म अतिम शब्द-सा मालूम पडता है। इधर के कुछ लोगो ने उनसे थोडा मतभेद दिखलाने का प्रयत्न किया है और शुक्ल जी के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन किया है। परन्तु उनके विचारो म कोई अधिक चिंतन का बल नहीं जान पडता। शुक्ल जी गुरु हैं और आज के हम सब उनके शिष्य हैं और उनसे मतभेद प्रदर्शन करने म गुरु द्रोह की गन्ध आ सकती है। इसलिए डा० नगेन्द्र के सिद्धात के विरुद्ध पाठक को जीत लेने म कुछ सुविधा होती है। इसको छोडकर इन विचारो म तर्क वितर्क का कोई पुष्ट आधार नही है। इस प्रकार 'रस सिद्धात' म काव्यशास्त्र का जो वृक्ष लहलहाता सा दिखाई पड रहा है उसका बीज 'रीतिकाव्य की भूमिका' म ही पड गया था। भरत ने नाट्यशास्त्र म एक जगह कहा है—

यथा बीजाद भवेद वृक्षो वृक्षात पुष्प फल यथा।
तथा मूल रसा सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिता ॥

उसी तरह मैं 'रीतिकाव्य की भूमिका' को बीजस्थानीय मानूगा, उसके प्रकाशन के बाद तथा 'रस सिद्धात' के प्रकाशन के पूर्व डा० नगेन्द्र के द्वारा लिखित या सम्पादित उदाहरणार्थ 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका' इत्यादि ग्रथ पुष्प अथवा फलस्थानीय होगे और 'रस सिद्धात' वृक्षस्थानीय होगा।

वास्तव म, मौलिक प्रतिभा एक ही काय करती है और वह यह कि वह एक

ऐसे व्यापक और सार्वभौम सिद्धांत की स्थापना कर देती है जो अपने व्यापकत्व की सीमा में संसार के सारे प्रपंचों को समेट कर उनकी बोधगम्य और उचित व्याख्या प्रस्तुत कर सके। शंकराचार्य ने बहुत-से ग्रंथ लिखे हैं परन्तु उन सब का सारतत्त्व एक आधे श्लोक में कह दिया गया है—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, नेहनानास्ति किंचन।

प्रस्तुत ग्रंथ में पांच अध्यायों में, रस सिद्धांत को लेकर जो प्रश्न प्राय उठाए जाते हैं—रस की परिभाषा क्या है? रस का स्वरूप क्या है? रस की निष्पत्ति किस तरह होती है? रस संख्या, संकोच और विस्तार रस विरोध इत्यादि—उन पर विचार किया गया है। इन प्रसंगों में विचारों के प्रतिपादन के लिए एक विशिष्ट पद्धति का अनुगमन किया गया है। प्रारम्भ में विचारणीय विषय के सम्बन्ध में जितने मत-मतान्तर हो सकते हैं प्राचीन या अर्वाचीन, सबका संग्रह किया गया है, जहां पर व्याख्या की आवश्यकता पड़ी है वहां उसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। यहीं पर डा० नगेन्द्र के स्कॉलर का रूप अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुआ है। यद्यपि अन्तिम विश्लेषण में वे मेरे मतानुसार, समालोचक (क्रिटिक) ही हैं स्कालर नहीं, क्योंकि स्कॉलर शब्द से एक ऐसे ज्ञान पर्वत की कल्पना साकार हो उठती है जो अपनी मगरूरी में तनकर खड़ा हुआ सबकी अवहेलना सी करता रहता है, पर फिर भी, 'रस सिद्धांत' के प्रणेता में स्कॉलरशिप की कमी है, यह कहनेवाला सचमुच बड़ा साहसी होगा। मुझे नहीं मालूम कि किसी भी देशी या विदेशी भाषा के ग्रंथ में भारतीय काव्यशास्त्र विषयक ऐसी ज्ञानराशि एकत्र मिलती हो। इसलिए डा० नगेन्द्र को हम स्कालर क्रिटिक ही कहकर कुछ संतोष प्राप्त कर सकेंगे। ज्ञान और दृष्टि का ऐसा दुर्लभ मणिकांचन संयोग बहुत कम मिलता है।

इस तरह विचारों को एक स्थान पर संकलित कर उनके पारस्परिक तारतम्य का विचार किया गया है और अंत में चलकर अपनी सम्मति दी गई है जो कहीं औरों से मिलती भी है और कहीं अपनी ही मौलिकता की दीप्ति से भासित है। उदाहरण के लिए रस निष्पत्ति तथा रस का स्थान एवं साधारणीकरण की समस्याओं को लीजिए, जिनका वर्णन तृतीय अध्याय में किया गया है। भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक रस सिद्धांत को लेकर इतिहास का जो विकास होता रहा उसको इस ग्रंथ के लेखक ने इतने सुलझे हुए ढंग से उपस्थित किया है कि आज हम दो हज़ार वर्षों के इतिहास को एक वाक्य में कह सकते हैं। अंग्रेज़ी कथा साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक जे० डब्ल्यू० बीच ने कथा साहित्य के विकास

के इतिहाम का दो शब्दा म कहा है—एग्जिट थाथर अथान अग्रेजी कथा साहित्य के विकास का इतिहास कथा स कथाकार के निर्गहित हाने का इतिहास है। उन्ही क शब्दो का उधार लेकर एक आलोचक ने यह कहा था कि आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास हिन्दी साहित्य क विकास तथा ह्रास का इतिहास है। मतलब यह कि जस जसे उपन्यास-कला म विकास और प्रौढता आती गई है कम रस लम्बी चौडी कथाओ के प्रति एक तरह की उदासीनता आती गई है और कथा भाग बहुत छोटा रूप धारण करता गया है। इसी तरह डा० नगेन्द्र क सिद्धान्तो का अध्ययन करनेवाला बडे मजे म यह कह सकता है कि भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक रस सिद्धान्त के विकास की कहानी रस को वस्तुनिष्ठता की स्थिति मे हटाकर आत्मनिष्ठता की स्थिति म धीरे धीरे परिणत करने का इतिहास है। भरत न जिस रूप म रस का विवेचन किया है उसमे स्पष्ट होता है कि रस की सत्ता विषयगत है और उसका स्थान नाट्य है। रस का स्थान नाट्य है रगमच है और तज्जन्य हर्षादि का स्थान सहृदय का चित्त है। रस आस्वाद्य है आस्वाद नही। मैं यहा पर रस सिद्धान्त की व्याख्या नही कर रहा हू परन्तु जब मैं लोल्लट शकुक भट्टनायक अभिनवगुप्त और पण्डितराज जगन्नाथ के रस विषयक विचारो पर विचार करता हू तो मुझे ऐसा ही लगता है कि वह रस जो पहले कही बहुत दूर स्थान पर पडा हुआ था उसे बहुत परिश्रम कर अपनी तपस्या क द्वारा इन लोगो न धीरे धीरे सहृदय क चित्त म प्रवाहित कर दिया जिस तरह स्वग म रहनेवाली गगा को भगीरथ इत्यादि ने इस भूतल पर लाकर सबके हृदय म प्रवाहित कर दिया। भरत के अनुसार रस का स्थान नाट्य है। लोल्लट ने उस वहाँ स हटाकर मूल पात्र म स्थापित किया। इस तरह थोडी सी आत्मनिष्ठता आई। शकुक न रस की स्थापना नट और उसके अभिनय म की इस तरह आत्मनिष्ठता का अधिक अश आया। भट्टनायक ने उसे सहृदय क चित्त म सम्बद्ध कर दिया लेकिन फिर भी उसकी वस्तुनिष्ठता बनी ही रही। अभिनवगुप्त न उसको सहृदय की आनन्दरूपता ही प्रदान कर दी। पण्डितराज जगन्नाथ ने आकर भग्नावरण चित को ही रस मान लिया। इस तरह काव्यशास्त्र म विचार की जो एक धारा प्रवाहित होती आ रही थी, उसकी एकसूत्रता को हम देखने म समथ हो जाते हैं—जो एकसूत्रता पहले हमारी नजरो से ओझल थी। आज रस सिद्धान्त के इस लेखक न हमारे हाथ म एक टाच दे दिया है जिसके द्वारा वह एकसूत्रता सहज ही स्पष्ट हो जाती है।

व्यक्तिगत रूप म मुझे इस एकसूत्रता की बात को पढकर बहुत ही सतोष हुआ क्योकि मैंने कभी मस्जिद और दीपक के रूपक म रस सिद्धान्त को समझन

की चेष्टा की थी। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि पहले घर में दीपक को जलाकर तब मस्जिद में दीपक जलाना चाहिए पर रस सिद्धान्त के इतिहास में गंगा उल्टी ही बह रही थी। भरत रस के दीपक को घर में अर्थात् सहृदय के हृदय में न जलाकर मस्जिद में अर्थात् नाट्य में, वस्तुवस्तु में जलाने की ही चेष्टा करते थे। यह स्थिति अस्वाभाविक थी और बहुत दिनों तक चल नहीं सकती थी। जब तक दीपक घर में जलकर उसे उद्भासित नहीं करता तब तक हृदय को शान्ति नहीं मिल सकती। लोल्लट ने और शंकुक ने रस के दीपक को मस्जिद से हटाया और घर के समीप लाने का प्रयत्न किया, पर फिर भी वह घर से दूर ही था। भट्टनायक ने उस दीपक को सहृदय के चित्त की देहली पर जला दिया। अभिनव गुप्त ने उसे सहृदय के चित्त के केन्द्र में स्थापित कर दिया और पंडितराज जगन्नाथ ने तो सहृदय के चित्त को ही दीपक रूप मान लिया अर्थात् रस की सत्ता को एकान्त रूप से विषयीगत बना दिया।

डा० नगेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरण का सिद्धान्त अपने रूप में सर्वथा मौलिक और निभ्रान्त है। यदि हम यह मान लेते हैं जैसा डा० नगेन्द्र ने प्रतिपादित किया है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है तब हमारी सभी समस्याएं सुलझ जाती हैं। केवल आश्रय या केवल आलम्बन का साधारणीकरण नहीं होता—इस प्रसंग में डा० नगेन्द्र ने अपने मत के समर्थन में जो तर्क दिया है उसे पढ़ने पर ही उसका आनन्द आ सकता है। यहां पर मुझे एक बात कहनी है   रस सिद्धान्त के लेखक ने राकेश गुप्त की पुस्तक 'Psychological StudieS in Rasa' में उल्लिखित रस-सम्बन्धी तथा साधारणीकरण सम्बन्धी विचारों का कहीं भी न तो उल्लेख किया है न उस पर विचार ही किया है। यह पुस्तक छोटी सी है, किन्तु उसमें कहीं-कहीं बहुत ही विचारोत्तेजक सामग्री संकलित की गई थी। उदाहरणार्थ उन्होंने यह प्रश्न छेड़ा भी था कि साधारणीकरण की बात की जाती है पर साधारणीकरण संभव भी होता है?—काव्य में तो व्यक्ति की मूर्ति आती है इत्यादि।

रस सिद्धान्त का पांचवां अध्याय भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसमें रस दोष और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा रस विरोध के परिहार की चर्चा की गई है। इसमें अन्य अध्यायों की तरह ही संस्कृत के काव्यशास्त्र के विशाल क्षेत्र में जो विषय सम्बन्धी विचार-कण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं उनको एक साथ करने का सफल प्रयत्न किया गया है और अन्त में यही निष्कर्ष निकाला गया है कि इस प्रसंग में जितनी बातें कही गई हैं वे केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपलक्षणमात्र हैं उनको अकाट्य सिद्धान्त के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। कोई भी ऐसा रस

दोष या रस विरोध नहीं है जो परिवर्तित परिस्थिति में गुण का रूप धारण न कर ले। दोष तभी तक दोष है जब वह रस का अपकर्षक हो—दोषा रसापकर्षका।'

पुस्तक का अन्तिम अध्याय 'रस सिद्धान्त शास्त्र और सिद्धान्त कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें पाश्चात्य और पौर्वात्य सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए सबकी संगति रस सिद्धान्त में बठाई गई है। संस्कृत के जितने काव्य सम्प्रदाय हैं उनके विवेचन के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इनमें बाह्य दृष्टि से देखने पर भले ही अन्तर दिखाई पड़ता हो, परन्तु वास्तविक भेद नहीं है, यदि भेद है तो बलाबल-मात्र का। मैं जब काव्यशास्त्र का अध्ययन करता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि जिस युग में संस्कृत काव्यशास्त्र का विकास हुआ उस समय एक प्रथा सी थी कि अपने विरोधी मत वालों की ही शब्दावली अपने पक्ष में पढ़े और विरोधियों के विरुद्ध मानो शत्रु के घर से ही तोप लेकर, उसी के विरुद्ध उसका मुँह घुमा दिया जाय। किसी ने कहा—'वक्रोक्तिः काव्यस्य जीवितम्'—दूसरे ने समझा कि जीवित शब्द बड़ा सशक्त है उसी को किसी तरह अपनी सेवा में नियोजित किया जाय, जैसे कोई अपने पड़ोसी के घर में किसी बहुत ही चतुर सेवक को देखकर उसे फुसलाकर अपनी सेवा में कुछ अधिक वेतन देकर भी ले जाता है। अतः कहा गया—'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।' किसी ने काव्य की परिभाषा देते हुए कह दिया—'अनलङ्कृती पुनः क्वापि।' इसी के सकेत सूत्र को पकड़कर दूसरे ने कहा—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥

'रस सिद्धान्त' को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जहाँ तक भारतीय काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों का प्रश्न है उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है—अलंकार, गुण (रीति), बिम्ब विधान अथवा कल्पना आदि सभी रस के सहायक उपकरण हैं और रस की प्रतीति के लिए उनकी आवश्यकता अनिवार्य है। पृष्ठ २२६ पर जब भारतीय काव्यशास्त्र के अनेक सम्प्रदायों के तारतम्य को एक रेखा मानचित्र के द्वारा अथवा फार्मूले के द्वारा बतलाया गया है तो ऐसा लगता है कि कोई गणित का प्रोफ़ेसर बोल रहा हो—और प्रारम्भ में मैंने जो स्थापना की है कि डा० नगेन्द्र ने काव्यशास्त्र लिखने के लिए वैज्ञानिक शैली अपनाई है उसके लिए दृढ़ आधार मिल जाता है।

इसी तरह रस का पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विभिन्न वादों के सन्दर्भ में भी अध्ययन करते हुए इनकी रस के साथ संगति बैठाने की चेष्टा की गई है।

अभिजात्यवाद (क्लासिसिज्म), स्वच्छ दतावाद (रोमाण्टिसिज्म), आदर्शवाद (आइडियलिज्म), यथार्थवाद (रीयलिज्म) प्रतीकवाद (सिम्बालिज्म), प्रगतिवाद इत्यादि के सम्बध मे सक्षेप म, किन्तु बहुत ही अभिव्यजक, सजीव और विश्वासोत्पादक ढग से सम्यक विवेचन किया गया है। अपने विवेचन का समाहार करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है—"हमारी धारणा है कि रस सिद्धान्त एक ऐसा व्यापक सिद्धात है जिसमे इन वादो का विरोध मिट जाता है जो सभी के अनुकूल पडता है और सभी के स्वरूपो का समन्वय कर लेता है।" पुस्तक के अतिम कुछ पृष्ठो मे रस सिद्धात के विरुद्ध उठाए गए आक्षेपो का यथोचित उत्तर देकर उनका समाधान किया गया है। सब समाधान सहज स्वाभाविक और अकाट्य नही होते उनमे कही कही अपनी ओर से आरोपण और खीचातानी आ ही जाती है। प्रश्न यह है कि वह कहा तक वास्तव था तक और प्रभापूर्ण ढग से कहा गया है।

सारी पुस्तक पढने के बाद हमारी धारणा यही होती है कि डा० नगेन्द्र भी प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रियो की परम्परा म आते है। बाते वे मौलिक और क्रान्तिकारी अवश्य कहते हैं परन्तु अपने को परम्परा का अनुयायी कहते है

प्रथम मुनिन जे कीरति गाई।
सो मग चलत सुगम मोहि भाई॥

अपने विचारो की स्थापना मे उन्होने प्राचीन काव्यशास्त्रियो की पद्धति से ही काम लिया है। प्राचीन काव्यशास्त्री क्या करते थे? यही न, कि जिस किसी भी सिद्धात की स्थापना की उसी को इतना लचीला और व्यापक बना दिया कि उसकी सीमा मे सारे अन्य सिद्धात समा जाए। कुन्तक ने वक्रोक्ति की स्थापना की परन्तु उनकी वक्रोक्ति इतनी व्यापक है कि वह अपने व्यापकत्व म रस ध्वनि इत्यादि को समेट लेती है। यही तो डा० नगेन्द्र ने भी किया है। वे रसवादी अवश्य हैं, पर उनका रस भरत अभिनव आदि के रस से थोडा भिन्न है और भिन्नता इसलिए आई कि आज उसको वैसी समस्याओ का सामना करना पड रहा है जो समस्याए भरत अभिनवगुप्त या पडितराज जगन्नाथ के सामने नही थी। यदि रस सिद्धात को जीवित रहना है तो उसे अपने म परिस्थिति के अनुकूल बन जाने की क्षमता जाग्रत करनी ही पडेगी। रस सिद्धात डा० नगेन्द्र के व्यक्तित्व के द्वारा इसी तरह की क्षमता अपने अन्दर जाग्रत कर रहा है। सभी जीवित तथा प्राणवान् पदार्थ यही करते है।

अन्त म, मैं प्रतिभा, अध्यवसाय और लगन की इस पुस्तक रस सिद्धात का हिन्दी के समस्त साहित्य जिज्ञासुओ की ओर से स्वागत करता हू। मैं

आलोचक के रूप में बदनाम हूँ। मुझे ऐसी पुस्तकें कम मिलती हैं जिनको पढ़कर मैं लेखक का कृतज्ञ हो सकूँ। 'रस सिद्धान्त' कुछ ऐसी दुर्लभ पुस्तकों में से है जो अपनी शक्ति के बल पर ही मुझे अपना कृतज्ञ बना लेती है। मैंने पुस्तकों को अपनी सुविधा के लिए तीन वर्गों में विभाजित कर लिया है—

(१) कुछ पुस्तकें ऐसी होती हैं जिनको पढ़कर ऐसा लगता है कि मेरे व्यक्तित्व में समृद्धि आई है मेरे ज्ञान भंडार की वृद्धि हुई।

(२) दूसरी श्रेणी में वे पुस्तकें आती हैं जिनके अध्ययन के बाद यह लगता है कि मेरे ज्ञान में वृद्धि भले ही नहीं हुई हो हाँ मैंने कुछ खोया नहीं कुछ पाया ही है।

(३) तीसरी श्रेणी उन पुस्तकों की है जिनके पढ़ने के पश्चात यह लगता है कि हाय रे! अपनी गाठ की पूजी भी मैंने गवा दी।

डा० नगेन्द्र की रस सिद्धान्त पुस्तक को हम निश्चित रूप में प्रथम श्रेणी की पुस्तकों में ही रखेंगे।



श्री रामच द्र तिवारी

९३

समय और हम : सर्जनात्मक चिन्तन की दैनन्दिनी

जगत् म जीवन का आधार व्यक्ति है, और जगत म प्रत्यक व्यक्ति के सम्बध अकूत है। उसके सामन अनन्त प्रश्न हैं। अनेक प्रश्ना के प्रति वह अपना क्रिया को कम का रूप देता है, पर अनन्त प्रश्न ऐसे हैं जो उसकी कम सीमा स बाहर पडत हैं। उनके विषय म उसकी प्रतिक्रिया का रूप मत होता है। कोई भी प्रश्न ऐसा नहीं है जिसके विषय म हमारा कोई मत न हो। इन कर्मों और मतो की क्रिया प्रतिक्रिया से ससार बनता है। यह ससार व्यक्तियों के कर्मों और मतो से निर्मित एक अवैयक्तिक सत्ता है। इस अवैयक्तिक का भी एक व्यक्तित्व—बाहर—है और वह हम—घर को—प्रभावित करता है। इस ससार का एक और अवैयक्तिक नाम है—*समय*। वयोवृद्ध कुछ अनुचित करते हुए पकडे गए। बिना सकुचाये बोले क्या करें बेटा, समय ही ऐसा है। बडे बडो की मति भ्रष्ट हो जाती है! जब काय हमारे मनोनुकूल होना है तो समय अच्छा होता है और जब प्रतिकूल पडता है तो दोष सदा ही इस समय का होता है। ससार के विभिन्न प्रश्ना क विषय म प्रत्यक व्यक्ति अपने मतो का ब्यौरा दे सकता है और उसके द्वारा अपने व्यक्तित्व को परिभाषित कर सकता है। पर जो जागरूक हैं इस प्रकार के ब्यौरे को समालना और सवारना, रखना और देना जिनका गम्भीर धम है जनेन्द्र उनम आते हैं। उन्होंने वतमान के प्रश्नों को झाड-पोछ कर और कुरेद कर भी देखा है और उनका यह ब्यौरा सहधर्मियो के लिए रोचक बन गया है।

समय और हम प्रश्नोत्तर क रूप म लिखा गया ग्रथ है जिसम प्रश्न वीरेन्द्र गुप्त न किए हैं। ग्रथ म चार खण्ड हैं परमात्म पश्चिम, भारत और अध्यात्म। अनुक्रम ध यवाद स पृष्ठ अलग हैं और उनसे पहले जनेन्द्र की स्वीकृति है जिसम

उन्होंने ग्रंथ सम्पादन को ही श्रेय का वितरण के बाद स्वीकार कर लिया है और, मानो अपने उत्तरों की पृष्ठभूमि के रूप में, कहा है "माना जाता है कि आस्तिक दर्शन ही हारा है विज्ञान उससे बड़ी है। आज का संकट, जिसमें मानव जाति आ पड़ी है बहुत कुछ उसी विच्छेद और विरोध से बना है। पदार्थ विज्ञान और समाज विज्ञान परस्पर तभी पूरक हो सकेंगे जब दोनों में एक श्रद्धा और विश्वास प्रवाहित होगा। अन्यथा विज्ञान यंत्र व्यापार को सम्पन्न करेगा और मानव व्यवहार को विपन्न करता जायगा। अवश्य कुछ है जो अमोघ और अखंड है। उसी अटल नियम पर चेतन अचेतन संसार थमा चल रहा है। इस धर्म में द्वैत नहीं है।'

विज्ञान के प्रति यह विरोधी और हीन दृष्टिकोण उस समय कुछ विचित्र सा लगता है और सामान्य पाठक को अशुद्ध धारणा दे सकता है जबकि वे स्वयं कहते हैं पृष्ठ ४०६ पर—मैं विज्ञान के लाभ को पूरा का पूरा ले लेना चाहता हूँ, सिर्फ उसका गुलाम बना जाना चाहता हूँ पृष्ठ १०६ पर—विज्ञान नष्ट नहीं होगा पृष्ठ १०८ पर—विज्ञान का योग अनिष्ट से टूटकर आगे इष्ट के साथ ही चलेगा। चेतना को पीछे नहीं लौटना है, आगे ही बढ़ना है। दूसरा कुछ सम्भव नहीं है।

पृष्ठ ४३ पर प्रश्न ८ है किसी बन्धु ने मुझसे कहा था कि जिस प्रकार जल से बिजली पैदा हो सकती है, पर बिजली में जल पैदा नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्थूल प्रकृति से ईश्वर अथवा चेतना उत्पन्न होती है पर सूक्ष्म ईश्वर से प्रकृति पैदा नहीं होती। इस विषय में आपका क्या विचार है? इसका उत्तर दिया गया है उन बन्धु ने विज्ञान की प्रक्रिया को देखकर कहा होगा। चित् सृष्टि की प्रक्रिया सूक्ष्म से स्थूल की ओर है। इसे पढ़कर उस घटना की याद आ जाती है जिसकी रचना का श्रेय तीसरे चुनाव में एक राजनीतिक दल के किसी उर्वर मय मस्तिष्क को दिया जा रहा था। उन्होंने कदाचित् उड़ीसा के किसानों को यह चेतावनी दी थी कि सरकार की नहरों का पानी कृषि के लिए बिल्कुल बेकार है क्योंकि उसमें से बिजली निकाल ली गई है और अब वह निर्जीव हो गया है। जिन बन्धु ने वीरेन्द्र जी से उपर्युक्त वाक्य कहा होगा उन्होंने इस व्याख्या पर विश्वास किया होगा।

वास्तव में बिजली पानी में से नहीं निकलती। जो पानी की धारा बिजली का स्रोत जान पड़ती है या कही जाती है उसे यदि हम बिजली बनाने की टरबाइन में से गुजारने से पहले परखते हैं तो वह विद्युत्मय (पानी+बिजली) नहीं होती। वह पानी वैसा ही पानी होता है जैसा टरबाइन में से गुजरने के बाद मिलता है। तो यह बिजली कहाँ से आती है? बिजली बिजली बनाने

की जमीन म से आती है। पानी उस चक्र घुमाता है। पानी सूर्य का ताप सोखकर जलवाष्प बनता है और वायु में सम्मिलित होकर ऊँचे पर्वतों पर पहुँचता है, और वहाँ फिर पानी बनकर पर्वतों पर गिर आता है, बरस जाता है। यह पानी पृथ्वी के आकर्षण के कारण, जिस प्रकार ऊपर को फेंका गया पत्थर नीचे गिरता है उसी प्रकार, नीचे को बहता है। पानी का पर्वत के ऊपर पहुँचने का सब काम सूर्य की शक्ति दो प्रकार से करती है—वह तरल पानी को गर्म वाष्प बनाने के काम में आती है और वाष्प की गुप्त ऊष्मा के रूप में गुप्त हो जाती है। जब वाष्प पुनः पानी बनती है तो यह गुप्त ऊष्मा वायु मंडल में मुक्त हो जाती है। सूर्य की शक्ति—गर्मी—वायु को गर्म करती है। इससे वह चलती है। इसी शक्ति के बल से वायु जलवाष्प को पर्वतों के ऊपर पहुँचा देती है। जब पर्वत के ऊपर वाष्प पानी बनती है तो उस पानी में यह शक्ति होती है। पानी जैसे जैसे नीचे को बहता है, यह शक्ति काम करती हुई व्यय होती रहती है। सूर्य की शक्ति का यह अंश है जो हमारी टरबाइन के पहिये को घुमाता है। पानी ऊपर से नीचे को बहता है तो शक्ति देता है। यदि पानी के स्थान पर पारा या रेत होता तो भी टरबाइन के पहिये घूमते। अतः इस प्रश्न में एक भ्रम यह है कि जल से बिजली पैदा हो सकती है। वस्तुतः यह नहीं हो सकती। हम तालाब के तट पर गतिहीन जल से बिजली नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरा कथन है 'पर बिजली से जल पैदा नहीं हो सकता।' बिजली शक्ति का एक रूप है। यह सामान्य अर्थ में स्थूल नहीं है। पर प्रारम्भिक विज्ञान के विद्यार्थी की हैसियत से हम जानते हैं कि जब आक्सीजन और हाइड्रोजन नाम की गैसों को एक काँच के पात्र में भरकर उसमें बिजली की चिंगारी गुजारी जाती है तो दोनों गैसें रासायनिक संयोग करती हैं और पानी की बूँदें पात्र की दीवार पर देखी जा सकती हैं।

इस अपर्याप्त दृष्टान्त का आधार लेकर कथन है कि उसी प्रकार स्थूल प्रकृति से ईश्वर अथवा चेतना उत्पन्न होती है पर सूक्ष्म ईश्वर से प्रकृति पैदा नहीं होती। यह एक उलझी बात है। पहले अंश में 'ईश्वर अथवा चेतना' है और दूसरे में केवल 'ईश्वर' रह गया है। ईश्वर और चेतना पर्यायवाची नहीं हैं। चेतना एक सामान्य गुणमात्र है जो वस्तु आधार के अभाव में लक्षित नहीं होती जबकि ईश्वर सर्वोपरि है। स्थूल प्रकृति में मोटे तौर पर चेतनामय और चेतनाहीन स्पष्ट लक्षित होते हैं पर ईश्वर भावना और विश्वास का विषय है। जितना हम अनुभव करते हैं उसका मंदिर मनुष्य का मन है। वह सबका ईश—ईश्वर है श्रेष्ठ स्वामी है। आस्तिक का उत्तर होगा ईश्वर स्थूल प्रकृति से

उत्पन्न नही होता । वह तो सूक्ष्म, स्थूल, जो भी है, सबको उत्पन्न करता है, सक्षम है और (यहा मतभेद हो सकता है) स्वय सब कुछ है ।

पृष्ठ ४४ पर प्रश्न ६ है तब क्या सृष्टि और विनान की प्रक्रियाओ म भेद है ? इस प्रश्न म स जो ध्वनि निकलती है उसे पश्चिमी धर्मों की शब्दावली म या वह सकेत ह कि विनान एक शैतान है जो ईश्वर के राज्य म घुस आया है । इस प्रश्न का उत्तर देन म कुछ जल्दी की गई है । सृष्टि से जनेन्द्र क्या समझत है यह उनके इस वाक्य मे काफी स्पष्ट हो जाता है जसे शिशु युवा होना और अत म वृद्ध होकर मृत्यु म मिल जाता है वसे सब विकास और ह्रास की अवस्था विनान के उपकरणा म नही मिलती । अर्थात् सृष्टि मे वे मनुष्य को भी मानत ह । पर मनुष्य और विनान क बीच क्या सबध है इसकी ओर यहा विशेष ध्यान दिया गया नही जान पडता । ध्यान का जोर केवल इस अश पर है कि विनान एक शैतान है जो हम खाने और बरगलाने के लिए चला आ रहा है । वस्तुत मनुष्य स अलग विनान की कोई स्थिति नही है । जो असली बात है वह नही कही गई है । सृष्टि और विनान को समकक्ष मान लिया गया है । यह लगभग वसा ही है जसे कि मनुष्य और उसके दाँतो को समान मान लना । दाँत मनुष्य को काटने और भोजन चबाने म सहायता देते है पर वे मनुष्य की बराबरी का दावा नही कर सकते । व पूर्ण मनुष्य नही हैं । जिस प्रकार शिशु क दाँत नही होते वसे ही प्रारम्भ मे मनुष्य क पास विनान नही था । उसका जीवन कठिनाइयो मे पूर्ण था । उसने विनान की सृष्टि की और अपने जीवन म सुख सुविधा को लाया । जब वह वृद्ध हो जायेगा उसकी जीवनी शक्ति क्षीण हो जाएगी, तो जिस प्रकार बुढापे मे दाँत गिर जाते हैं, हो सकता है उसी प्रकार वह विनान का उपयोग करन म अक्षम हो जाए ।

इसी प्रश्न क उत्तर के आरम्भ म एक बात है । कहा गया है विनान क आविष्कार जितने हो, उतने ही रहत ह । कब ? सातवी शती म ? सोलहवी मे ?उन्नीसवी म ? दूसरे विश्वयुद्ध से पहले ? दूसरे महायुद्ध के बाद ? विनान विकासशील प्रगतिशील, वृद्धिशील घटना है । उसम विचारो, मान्यताओ उपकरणा की उत्पत्ति पुष्टि पतन और मृत्यु होती रहती है । नवीन जानकारियो और अनुभवा के आधार पर नई मान्यताए आती हैं पुरानी पीछे छूट जाती हैं और के नयी भी पुरानी पड जाती हैं । जिस प्रकार सृष्टि म पुराने माता पिता के अभाव म नये युवक-युवतियो का अस्तित्व सम्भव नही होता उसी प्रकार विनान की पुरानी मान्यताओ के आधार के बिना नवीन मान्यताओ की प्राप्ति सम्भव नही होती । यही बात विनान म उत्पन्न टक्नालाजी, मशीनो, यन्त्रो पर भी लागू

होती है। पुरानी कामचलाऊ मशीनें पीछे छूटी जा रही है और नयी, बढिया, अधिक उपादेय और सुविधापूर्ण सामने आ रही हैं। एक यंत्र है जिसमें लोग गोलियों की सहायता से साधारण हिसाब लगाते हैं, और वह कम्प्यूटर है जिसके द्वारा उन गणित के प्रश्नों को महीनों में हल किया जा सकता है जिन्हें हल करने में कई शताब्दियां लग जाती।

इस ऐतिहासिक प्रगति की तुलना समुद्र के वक्ष पर आगे बढती हुई नौका से की जा सकती है। जब तरंग का चढाव आता है तो नौका ऊपर उठ जाती है और जब निचाव आता है तो वह नीचे उतर आती है। चढता उतरता मनुष्य का इतिहास आगे बढता जाता है। सागर (अस्तित्व) के पार उसे क्या मिलेगा, यह कहना एक प्रकार से कठिन है। परिस्थितियां बदल रही हैं। वह उन्हें बदलने में सहायता दे रहा है। हो सकता है कि इस सागर के पार उसे परिस्थितियों की ऐसी चट्टान मिले जिससे टकरा कर वह चूर-चूर हो जाये। आज अनुमान है, और गाणितिक सम्भावनाओं को देखते हुए उसे सही कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में ऐसे ग्रहों और उपग्रहों की संख्या करोड़ों में है जिन पर किसी न किसी प्रकार के जीवन के होने की सम्भावना है। ब्रह्माण्ड की इन असंख्य जीव-जातियों में प्रति क्षण कोई न कोई जाति मिटती रहती है और एक नयी उत्पन्न होती रहती है। मनुष्य का भी अंत इस प्रकार होगा, जल्दी या देर में, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

पुस्तक में जैनेन्द्र का दार्शनिक पक्ष सामने है, पर वे सामान्य दार्शनिक नहीं हैं। उनमें यह या वह बनने की वृत्ति विशेष नहीं है बस जो हूं सो हूं की मात्रा अधिक है। मुझे व दार्शनिक से अधिक कलाकार अधिक मनुष्य, लगते हैं। औपचारिक दार्शनिक की निर्ममता और आग्रह उनमें नहीं है। उनका झुकाव समन्वय की ओर है। उनके तर्क में काट नहीं है, तार्किक प्रबलता भी नहीं है। कठिन परिस्थितियों में वे अपनी मान्यताओं पर पर टेक लेते हैं, और वहां से उनके रंग से रंग कर, संसार को देखते हैं। उनके परों के नीचे की चट्टानें हैं. आस्तिकता का आधार, अहं का विलास और अहिंसा उन्मुखता। इसमें आस्तिकता का आधार एकदम व्यक्तिगत—आध्यात्मिक है, अहं का विलास सैद्धांतिक—मानसिक—है, और अहिंसा उन्मुखता व्यावहारिक है।

अहिंसा को लेकर विभिन्न स्तरों पर काफी चर्चा होती रही है। अहिंसा वास्तव में एक संस्कार है जिसकी ओर जीवन—विशेषतया मानव-जीवन—बढता रहा है। कहानी में सांस बंद कर लेटे हुए मित्र को रीछ इसलिए नहीं मारता कि वह उसे मरा हुआ समझता है। भनक जीव प्रबल शत्रु को देखकर रक्षा के लिए

मुर्दे से बन कर लेट जाते है। भयभीत कुत्ता जब लेट कर एक टाग खडी कर देता है तो यही नाट्य करता है। मानव-बालक जब चीटी को सरकते देखता है तो उसे अगुली से मसलने का प्रयत्न करता है। जड को कोई नही मारता। जीवित को जो मुख्य रूप में अपनी गति से पहचाना जाता है, मारने मे एक प्राकृतिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इस वध जनित आह्लाद का सबध प्रकृति की जीव द्रव्य व्यवस्था से है। इस वृत्ति की सहायता से विभिन्न जतु जातियो का जीवन सम्भव बनता है और प्रकृति की विकास लीला—जिसके निखरने मनुष्य की आकृति पाई है—चरितार्थ होती है। हिसा जतुओ मे ही नही अनेक पौधो मे भी—जतु अहारी पौधो मे—सहज है। यह एक कोठी बक्टीरिया से लेकर एक ओर हाथी, ह्वेल तक, और दूसरी ओर मनुष्य तक मे व्याप्त है। यह हिसा के लिए हिसा नही है। अफ्रीका के मैदानो मे क्षुधा निवृत्त सिंह निकट लेटा रहता है और ज़ेब्रो तथा हिरनो के झुण्ड चरते रहते हैं। यह क्षुधा है जो हिसा को जगाती है। मनुष्य भी इस प्रवृत्ति से बाहर नही है। पर उसके भीतर एक अधिक सूक्ष्म सवेदना का उदय हुआ है—जीव मात्र के लिए सहानुभूति का—जिसमे अनेक लोगों के लिए पौधे भी सम्मिलित हैं, एक व्यापक आत्मीय भाव—यद्यपि ऐसी भावना पर मनुष्य अपना एकाधिकार नहीं जता सकता। मादा भेडिये मनुष्य के उन बच्चो को पालते पाए गए हैं जिन्हे वे खाने के लिए उठा कर ले गए थे। कुतिया ने ऐसे जतुओ के बच्चो को अपना दूध पिलाकर पाला है जिन्हे वह वयस्क पाती तो मार कर खा जाती। वे बच्चे बडे हो गए तो भी उसके प्यारे बने रहे। शायद आश्चर्य करती रही होगी कि ये कुत्ते क्यो नही बने। पर नही बने तो भी उसकी आत्मीयता मे कमी नही आई। मनुष्य के साथ अनजाने सिंहो और रीछो की मैत्री की घटनाएं पुरानी ही नहीं है, आज भी घटित होती है।

इस प्रकार प्रकृति ने हिसा ही सहज नही बनाई उसने जीवमात्र मे आत्मीयता का—अहिसा का—भी बीज डाला है। हिसा और अहिसा की यह धरोहर मनुष्य ने पाई है और उसके साथ पाए हैं ऐसे दो हाथ जिनका सौभाग्य किसी अन्य जतु को नही मिला है। 'करने' की क्षमता ने मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित होने का अवसर दिया। उसने अपने इतिहास मे पीढी दर-पीढी अनुभव पर अनुभव चिन कर सस्कार का मदिर खडा किया है। अब तक, पिछले लगभग बीस लाख वर्षों मे ससार के विभिन्न भागो मे मनुष्य ने अनेक युद्ध किए है। बार्बेज के समान कितनी ही जातिया इस संघर्ष मे मिट चुकी हैं और आस्ट्रेलिया के हाटेंटोटो तथा उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के आदिवासियो के समान कुछ

हैं, जो मिटती जा रही हैं। इस इतिहास-यात्रा की साधारण रूपरेखा यह रही है कि एक अपेक्षाकृत बर्बर जाति ने अपेक्षाकृत सभ्य पर दुर्बल जर्जर, जाति पर आक्रमण किया है उसे पराजित और पददलित किया है। उसकी सभ्यता और संस्कृति के रस में अपनी सभ्यता और संस्कृति को सींचा है। सफलता ने विलासिता और अंधे आत्मविश्वास की ओर गई है, जर्जर हुई है, और तब एक दूसरी अपेक्षाकृत बर्बर जाति आई है जिसने उसे हराया है, उससे सीखा है, जर्जर हुई है और नयी अपेक्षाकृत बर्बर और प्राणवान् जाति द्वारा पराजित की गई है।

यह सब ऐसे हुआ है जैसे कि मशाल की दौड़ में होता है। एक व्यक्ति मशाल लेकर दौड़ता है, जब थक जाता है तो दूसरे को पकड़ा देता है, और यह दूसरा तीसरे को दे देता है, और इसी प्रकार दौड़ चलती जाती है। मशाल आगे बढ़ती जाती है। थकित प्राण जातियाँ पीछे पड़ती जाती हैं और प्रगतिवान् आगे बढ़ती आती हैं। वे थकती हैं तो बढ़ने का काम औरों को सौंप देती हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभ्यता संस्कृति के मंदिर की मंजिलों पर मंजिलें उठती चली आई हैं। इन मंजिलों में होकर मनुष्य ऊपर को उठा है, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर चला है, स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ा है। उसने अपनी कोमलतर वृत्तियों को उन्मेषित किया है। हिंसा से अहिंसा की ओर अग्रसर हुआ है। आज संसार के सभी देशों में—जिनकी संख्या लगभग १२० है और जिनमें बहुतों की जनसंख्या करोड़ों में है—वहाँ के निवासियों के पारस्परिक संघर्षों के निर्णय तलवार से नहीं होते, वैध उपाय अहिंसक हैं, कानून का है। देशों के बीच संघर्ष हैं, युद्ध भी हैं, और वे मनुष्य की विस्तारशील सामर्थ्य के कारण अत्यंत भयंकर भी हो गए हैं। पर तीन अरब से अधिक की जनसंख्या वाले संसार के लिए युद्धों की इतनी अल्प संख्या एक आश्चर्य का ही विषय है। आज भी मनुष्य जाति अपनी मूल वृत्तियों से जूझती हुई आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रही है। देशों के बीच पारस्परिक सहायता और सहयोग के अधिकाधिक अवसर निकाले जा रहे हैं और उनका यथासम्भव उपयोग किया जा रहा है। यह अहिंसा की विजय यात्रा का अद्भुत उदाहरण है। मनुष्य के इतिहास में समय रहा है—कुछ क्षेत्रों में शायद आज भी है—जब मनुष्य भूखे होते थे तो एक दूसरे को मार कर खा जाते थे, पर आज लाखों-करोड़ों मनुष्य कठिन समय में मिल-बाँट कर खाते हैं। राशनिंग इसी प्रकार के वितरण का एक रूप है। इसमें अहिंसा और संगठन का संबंध सामने आता है। संगठन और व्यवस्था ज्यों ज्यों बढ़ी है, अहिंसा की अनिवार्यता सिद्ध हुई है।

'परमात्म' खड मे जिन विषयो के प्रश्नो के उत्तर दिए गए है उनका सबध ईश्वर, आत्मा व्यक्ति, कर्म, भाग्य, प्रतिभा भविष्य, द्वद्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग भेद व्यक्ति चित तत्र यत्र प्रजातन्त्र, मार्क्सवाद, साम्यवाद, और वैज्ञानिक अन्वेषण है। इसमे मानव इतिहास म क्रियाशील सनातन प्रवृत्तियो के प्रकाश म वतमान समस्याओ का विवेचन किया गया है। जो प्राचीन है उसमे से होकर जाति गुजरी है। वह हमम रमा हुआ है। उसमे असगतताए और असुविधाए है पर हम इन असगततामो और असुविधाओ के प्रति ममतामय हैं। वे चाहे विश्वास हो या व्यवहार हम उन्हे सिर धरते हैं उन पर श्रद्धा रखते हैं। जो प्रतीति और प्रीति का भाजन नही है वह श्रद्धा का भी पात्र नही है। पर मानव मानस जड नही है। वह विकासवान है और उसका इतिहास गतिशील है। आज के युग म तो वह मानो बरसाती नदी की बाढ की भाति भवरें खाता हुआ चादरें पलटता हुआ उन्मादी वेग से दौड रहा है। ऐसे वेग मे कि कुछ लोगो को लगता है कि अब कूल किनारा की खैर नही है। सब जल थल हो जाएगा। शायद वाद म रेगिस्तान बन जाएगा। मानस के इस सवेग मथन से एक वस्तु उत्पन्न होती है जिसे बुद्धि की सज्ञा दी जाती है। बुद्धि शब्द पहले भी था। भगवान बुद्ध को बोध हुआ था। पर इस युग म जब बुद्धि 'वाद' का भाका बनकर आई और उसने श्रद्धा पूजित मूल्यो को बेपर्दा करना चाहा, तो जनेन्द्र को नैतिकता और श्रद्धा की ओर से मच पर आने की आवश्यकता अनुभव हुई। कूल किनारा की रक्षा का प्रयत्न अनुचित नही कहा जा सकता, पर बाढ के उमडते हुए पानी को तो जगह देनी ही होगी उस समोना ही होगा। विश्वासो और मान्यताओ के सहारे पुराने मूल्यो और रहन सहन की नीति रीति को सदा सदा के लिए अक्षुण्ण नही बनाए रखा जा सकता। बुद्धि मनुष्य के कण्टका कीर्ण पथ का प्रकाश दीप रही है। इस तथाकथित बुद्धिवाद की उच्छ खलता का समाधान विरोध म नही वरन् अधिक बोध म है अधिकाधिक ज्ञान की प्राप्ति म है। ज्ञान से अधिक स्वयं खर्ची वस्तु ससार म दूसरी नही है। यह ज्ञान है जो मनुष्य म सीझ कर उसे नम्र और नम्य बनाता है और टूटने से बचाता है। जनेन्द्र ने ठीक ही कहा है जो जानता है वह आवेग मे नही आता—देखकर, दूसरे का आदर करके चलता है।

आज का युग उत्पादन के क्षेत्र म क्राति का है। उत्पादन आर्थिक शब्दावली म कूता जाना है इसलिए वह आर्थिक वादो का है। क्योकि बड पैमाने पर अर्थ व्यवस्था राजनीति के द्वारा होती है इसलिए ये वाद राजनीतिक भी कहलाते है और क्योकि 'वाद' के लिए यह आवश्यक है कि उसका आधार किसी फिलासफी

या दर्शन या सिद्धात पर हो इसलिए प्रत्येक वाद का दर्शन भी है। पूजीवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सबको बनाए रखना चाहता है साम्यवाद व्यक्तिगत सुविधाएं सब तक पहुचाना चाहता है और समाजवाद इन दोनों के बीच किसी भी परिस्थिति म किसी भी करवट बैठ सकता है। कानूनी रूप से इन सब प्रकार के वादो का पोषण करने वाले राज्यो क पास ऐसे साधन उपस्थित है कि वे आवश्यकता पडने पर अपने किसी नागरिक का जसा उचित समझा जाए वसा दमन कर सकते हैं और इस दमन की रीति या मात्रा को देश विशेष की परम्पराए और मानसिक स्थिति निश्चित करती है। इन वादो म किसी सामान्य आस्था के अनुसार नतिकता और सदाचार का आग्रह करना विशेष अर्थ नही रखता। इनकी नतिकता और सदाचारिता वही होती है जो इनको कार्यान्वित करने वाले व्यक्तियो की होती है। वास्तव मे अपनी नतिकता और सदाचारिता के रूप के अनुसार ही विभिन्न दलों ने विभिन्न वादो को पोषण के लिए अपनाया है। इस विवेचन म जड की बातें दो हैं मनुष्य टिकता है नारे बदलते हैं। (पृष्ठ ६५) और मनुष्य की व्यवस्था को इतना तेजी से विकसित होना है कि वह विज्ञान के कदम से कदम मिलाकर चल सके। (पृष्ठ ६२)

पश्चिम खण्ड में यूरोपीय सभ्यता संस्कृति की एक झाकी है। इसम विषयो को जिन शीर्षको के अन्तगत बाँटा गया है व हैं पराजित नारीत्व यान विचार राष्ट्रवाद यह हिंसावादी संस्कृति, प्रेम परिवार शिक्षा उन्नति और नीति अर्थ क्षेत्र मे मूल्यो का सकट, अथ का परमार्थीकरण, अर्थ और काम और साहित्य और कला। जनेन्द्र का विचार है कि यूरोप म नतिकता के मूल्य बिखर गए हैं, अर्थ व्यवस्था के नीचे परिवार टूटता जा रहा है उसकी पवित्रता कलकित हो गई है, कोरमकोर कमाईबाजी की बाध्यता है। अर्थ की अपर्याप्तता का ही फल यह नही हुआ है अर्थ की बहुलता ने भी इसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया है। वासना और विलास स्वतन्त्रता का अधिकाधिक उपयोग करत जान पडते है। एक अस्थिरता पश्चिम म व्याप्त है। पर पूर्वी यारोप म जहा साम्यवाद कुछ जम चुका है अब कुछ स्थिरता आ गई है। वहा फिर लौट कर विवाह और परिवार की प्रतिष्ठा की जा रही है और तदनुकूल समाज व्यवस्था और राजतन्त्र का निर्माण किया जा रहा है (पृष्ठ १४०)। शक्सपियर को टाल्स्टाय की भांति, जनेन्द्र भी आन्तरिक कुरेद की अल्पता की दृष्टि स उन लेखको की श्रेणी म नही रख पात जो अनिवाय होते हैं और मानो विश्व दर्शन के प्रति एक नया आयाम खोल जाते हैं।

सब मिलाकर पश्चिम पर लिखी यह विवेचना हल्की और झीनी है। उस

योरोप के बारे म, जिसने लगभग पिछली तीन चार शताब्दियों से कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान, उद्योग और राजनीति म ससार का नतृत्व किया है, जिसने नवीन शक्तिशाली सभ्यता सस्कृति को जन्म दिया है और जिसने वतमान शताब्दी म मानो उसकी प्रसव घटना म दो महायुद्धों म रक्त स्नान कर पुन स्वास्थ्य लाभ कर लिया है जिसके चितन और विचारणा का प्रभाव पुस्तक के प्रत्यक वाक्य से ही नही, विरामादि चिह्नो तक म टपकता है मैं समझता हूँ कि उस योरोप की न्याय की दृष्टि से अधिक गम्भीर विवेचना की जानी थी। वह हम आज के प्रश्नो को गहराई स समझन म सहायता देती क्योकि आज जो प्रश्न हमारे बने हुए है व योरोप म ही जन्मे हैं और अब ससार पर छा गए हैं।

तीसरा खण्ड है भारत यह सबस बडा है। इसके प्रश्न जिन भागो म विभक्त किए गए हैं वे है सास्कृतिक सम्मिश्रण, जातीय राष्ट्रवाद और गाधी सविधान दलीय प्रजातन्त्र निर्वाचन हमारे दल और नेता भाषा का प्रश्न अव्यवस्था और अपराध सेक्स वेश्या शराब जेल प्रशासनिक टोल प्रादेशिक समस्याए सरकारी कमचारियो का प्रश्न। इस खण्ड मे भारत स सबधित प्राय सभी समस्याओ की चर्चा की गई है। वास्तव म समय और हम' यही है। हमारे प्रति समय की चुनौतियाँ इसी मे हैं। प्राचीन काल स भारत की सास्कृतिक परम्परा आज तक अविच्छिन्न और अखण्डित इसलिए चली आई है कि वह किसी चौखटे म जडकर नही बैठाई गई। वह मुक्त और इसलिए नम्य रही है। उसम हिंसा को मत आग्रह को स्थान नही मिला है जो कुछ पहुच पूजी के प्रति विनयी होकर माया आदर के साथ अगीकार किया गया तुच्छ और महान् का भेद नही रखा गया। परिवार का जसा पल्लवन यहाँ हुआ, कही नही हुआ। वसुधा कुटुम्ब बन गई और पशु पक्षी कीडे मकौडे तक उसमे सम्मिलित हो गए। तीथ धमशाला प्याऊ अतिथि परिव्राजक, सन्यासी उसके अपने वध और स्वस्थ अग है। व्यापक मानवता धम बनी। जो आया रहा वह विजातीय नही रहा। पर अग्रेज आए रह नही व अवश्य विदेशी बन रहे।

धार्मिक सहिष्णुता अपने अपन धम म गहर उतरकर उस स्थान पर पहुच जाने स आती है जहा ऊपरी दिखावटें दिखाई नही देती और व्यक्ति धम की जडो के उस गुम्फन मे पहुच जाता है जिसम से सब धर्मों व अकुर फूटे है जहाँ आकार का प्रवश नही है केवल सार मात्र धडकता है और अपने प्रेम रस से मनुष्य को और उसके आसपास को सींचता है। क्योंकि हिन्दुत्व का आधार उसका सार और उसकी आत्मा यहीं है इसलिए हिन्दू राष्ट्र का वाद सच्ची

धरती पर खडा है। हिंदुत्व सबका है। जो विनयी है, समर्पित है वह कोई हो हिंदुत्व मे बाहर नही है। यह विनय और अहिंसा कनव्य की कठिनता से विमुखता नहीं है। गांधी ने १६४७ म भारतीय सेना को काश्मीर-बचाव के समय आशीष देते हुए कहा था वहाँ रक्षा म मर जाना, लौटना नहीं। वही भारतीय राष्ट्र की आधार शिला है। यहाँ धर्मों की जड की पकड है टहनियो व पत्तियो की अपेक्षा नही है।

भारत की समस्याए अनक हैं। गिनने बठें तो अनगिनती है—खाद्य की है भाषा की है उद्योग की है रोजगार की है, पर मूलत भ्रष्टाचार की है चरित्र की है। सबके समाधान ज्ञात हैं केवल उन्ह व्यवहार म लाना है लागू करना है, पर लगता है कि हम उन्ह लागू करना नही चाहते कर नहीं सकते कर नही पाते। स्थिति गम्भीर से दूर नहीं है। जैनन्द्र क पास इसका उत्तर है और मैं समझता हूँ कि वह सही उत्तर है। व कहत हैं वे जिन्ह गांधी की याद है, स्वय इस स्थिति के लिए उत्तर बनकर उठें अन्यथा कोई उपाय नहीं है। भारत की पचास करोड सन्तान मे व कहाँ हैं जो समर्पित होंगे, उठेंगे आग बढेंगे, बीडा उठाएगे माग दिखाएग उस मशाल का ऊँचो करेंगे जिसके दशन को आँखें तरस रही हैं। चारित्रिक दुबलता कटे, साहस बढे ईमानदारी आए, सकल्प दृढ हो आलस्य घटे प्रमाद भागे, लाग जुटें, विज्ञान को जोतें मन म पैठे कि सारे आदश, उद्देश्य और भाव मनुष्य के लिए हैं मनुष्य उनके लिए नहीं है, तो क्या समस्याए खडी रह सकती हैं? पर यह होगा क्या? सरलता से नहीं होगा। मनुष्य जब जब आगे बढा है पीडा के माग से—रक्तपात और भुखमरी म से—बढा है। वास्तव म वह बढता नहीं, उसे बढना पडता है। हम सब मानो उस बरबस आग बढाने वाली महाशक्ति की ओर पीठ करके खडे है। हम उसके प्रति नमित नही होते। उसके कृपाकटाक्ष क अभिलाषी नही बनत। हम उसके सामन पडते हैं, जितना वह हम धकियाती है, उतना ही आगे हम सरकत हैं।

चौथा खण्ड है 'अध्यात्म'। इसमे अन्तरग, इन्द्रिय, मन ग्रह, चेतना सम्वारिता, कामासक्ति, सस्पेंस, रस, इंस्टिक्टस, भाव, कल्पना, स्वप्न, अलौकिक शक्तियाँ, अगविकार भाव, पाप, मृत्यु, पुनजन्म, कम विपाक सत्य का आग्रह बुद्धि और श्रद्धा, भाव विभाव ग्रह और आत्मा, कामाचार, ब्रह्माचार, और विराटगत ग्रह गौरव है। इस खड म इनसे अधिक प्रश्न उठाए गए हैं कि केवल कुछ के साथ ही समुचित न्याय हो पाया है। विषय रोचक होन पर भी उनके उत्तर जसे ठिठुरकर रह गए हैं। इन विषयो म जो शब्द काम मे आत हैं व पारिभाषिक हैं और उनकी परिभाषा कठिन इसलिए है कि शब्द का जो अथ

वक्ता के मन म होता है वह स्पष्ट रूप से भाषा मे बँध नही पाता। भाषा की अपर्याप्तता इस क्षेत्र मे जितनी दिखाई देती है उतनी चिंतन के किसी अ य क्षेत्र मे दृष्टिगोचर नहीं होती। यहाँ अधिकतर उत्तर एक परिभाषा के प्रति प्राथमिक प्रतिक्रिया स अधिक आगे नही बढते। हमारी, समस्त ससार की, साहित्यिक वृत्तियो और प्रवृत्तिया क मूल और विकास का मथन इस खण्ड म मिलने की आशा की जा सकती थी पर वहाँ (परोक्ष रूप म) कल्पना और यथाथ की सरचना की ही एक भाकी मिलती है।

कलाकार का यथाथ—सच तो यह है कि किसी का भी यथाथ—वह यथाथ नही है जो बाहर है या किसी दूसरे का है। वस्तुत यथाथ क्या है इसे कोई निश्चित रूप से नही कह सकता क्यांकि जो कहता है वह बाह्य यथाथ को अपनी दृष्टि और दशन म स गुजार कर कहता है। पर कल्पना सबकी अपनी है और उसका यह स्वत्व स्वीकार किया जाता है। उसक क्षेत्र मे हम स्वाधीन है। वास्तव मे हमारा यथाथ हमारी एक कल्पना है। बहुत स जन उस कल्पना स सहमत होते हैं इसलिए वह यथाथ कहलाती है। जब हम अपन इस यथाथ को अपने व्यक्तित्व की विचारणाओ भावनाओ और आकाक्षाओ के प्रकाश म पुन सयोजित करते हैं तो हमारे समान दृष्टि दशन वाले क लिए एक अनुकूल और रोचक वस्तु की रचना होती है और अ या के लिए कोरी कल्पना और निरी भावुकता की सृष्टि। पर जो कोरी कल्पना और निरी भावुकता कहकर तिरस्कृत का जाती है वही जब साहित्यिक कला-कौशल स भाषा की अच्छी पकड म आ जाती है तो विश्वबद्य महाकाव्या का ज म हो जाता है। जिस प्रकार हमारे कधो के ऊपर का भार अतर क भार की तुलना म अत्यल्प होता है उसी प्रकार हमारे हाथ की रचना अतर की रचना का एक लघु अश मात्र होती है। अतर की रचना वेदना से जितनी अधिक छलकती है उतनी ही अधिक पीडा वह कला की उँगलिया म उडेल जाती है।

जैनेन्द्र कलाकार है मुख्यत कथाकार। उनकी कथाओ की विशेषता पात्रा का मनोविश्लेषण है। पर व इस मनोविश्लेषण को अक्सर इस प्रकार उपस्थित नही करते कि पाठक को पात्र के मन की—नारी क मन की (क्योंकि जनेन्द्र के सुनिमित पात्र नारी हैं उनके पुरुषो का पौरुष बहुत कुछ शरद के पुरुषो की भाँति अप्रतिष्ठित रह गया है)—गति समझने म सुलभाव मिल। व उस पाठक के सम्मुख एक प्रकार के उलझाव एक प्रकार की गुत्थी के रूप म लाते हैं, उसम एक प्रकार का चमत्कार एक प्रकार की नाटकीयता अबूझता लक्षित होती है। वे उनके ऊपरी व्यवहारा का चित्रण करते हैं। भीतर स जो उन व्यवहारा का

संचालन कर रहा है उसे पर्दे के पीछे रखते हैं उस विषय में विशेष नहीं कहते। और नारी के साथ सेक्स है। इन्द्रिय निग्रह दिगम्बरता की साधना, ब्रह्मचर्य में उस पर आवरण पडता है। पर प्राचीन कथन के अनुसार अवगुण्ठन का पूर्ण अर्थ गोपन नहीं होता, उसमें इस गोपन के भटन के लिए उकसाव भी होता है। इन्द्रिय निग्रह में निग्रह के कुहास के भीतर इन्द्रिय के उद्देश्य की ज्योति प्रखर रहती है और सेक्स असेवन के प्रयत्न के भार से दबकर असेवन का 'अ' दृष्टि से ओझल हो जाता है। जैनेन्द्र की नारी बहती है पर ऐसे नहीं जैसे कि हवा, जो सागर की आर्द्रता को आकाश में हिम शिखरों के ऊपर पहुँचाती है वे बहती हैं उन धाराओं की भाँति जो पर्वत से उतरती हैं नीचे का खिंचती हैं और अपनी गति में लहराती, तरंगित होती, किनारों से टकराती क्षत विक्षत होने में पूर्णता और प्रौढ़ता अनुभव करती रस सिक्त होती, भरती, समाज के मानस सागर की ओर बढ़ती है और वहाँ एक हल्की सी खलबलाहट उठाकर शांत विलीन हो जाती है। जैनेन्द्र अपनी कथाओं के द्वारा अपने को उदघाटित करते हैं। उनके चिंतन का संसार सेक्स के चारों ओर है। उसी में से प्रेम, अहिंसा, विद्रोह और दान का उदय होना है।

कथाकार चिंतक होता है। उसकी कथाओं का व्यक्तित्व और आकर्षण उसके इसी चिंतन पर निर्भर होता है। इस चिंतन के दो स्थल हैं कथा की वस्तु और उसे उपस्थित करने की विधि। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं पर उनको विलगा कर देखना बहुत कठिन नहीं है। कथावस्तु विषयक चिंतन को हम कथा का दार्शनिक पक्ष और दूसरे को उसका कला पक्ष कह सकते हैं। 'समय और हम' कथा नहीं है। निबंध भी नहीं है बस जैनेन्द्र एक प्रभावशाली निबंधकार हैं। उसमें प्रश्नों से खंडित निबंधों के हल्के अंश बिखरे हुए हैं। उसमें कला का अंश स्वल्प है। यदि कुछ प्रधान है तो वह दार्शनिक पक्ष है। उसमें चिंतन की—विचार की—प्रधानता है। यहाँ उन्होंने प्रश्नों के सीधे उत्तर दिए हैं यद्यपि अनेक प्रश्नों की आकृति ऐसी है कि उनमें उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

जैनेन्द्र की कथाएँ केवल कथा मात्र नहीं हैं। उनमें एक प्रकार का विवेचन होता है जो कथा को एक गरिमामय विचार तत्त्व और एक विशिष्ट वातावरण प्रदान करता है। कथा के दोनों पक्ष—दार्शनिक और कला—रचयिता के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। दार्शनिक पक्ष के अंतर्गत उसके चिंतन की क्षमता और उन्मुखता उसकी कल्पना की तर्क संगतता और स्पष्टता और उसकी सृजन शक्ति की प्रौढ़ता और ओजस्विता समाहित होती हैं। इसके द्वारा लेखक सामाजिक विचारणा में अपना योग प्रदान करता है। लेखक जितना ओजस्वी होता है

उसकी रचना म उतनी ही तेजस्विता और विशिष्टता लक्षित होती है। जनेन्द्र ने अपनी कथाओं मे किसी तेजस्वी निजी, विशिष्ट कृति का निर्माण नहीं किया है। उन्होंने अपना ससार नही बनाया है, और उसका वतमान की आलोचना के लिए उपयोग नहीं किया है। उन्होने अपने आसपास से सामग्री को उठाया है, उसे अपनी दृष्टि मे देखा है, अपने रग से रँगा है अपनी तराश दी है, और स्थापित कर दिया है। वे परम्परा से मोहित हैं। वे पुरानी धारा के माग मे बहे हैं। उसको तोडकर उसके किनारे काटकर, नई धारा की रेखा डालने का विशेष प्रयत्न उनके यहा दृष्टिगोचर नही होगा। चिंतन की इस तेजस्विता का अभाव 'समय और हम' म भी विद्यमान है। भाषा के प्रश्न की बात करते हुए पृष्ठ ३०७ पर, 'हिन्दी का मोर्चा उर्दू से ठना, अग्रेजी से नहीं', पृष्ठ ४७४ पर, 'अग्रेजियत बढ रही है', पृष्ठ ४८१ पर, सरकार म हिन्दी चलाना और टलाना शीर्षकों के नीचे वे अपना वक्तव्य देते हैं। ये वक्तव्य, अन्य वक्तव्यों की भाँति कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की चर्चा करते हैं और तत्सबधी विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों के विषय में जैनेन्द्र के मत भाव को प्रकट करते जान पडते हैं। वे समस्या पर आक्रमण नही करते। समस्याओं के साथ मानसिक रूप से जूझने का प्रयत्न वहा दिखाई नही देता। उनके कारणों और उनसे सबधित परिस्थितियों आदि के विश्लेपण और अध्ययन की ओर उनकी विशेष रुचि नही है। व्यक्ति विशेष द्वारा किसी समस्या मे सम्बद्ध तत्त्वों के विश्लेपण का यह अथ नही होता कि उस क्रिया म से उसका समाधान निकल आएगा, पर समाधान निकालने के लिए यह अनिवार्य है कि समस्या का समुचित विश्लेपण और मथन हो। वतमान सामाजिक समस्याएं अत्यत जटिल हैं। किसी फार्मूले या गुरु किताब के उपयोग से अथवा सदिच्छा मात्र से उनका समाधान नही प्राप्त किया जा सकता। उनका कारगर समाधान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक मनीषियों द्वारा विभिन्न पहलुओं से उनका विश्लेपण किया जाए और फिर उन विश्लेपणों पर समन्वयक दृष्टि डाली जाए। ऐसी स्थिति म ही यह सम्भावना हो सकती है कि समस्या विशेष का सुलझाने के लिए कोई उपयोगी सूत्र दृष्टिगोचर हो जाए। 'समय और हम' से पाठक ऐसे विवेचना की आशा कर सकता है, पर इसकी दिशा म उसमे प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसा प्रयत्न, जैसा कि जनेन्द्र के कथा साहित्य से हमे आभास मिलता है, जनेन्द्र की प्रकृति म नही है। वे श्रद्धा से कातर हैं और समन्वय से अभिभूत। वे ससार-सरिता के तट पर खड़े होकर उसके प्रवाह को भावपूर्ण विनम्रता की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी दृष्टि कहती है—जो हो रहा है वह ठीक ही है उससे हम भाग नहीं सकते। हाँ सावधान, यह तट कहीं परा

के नीचे से न निकल जाए नहीं तो हम और तुम जो धारा से अलग रहना ही उचित समझते हैं कहीं के न रहेंगे।

जैनेन्द्र की जड़ प्राचीन में है पर नवीन ने उन्हें छुआ न हो ऐसी बात नहीं है। आधुनिक की झकझोर उन्होंने अनुभव की है और उसके प्रति उनकी प्रतिक्रिया बहुत स्पष्ट और प्राणवती हुई है। अनेक पार्थिव सुविधाओं से पूर्ण संसार की नवीन विचारणाओं में जहाँ एक ओर आध्यात्मिकता की सिसक और करुणा की कसक अनुभव की जा रही है वहाँ दूसरी ओर उसमें जटिलता के जाल में गुम्फित उत्साह का उफान भी है। आधुनिक मनुष्य पर मानो अपनी सभ्यता की विजय का उन्माद छाया हुआ है और वह अपनी इस विक्षिप्त-सी अवस्था में युद्धों की भीषण विभीषिकाओं से अपने इतिहास को रञ्जित करता हुआ मुस्कराकर आगे बढ़ रहा है। ताज़े घाव इतनी तेज़ी से भर रहे हैं कि उसकी इस अद्भुत जीवनी शक्ति पर आश्चर्य होता है। नवीन युग की इन प्राण स्निग्ध भावनाओं के प्रतिबिम्बन के लिए हिन्दी का बाल-गद्य विशेष समर्थ नहीं था। वह इन बिम्बों को सँभालने का प्रयत्न करता था पर वे उसकी भुजाओं में समाते ही न थे। हिन्दी को आधुनिक की आत्मा की स्मिति और तिलमिलाहट को वहन करने की क्षमता प्राप्त करने में जितनी सहायता जैनेन्द्र ने दी है उतनी किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं। इस क्षेत्र में उनका योग साहसिक और अद्वितीय है। उन्होंने हिन्दी के वाक्य को एक नई, स्वस्थ और मादक उन्मुक्तता दी है। अंग्रेज़ी वाक्य रचना के कुछ प्रयोगों को हिन्दी में उतार कर उसमें नई चटक और रंगीनी उत्पन्न की है। इससे हिन्दी के मौलिक सौन्दर्य में वृद्धि हुई है, उसमें विविधता आई है और उसके प्राणों में एक ऐसी स्फुरणा का संचार हुआ है जिसने उगती राष्ट्रीयता की इस नवीन भाषा को पंगु भावनाओं की परम्परा के आलिंगन पाश में पड़ कर जड़ हो जाने से बचा लिया है। इस क्रिया में जैनेन्द्र की अपनी उस भाषा शैली का विकास हुआ है जो उनकी कलाकृतियों में—कथाओं और निबंधों में—स्पष्ट अनुभव होती है और जिसके द्वारा जैनेन्द्र के वाक्यों के कुछ ढाँचे स्पष्ट अलग पहचाने जा सकते हैं।

'समय और हम' में जैनेन्द्र की शैली के विदग्धित वैभव के प्रदर्शन का विशेष अवकाश नहीं है। पर यहाँ भी उनके महत्त्वपूर्ण वाक्यों की रूपरेखा और ध्वनि पर अंग्रेज़ी की छाया दिखाई देती है इसलिए कि चिन्तन की प्रक्रिया हिन्दी शरीर धारण करने पर भी आत्मा में प्रेरणा में और निष्कर्ष में इतनी अंग्रेज़ी है कि उससे बचा नहीं जा सकता। वास्तव में उससे बचकर भागना वर्तमान जीवन की वास्तविकता से मुँह मोड़ना होगा सत्य से पलायन होगा। जैनेन्द्र जीवन में भावुकता के रूप में भले ही दृष्टिगोचर न हों, वे जीवन की वास्तविकता से न मुड़—

मोडने वाले है और न सत्य के नाम से जो कुछ समझा जाता है उसमे घबरान
वाले हैं। इस ग्रथ म जनेन्द्र की नली सीधी है साफ भी है। उसम जो कही-कहीं
साहित्य सिक्त और मिट्टी की माधी भीनी गध वाले देसी शब्दो का उपयोग है वह
रस का रुचिर वातावरण बनाता चलता है। पर उद्देश्यत यह चितन का, विचार।
का, ग्रथ है और इसलिए इसम स्पष्टता का स्वच्छता का वेधकता का, साथ
कता का बहुत ध्यान रखा गया है। प्रयत्न यह रहा है कि जो कहा जा रहा है
वह सामान्य हिन्दी पाठक द्वारा समझ लिया जाए यद्यपि अग्रेजी विन पाठक
कभी सामन से ओझल नहीं हो पाया है। कारण दुरूह नही है। यह समझा
जाता है कि जो कुछ जानता है वह अग्रेजी जानता है और जो अग्रजी नही
जानता वह कुछ नहीं जानता कम से कम इतना नही जानता कि उसकी
ओर विशेष और गभीर ध्यान दिया जाए। इसलिए जहा मन म अग्रेजी म
उठी बात का पर्यायवाची सुनिश्चित नही हो पाया है वहां 'अपराध के साथ
Thrill (पृष्ठ ५) बहुमतवाद के साथ Conformism (पृष्ठ ६५), 'व्यक्ति
पूजा के साथ Personality Cult (पृष्ठ ६८), 'राजसिक वृत्ति' के साथ
Kineticenergy (पृष्ठ ६६) 'मानवताओ के साथ Humanities (पृष्ठ १०७),
दिया गया है। इसी प्रकार एक्युरेसी और करेन्सी (पृष्ठ ४८३) यह खास
प्वाइट (पृष्ठ ५२८) कनेप्टो मेनिया तथा सस्पेंस (पृष्ठ ५५६) और मेसोकिज्म,
साडिज्म (पृष्ठ ६२८) शब्दो का उपयोग किया गया है।

समय और हम व्यवहार का ग्रथ है। व्यवहार का सचालन मनुष्य के बुद्धि
विवेक से कम और उसकी भावनाओ से अधिक होता है। पर यह बोध है जो
विवेक को स्वच्छ और ताजा रक्त पहुचाता है उसे स्वस्थ रखता है आग बढाता है
जिससे वह भावनाओ के प्राणो म चिर नूतनता डालता है उनका सस्करण करता
है और उनके द्वारा व्यवहार के नये अर्थ और नये रूप प्रदान करता है। इस
प्रकार का बोध नये समय की सृष्टि करता है हमारे द्वारा और यह समय हम
से—अपने निमाताओ से—आशा करता है कि हम उसे गलत नही समझेंगे
जो उसका पावना है वह उसे देंगे और अपना बोझ हल्का करेंगे।

समय और हम निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। दादा धर्माधिकारी ने
उसे तथाकथित सर्वोदयी लोगो की दृष्टि म सर्वांग सुदर और उपादेय कहा है।
सतोष की बात है कि जनेन्द्र ने गाधी को ही सामने रखा है तथाकथित गाधी
वाद से वे अपने को नही बाध पाए है। मैं ग्रथ की उपयोगिता इस बात म
समझता हू कि इसम उन अनेक प्रश्नो को स्पष्टता दी गई है जो जन मन म

डॉ० ब्रजगोपाल तिवारी

१४

सस्कृति का दार्शनिक विवेचन : सृजनात्मक मानववाद की भूमिका

डा० देवराज ने अब तक दशन और उपन्यास साहित्य म कई ग्रथ प्रकाशित किए हैं। दशन मे उनकी प्रथम रचना, उनकी पी एच० डी० थीसिस के आधार पर लिखी हुई अंग्रेजी की पुस्तक 'शकर का ज्ञान शास्त्रीय सिद्धान्त है। इस प्रकार उन्होने अपना दार्शनिक चिन्तन शकर के अद्वत वेदान्त के अध्ययन स प्रारभ किया। पर ज्ञान शनै श नवीन पाश्चात्य दशन के प्रभाव म अद्वत वदान्त से दूर हटन लग। पर विचार की परिपक्वता उन्ह ज्ञान शास्त्र एव तत्त्व मीमासा मे पाश्चात्य तक मूलक भाववादियो और नीतिशास्त्र मे नवीन सापेक्षवादियो तथा सुखवादियो के अखाडो स दूर ले गई। ऐसी अवस्था म वे मानववाद (Humanism) की ओर आकर्षित हुए और साथ ही साथ एक चिन्तनशील दार्शनिक होन के कारण उन्होने प्राय समस्त मानवीय विद्याओ और कलाओ—धम, शिक्षा राजनीति आदि—का गभीर अध्ययन करके सस्कृति का दार्शनिक विवेचन—(सृजनात्मक मानवतावाद) पर अपना डी० लिट० प्रबध प्रस्तुत किया। यह प्रबध उनके दोनो परीक्षको, अमरीकी प्रोफेसर एफ० एस० सी० नाथरॉप और डब्ल्यू ई० हॉकिंग को बहुत पसद आया। प्रोफेसर नाथरॉप न पाया कि प्रबध-लेखक ने विशाल दार्शनिक साहित्य को भली भाति पढा और उस पर मनन किया है और उसका विश्लेषण तथा उसकी आलोचनाएँ और निष्कष विषय से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार प्रो० हॉकिंग ने प्रमाणित किया कि विषय वस्तु की गभीरता ससार भर की प्राचीन और नवीन सम्बन्धित विचार धाराओ की व्यापक जानकारी विचार क्रिया म साहस और स्वातन्त्र्य मानव की समस्याओ के प्रति सहानुभूति, सत्य की

निष्कपट खोज तथा प्रतिपादन की शैली की स्पष्टता आदि गुणों के कारण लेखक ने अपने निबंध में असाधारण गुणों का परिचय दिया है।

अपने निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए लेखक को अनेक वादों का विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप से खडन करना पड़ा है अथवा भिन्न भिन्न मतों में अपना भेद प्रकट करना पड़ा है। ऐसे वाद अथवा मत सक्षेप में ये हैं —बीसवीं सदी के प्रबुद्धिवाद, सापेक्षवाद और सशयवाद, प्रत्ययवादियों का अतिमानववाद शिलर और लमाट के मानववादी-दर्शन आत्म निष्ठतावाद आवेग मूलक मूल्य सिद्धान्त मात्रा-मूलक पद्धतियाँ नवीन नर विज्ञान का दृष्टिकोण मार्क्स वादी मतव्य तर्क-मूलक भाववाद, क्रोचे के कला सबधी मत, मनोविश्लेषण वादी मतव्य, सशयवादी सिद्धात मनोवैज्ञानिक तथा समाज शास्त्रीय सिद्धांत, कला में प्रभाववादी सिद्धात तथा अभिव्यजनावादी सिद्धान्त, दर्शन सबधी स्पेनसर का मत, ईश्वर-सबधी एस० एलेक्जेण्डर की उक्ति, वैज्ञानिक यथार्थवाद, वर्तमान भोगवाद, वर्गवाद, प्रोफेसर लास्की का राज्य विषयक मत आदि।

उक्त खडन के साथ ही साथ लेखक ने दर्शन के विस्तृत क्षेत्र में अनेक वादों पर अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण, आंशिक मडन के रूप में, व्यक्त किया है। ऐसे विषयों की संक्षिप्त सूची तथा उनके मुख्य शीर्षक निम्नलिखित हैं —

मानवीय सृजन शीलतावाद, मानवीय सृजन शीलता की अभिव्यक्तियाँ है— सस्कृति और सभ्यता विज्ञान और दर्शन मानवीय विद्याओं की तीन विशेषताएँ—प्रसूनता मूल्यात्मकता, ऐतिहासिकता, सभ्यता का अर्थ है उद्योग तत्त्वों की प्रगति तथा सस्था-बद्ध जीवन सस्कृति की परिभाषा—वे क्रियायें जिनके द्वारा मनुष्य वास्तविक या कल्पित यथार्थ से निरुपयोगी रूपों में सम्बन्ध स्थापित करता है सभ्यता सास्कृतिक क्रिया की ही उपज है, विद्रोही और क्रान्तिकारी का भेद प्रतिभा और पाडित्य का भेद, कला में यथार्थ के प्रति सजग रहना है। कला की परिभाषा—रागात्मक सार्थकता वाले जीवन क्षणों की सृष्टि या अभिव्यक्ति समीक्षा की परिभाषा—कला-कृति के विश्लेषण, व्याख्या और मूल्याकन का प्रयत्न, चिन्तन के उदय का कारण अनुभवों में सगति की खोज दर्शन की परिभाषा—सास्कृतिक अनुभूति के विश्लेषण, व्याख्या और मूल्याकन का प्रयत्न सभ्य व्यवहार कर्तव्य-पालन है साधुता सास्कृतिक क्षेत्र की चीज है जेम्स का यह प्रस्ताव कि हम अध्यात्म क्षेत्र की प्रतिभाओं का अध्ययन करें उपयुक्त है धार्मिक या आध्यात्मिक अनुभूति की परिभाषा—एक रहस्यपूर्ण परिणति लक्ष्य अथवा उपस्थिति (सत्ता) की प्रतीति—जो जीवन के समस्त मूल्यों का आधार समझी जाती है। शिक्षा की

परिभाषा—शिक्षा सांस्कृतिक विरासत का नियन्त्रित और चयनात्मक सप्रेषण है, विविध मूल्यों के उत्पादन, उपभोग और रक्षण की क्षमताओं का सपादन ही शिक्षा का ध्येय है व्यक्ति, समाज और राज्य केवल जननीय सरकार ही अपनी शक्ति कम कर सकती है आत्मिक मूल्या पर गौरव की आवश्यकता—आत्म परिष्कार पर गौरव होना चाहिये सभ्यता और संस्कृति म समन्वय होना चाहिये—यही विश्व शांति और प्रभावशील विश्व व्यवस्था का आधार है।

अब हम प्रस्तुत पुस्तक के लक्ष्य एव विषय का साराश प्राय विद्वान् लेखक के ही शब्दों मे देने का यत्न करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक म एक नये जीवन दर्शन की रूपरेखा देने का प्रयत्न किया गया है। इस जीवन दर्शन को सृजनात्मक मानववाद की सज्ञा दी गई है और उसके प्रकाश से मानवीय अनुभूति के कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो का स्वरूप समझने की कोशिश की गई है। एक नई जीवन दृष्टि के प्रतिपादन के रूप म युग की कुछ जरूरतें रहती है। हमारे युग की जरूरतें या समस्याएँ अनेक और विविध हैं। हमारी सबसे बडी जरूरत है—जीवन मूल्यो क प्रति एक भावात्मक दृष्टिकोण। आज के मनुष्य के मन मे यह धारणा धीरे धीरे घर कर गई है कि हमारे नैतिक तथा दूसरे मूल्य अधिकाश मे सापेक्ष होत है। प्रस्तुत पुस्तक का एक प्रयोजन है मूल्यो सबधी इस सशयवादी तथा निषेधात्मक मनोभाव का निराकरण। इसका दूसरा प्रयोजन है मनुष्य की उन क्रियाओं की जिनके द्वारा वह विभिन्न मूल्यो की सृष्टि और उपभोग करता है सम्यक् अवगति प्राप्त करना। इन उद्देश्यो की पूर्ति क लिए लेखक द्वारा किय हुए व्यवस्थित विवेचन के प्रयत्न ने क्रमश एक व्यापक संस्कृति दर्शन का रूप धारण कर लिया। यह समझा गया कि इस प्रकार का दर्शन ही उन अनेक समस्याओं का समुचित समाधान द सकता है जो हमारे युग को आन्दोलित कर रही हैं।

आज के वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विचारक जिनम अधिकाश नर विज्ञानी और समाज शास्त्री ह सब प्रकार के मूल्यो पर आधारित सिद्धान्तो क प्रति दावा का भाव रखते हैं। उनकी धारणा यह है कि मूल्यो की बात करने वाला शास्त्र अवैज्ञानिक होता है। इस प्रचलित मतवाद या फैशन क विरुद्ध प्रस्तुत निबंध म यह प्रस्तावित किया गया है कि दर्शन को विज्ञान से भिन्न ही होना चाहिये। मनुष्य की समस्त क्रियाओ का लक्ष्य मूल्यो का उत्पादन है। मनुष्य जानने की इच्छा करता है—या तो इसलिये कि जानना अपने म एक संतोषप्रद अनुभव है अथवा इसलिये कि उसके द्वारा बाह्य प्रकृति को अपनी जरूरतो के अनुरूप ढालने म मदद मिलती है। ज्ञान दो प्रकार का होता है वैज्ञानिक

और दार्शनिक । वैज्ञानिक बोध हम मुख्यत परिवर्तनगत वस्तुओं तथा घटनाओं पर नियंत्रण देता है इसके विपरीत दार्शनिक बोध वह है जो हम अनुभूति एवं चेतना के उच्चतर तथा निम्नतर रूपों में विवेक करना सिखलाये। इस दृष्टि से हम दर्शन की परिभाषा इस प्रकार से कर सकते हैं दर्शन का कार्य मनुष्य के जीवन में सम्बन्धित चरम मूल्यों को समझना है। जिसे हम वैज्ञानिक व्याख्या कहते हैं वह कारण मूलक तथा वस्तुओं के अस्तित्व से संबंध रखने वाली होती है अर्थात् वह उन स्थितियों या दशाओं का संकेत करती है जो वस्तुओं या घटनाओं के आविर्भाव तिरोभाव और विशेष अवधि तक बने रहने में सम्चरित होती हैं। इसके विपरीत दर्शन का कार्य मनुष्य की निरुपयोगी सांस्कृतिक क्रियाओं की व्याख्या और मूल्यांकन करना है। इस दृष्टि से नीतिशास्त्र सौन्दर्य दर्शन और अध्यात्म दर्शन उसी प्रकार दर्शन के अंग हैं जैसे कि तर्कशास्त्र और ज्ञान-मीमांसा।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल प्रयोजन रचनात्मक है। फिर भी लेखक को पग-पग पर विपरीत वादों का खंडन करना पड़ा है आरम्भ ही में तर्क मूलक भाववाद से मतभेद प्रकट करते हुए उसकी परीक्षा लेखक को करनी पड़ी है कारण यह है कि उक्त सम्प्रदाय केवल तर्कशास्त्र की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है और वह नीतिशास्त्र सौन्दर्य दर्शन तथा अध्यात्म-दर्शन को सन्देह की दृष्टि से देखता है अर्थात् यह कहता है कि वे प्रामाणिक विद्यायें नहीं हैं।

तर्क मूलक भाववादियों की यह निश्चित धारणा है कि दर्शन को सौन्दर्य नैतिकता आदि के संबंध में मतामत प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं है। इसका अर्थ यह है कि दर्शन के अध्ययन से हम किसी प्रकार के जीवन विवेक को पाने का यत्न नहीं करना चाहिये।

दर्शन की यह वर्तमान स्थिति संकट की स्थिति कही जा सकती है। यदि दर्शन को जीवन के मूल्यों के बारे में कुछ नहीं कहना है यदि वह हमें जीवन-विवेक नहीं दे सकता यदि वह विज्ञान का सहकारी-मात्र है और उसका विज्ञान से कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा स्वामी से सेवक का होता है यदि दर्शन का कार्य वैज्ञानिक चिन्तन के मार्ग को साफ करना भर है, तो यह स्पष्ट है कि उसका जीवन के उन पहलुओं से जो हमें महत्त्वपूर्ण लगते हैं कोई सम्पर्क या लगाव नहीं रह जाता। अतः हम मानवीय व्यवहार का अध्ययन उन पद्धतियों से नहीं कर सकते, जिनसे प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। फलतः लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार की वैज्ञानिक अथवा गणितात्मक पद्धति की आलोचना की है। किन्तु साथ ही साथ लेखक रहस्यमय कापनिक अथवा

तत्त्व कल्पना म समुचित (Metaphysical) पद्धति से उतना ही परहेज करता है जितना कि गणितात्मक पद्धति से। कई आध्यात्मिक विचारकों की पद्धति बुद्धि विलासी (Speculative) है अथवा रहस्यवाद के समीप पहुँच जाती है जबकि प्रस्तुत लेखक को दार्शनिक चिंतन की वह शैली पसद है जो परिचित अनुभव से अधिक दूर नहीं जाती।

अनेक विचारकों के मत म दर्शन का विषय कोई इंद्रियातीत तत्त्व पदार्थ नहीं है। दर्शन का काम मानवीय चेतना के उन सामान्य रूपों का विश्लेषण और व्याख्या है जो स्वय मे मूल्यवान् समझे जाते है।

इस पुस्तक मे लेखक ने प्रमाणों पर अधिक बल देते हुए अनेक मतों और वादो स मतभेद प्रकट किया है। जहाँ उसने एक ओर प्रकृतिवाद तथा भौतिक वाद को अस्वीकार किया है वहाँ वह किसी श्रेणी के अध्यात्मवाद या प्रत्यय वाद को भी स्वीकार नहीं कर सका है। प्रस्तुत पुस्तक मे दार्शनिक चिंतन और बोध का प्रमुख ध्येय मानव व्यक्तित्व को अधिक परिष्कृत और श्लाघ्य बनाना ही बताया गया है।

प्रस्तुत लेखक के विचार म यह तो उचित ही है कि हम अपनी प्राचीन दार्शनिक धरोहर पर गर्व करें और अपने देश के अनेक मनीषियों, जैसे स्वामी विवेकानन्द लोकमान्य तिलक श्री अरविंद गाधी जी आदि की विचार धाराओं का भी आदर करें, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आज हम, नये युग के नय बोध और प्रश्नों को ध्यान म रखते हुए नवीन साहसपूर्ण चिंतन न करें। आज हम ज्ञान विज्ञान के किसी भी क्षेत्र म पाश्चात्य देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों की उपेक्षा नहीं कर सकते। हम उपेक्षा कर भी नहीं रहे ह जनतन्त्र तथा समाजवाद के सम्बद्ध प्रयोगों एव बढ़ते हुए औद्योगिक प्रयत्नों के रूप म आज पाश्चात्य संस्कृति हमारे जीवन के भीतरी कक्षों म प्रवेश कर चुकी है।

इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि हम प्राचीन दर्शनों और विचारकों की उपेक्षा करनी चाहिए या उनसे हम कुछ नहीं सीखना है। आज के मनुष्य को उपयोगी जीवन विवेक प्राप्त करने के लिये मानव अतीत के समस्त संचित बोध की आवश्यकता है। अत हम प्राचीन यूनान, चीन ईरान आदि देशों की संस्कृतियों का भी तुलनात्मक आकलन करना चाहिये। विशेषत हम विनम्र भाव से इन प्राचीन देशों की आध्यात्मिक परपराओं को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

आज के भारतीयों को एक बात विशेष रूप म याद रखनी चाहिये हमारी

वर्तमान संस्कृति का माप और मूल्यांकन केवल हमारी प्राचीन धराहर के आधार पर नहीं किया जायेगा, वैसा करने के लिए देखना होगा कि साम्प्रतिक स्थिति क्या है। वस्तुत हम समृद्ध प्राचीन धराहर को ठीक से तभी समझ और सम्हाल सकते हैं जब हममें पर्याप्त विचार शक्ति और धार्मिक क्रियाशीलता तथा लगन हो। यह गुण हमारे आगे बढ़ने और दूसरे देशों के बीच पुनः गौरव-पूर्ण स्थान पाने की आवश्यक शर्त है।

जो व्यक्ति एक नवीन जीवन-दर्शन या दृष्टि का विकसित करना चाहता है उसे अनिवार्य रूप से युग बोध और युगानुभूति के प्राय सभी क्षेत्रों की परीक्षा और समीक्षा करनी पडती है और यह बताना पडता है कि उनमें से प्रत्येक का जीवन के व्यापक प्रयोजन की दृष्टि से क्या और कहाँ स्थान है। अतः इस पुस्तक में मानवीय सृजनशीलता का अध्ययन यह समझने के लिये किया गया है कि मनुष्य द्वारा किये गये मूल्यों के उत्पादन और उपभोग में उसका क्या हाथ रहता है। यहाँ सृजनशीलता की धारणा का उपयोग जहाँ एक ओर मानवीय संस्कृति के विभिन्न रूपों के बोध या व्याख्या के लिये किया गया है, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक मनुष्य की प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिये भी।

इस प्रकार इस पुस्तक की विषयवस्तु बड़ी व्यापक है। आरंभ में तो अनेक प्रमाणों की समीक्षा करते हुए विद्वान् लेखक ने संस्कृति के दार्शनिक विवेचन का ठोस आधार ढूंढा है, फिर संस्कृति के विविध क्षेत्रों की व्याख्या की है और अंत में अपने सिद्धान्तों का प्रयोग आधुनिक जीवन की प्राय समस्त समस्याओं का हल करने में किया है। लेखक को अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिए अनेक शब्द तथा व्यंजनाएँ गढ़नी पड़ी हैं और अपने मत की स्थापना के लिए अनेक विद्वानों के सिद्धान्तों के सारगर्भित अंशों का सहारा लेना पड़ा है।

अब लेखक की परिभाषाओं और उक्तियों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

मानव निर्मित परिवेश की प्राय प्रत्येक ऐसी चीज जो मानव-जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है, मानवीय सृजनशीलता में उद्भूत हुई है।'

×   ×   ×   ×

यह सृजनशीलता वास्तविकता तथा आंतरिक जीवन दोनों की अपेक्षा में व्यापृत होती है। पहली दशा में उसका लक्ष्य उपयोगिता होता है और दूसरी में मनुष्य के आंतरिक जीवन का प्रसार और समृद्धि उपयोगिता के धरातल पर क्रियाशील होती हुई मानवीय सृजनशीलता औद्योगिक वस्तु क्रम (Technological Order) को उत्पन्न करती है जो सभ्यता का एक आवश्यक अंग है, मानवीय जीवन का निरुपयोगी, किन्तु अर्थवती संभावनाओं का अन्वेषण करती हुई

वह मस्कृति की सृष्टि करती ह जिसकी अभिव्यक्ति कला तथा चिंतन की कृतियो मे होती है ।

× × × ×

'सस्कृति का अथ है सृजनात्मक अनुचि तन । उसका निर्माण उन क्रियाओ द्वारा होता है जिनके द्वारा मनुष्य यथाथ को सारव, कि तु निरुपयोगी छवियो की सम्बद्ध चेतना प्राप्त करता है । सस्कृति की दूसरी परिभाषा इस प्रकार होगी—वह उन क्रियाओ का समुदाय है जिनके द्वारा मनुष्य के आत्मिक (मानसिक) जीवन मे विस्तार और समृद्धि आती है ।'

× × × ×

यह आश्चय की बात है कि विभिन्न कोटियो के मानववादी विचारक मनुष्य की नाक्तियो तथा उपलब्धियो म गव की भावना रखते हुए भी उस आध्यात्मिक मनोवृत्ति की प्रकृति और साथकता का अन्वेषण नही करना चाहते जो सत चरित्र जैसी उच्च वस्तु को उत्पन्न करती है । इस चरित्र का महत्व कला तथा चिंतन की कृतियो से किसी प्रकार भी कम नही है ।

× × × ×

मूल्यो की गुणात्मक चेतना का सर्वोच्च रूप मोक्ष धम या आध्यात्मिक मनोवृत्ति है । यह मनोवृत्ति अपने को मुख्यत दो रूपो म व्यक्त करती है—साधारण लोग जिन जिन छोटी चीजो की विशेष कामना करते हैं उनके प्रति वैराग्य भावना म और उदारता तथा त्याग की साधारण क्रियाओ म जो कि सत प्रकृति की अपनी विशेषताए हैं । वस्तुत एक व्यक्ति उसी हद तक उदार तथा परहितकारी हो सकता है जहाँ तक उसने सतो के विशिष्ट गुण—अपरिग्रह मूलक उदासीनता—का आकलन किया है ।

× × × ×

'धार्मिक तथा आध्यात्मिक अनुभूति हमारे मत म एक रहस्यपूर्ण परिणति, लक्ष्य, उपस्थिति (सत्ता) की प्रतीति है जो जीवन के समस्त मूल्यो का मूल या आधार समझी जाती है—धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति का सबध मनुष्य के सपूर्ण चेतना मूलक जीवन तथा अनुभूति से होता है । वस्तुत वह अनुभव मनुष्य की सपूर्ण अथवती अनुभूतियो की प्रतीयमान एकता रूप होता है । इस दृष्टि म देखने पर यह जान पडेगा कि दर्शन तथा धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति म घनिष्ट सम्बन्ध है । धम चेतना म जिस एकता की धुधली प्रतीति होती है उसे दर्शन तक शास्त्राय तथा अन्य मूल्यो के आलोक म समझने का प्रयत्न करता है ।'

× × × ×

'मनुष्य के सांस्कृतिक इतिहास में धर्म का सम्बन्ध उसकी सभी महत्त्वपूर्ण क्रियाओं से रहा है पौराणिकता तथा जादू से अनुष्ठान और नैतिकता से, विज्ञान और दर्शन से, संगीत और स्थापत्य से, कला और साहित्य से। श्री हार्लिंग ने धर्म को 'कलाओं की जननी' कहा है।

× × ×

'बर्ट्रेण्ड रसेल के अनुसार प्रत्येक ऐतिहासिक धर्म के तीन पहलू रहे हैं— चर्च अथवा पुरोहित मंडल, कतिपय अनुष्ठान, और व्यक्तिगत नैतिकता के नियम। इन तीनों ही रूपों में धर्म का विज्ञान से झगड़ा होता आया है। यह भी स्पष्ट है कि इस झगड़े में लगातार विज्ञान की जीत होती गई है और धर्म की हार। इसलिये यह प्रश्न उठता है कि धर्म का क्या भविष्य है? अथवा क्या धर्म का कोई भविष्य है? क्या धर्म नाम की वस्तु कुछ दिनों बाद तिरोहित ही नहीं हो जायेगी? यहां हम पाठकों को याद दिलायेंगे कि कुछ विचारकों के अनुसार स्वयं दर्शन भी एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में कालान्तर में तिरोहित हो जायगा। तर्क मूलक भाववादियों ने अभी ही तत्त्व मीमांसा का निराकरण कर दिया है। उनसे पहले एंगल्स ने अपनी "डूहरिंग-निरास' (Anti Duhring) पुस्तक में यह घोषणा की थी कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को विज्ञानों से भिन्न किसी दर्शन की जरूरत नहीं है। किन्तु इन निराशापूर्ण भविष्य-वाणियों के बावजूद दार्शनिक चिन्तन चलता ही जा रहा है हमारा विश्वास है कि इसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभव तथा संवेदना भी चलते ही रहेंगे। कारण यह है कि दर्शन और मोक्ष धर्म दोनों का विषय जीवन के मूल्य हैं न कि तथ्य, जब तक मनुष्य मूल्यों का अनुसन्धान करता रहेगा तब तक वह दार्शनिक आध्यात्मिक खोज में विरत नहीं होगा। दार्शनिक होने के नाते मनुष्य सम्पूर्ण मूल्य क्रम को समझ लेना चाहता है धार्मिक होने के नाते वह उच्चतम मूल्यों की उपलब्धि कर लेना चाहता है। विज्ञान और दर्शन तथा अध्यात्म में जो विरोध है उसे एक दूसरे ढंग से प्रकट किया जा सकता है। विज्ञान का काम है सब प्रकार के तथ्यों के अस्तित्व की व्याख्या करना। वैज्ञानिक व्याख्या मूलतः कारणवादी व्याख्या होती है। प्रतीत्य समुत्पाद का बौद्ध सिद्धान्त बतलाता है कि यह होने पर यह होता है उसके उत्थित होने से उसका उदय होता है उसके न होने से यह नहीं होगा उसके विनाश से यह विनष्ट हो जाता है। ये वक्तव्य वैज्ञानिक कथनों तथा निषेधों के सामान्य रूप को प्रकट करते हैं। उनमें कार्य-कारण मूलक सम्बन्धों तथा अन्योन्याश्रित परिवर्तनों (Functional Relations) दोनों का समावेश हो

जाता है। इसके विपरीत दार्शनिक वक्तव्य उन सम्बन्धों का उद्घाटन करते हैं जो तर्क मूलक आधार (Ground) तथा उसके निष्कर्षों (Consequences) में होते हैं और उन सम्बन्धों का भी जो दूसरे मूल्यात्मक मानों के प्रयोग में निहित हैं। धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति के उदय में दार्शनिक कही जाने वाली प्रतीतियों का महत्त्वपूर्ण हाथ रह सकता है।

× × ×

'यह प्रेम और मैत्री सांस्कृतिक जीवन का आवश्यक अंग है। वे उस जीवन की आवश्यक हेतु स्थितियों को भी निर्मित करते हैं।

× × ×

"एक सृजनशील व्यक्ति दूसरे मनुष्यों में इसलिये रुचि नहीं लेता कि वे आगे चलकर उसके लिये लाभकारी सिद्ध होंगे बल्कि इसलिये कि वह उनके सम्पर्क में अपने अस्तित्व को समृद्ध कर सकता है। यदि राष्ट्र-संघ जैसी संस्थाएं मानव जाति की विभिन्न इकाइयों में एकता स्थापित करना चाहती हैं तो उन्हें चाहिये कि व्यक्तियों और जातियों में इस बात का प्रचार करें कि वे आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्रियाओं को अधिक महत्त्व दें और दूसरे देशों की वैसी क्रियाओं में साझेदार बनें। यही विश्व शान्ति और प्रभावशील विश्व व्यवस्था का आधार है।'

आलोचना

एक ओर लेखक भौतिकवाद से परहेज करते हैं तो दूसरी ओर वे ईश्वरवाद का भी बहिष्कार करना चाहते हैं। भौतिकवाद के विषय में उनका मत है कि वे वास्तविकताएं जो आम तौर से मानवीय हैं भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र जैसे विज्ञानों की पकड़ में बिलकुल ही नहीं आ सकतीं। इसलिये मानवीय जीवन तथा अनुभूति के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण समीचीन नहीं है। इसके अतिरिक्त लेखक ने कई स्थलों पर 'समाधि' जैसे इन्द्रियातीत अनुभवों, साधुओं और सन्तों के धार्मिक अनुभवों, मोक्ष के आदर्श के सुन्दर रूपों, अद्वैतवादियों के मनुष्य को नये सांचे में ढालने के प्रयत्नों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों के सुन्दर विचारों आदि की प्रशंसा की है। इससे कहा जा सकता है कि लेखक का दृष्टिकोण उदार तथा व्यापक है।

ऐसी दशा में यह समझ में नहीं आता कि लेखक ने ईश्वर, ब्रह्म जैसे पदार्थों का बहिष्कार क्यों किया है। वे कहते हैं— हमारी अलौकिक अथवा अतिमानस वास्तविकताओं में आस्था नहीं है। इसका मतलब यह है कि हम

ईश्वर, ब्रह्म जैसे पदार्थों की जिनकी स्थिति मानवीय अनुभूति से परे समझी जाती है कल्पना को उचित नहीं समझता। हमारी राय में लेखक का यह संकीर्ण दृष्टिकोण उनके अन्य स्थलों में प्रदर्शित व्यापक और उदार दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता। "सत्य" अथवा "आत्मा" की प्राथमिकता की स्वीकृति भी तो मनुष्य के बौद्धिक एवं काल्पनिक अनुभवों के अन्तर्गत है। लेखक ने स्वयं संकीर्ण इन्द्रिय-जन्य अनुभववाद का खंडन किया है और यह भी माना है कि कुछ मानवीय अनुभूतियाँ गणित अथवा भौतिक विज्ञान की पद्धतियों से सिद्ध नहीं की जा सकती, और ऐसी स्थिति में विचारक को उतनी ही प्रामाणिकता स्वीकार करनी पड़ती है जो उस दशा में उपलब्ध हो सके। तब तो "आत्मा", "ब्रह्म" आदि अनुभूतियों और कल्पनाओं का बहिष्कार लेखक की विचारावली में आत्म विरोध और असंगति के दोष प्रकट करता है। ऐसा लगता है कि लेखक केवल एक नुक्ते के फेर में 'खुदा' से 'जुदा' हो गया है और उसकी दृष्टि में, महत्त्व के एक स्थल पर, थोड़ा-सा धुंधलापन आ गया है।

इसी प्रकार विद्वान् लेखक के इस मत में, कि मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी सृजनशीलता में है, कुछ स्वेच्छाचार-सा दृष्टिगोचर होता है। हमारे विचार में मनुष्य के गुणों की वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक व्याख्या में अनेक गुण ऐसे मिल सकते हैं जिनका महत्त्व सृजनशीलता से कम नहीं है।

फिर भी, समग्र दृष्टि से देखने पर हम इस बात पर बल देने में संकोच नहीं है कि प्रस्तुत पुस्तक की गणना हिन्दी में आधुनिक दार्शनिक साहित्य के उत्तम ग्रन्थों में होनी चाहिए।



डॉ० बच्चन सिंह

१५

कलम का सिपाही : एक युग का सन्दर्भ

प्रेमचन्द एक व्यक्ति का नाम नहीं है—नवाबराय एक व्यक्ति का नाम है। प्रेमचन्द एक युग का नाम है उसके सम्पूर्ण सदर्भों का नाम है। गरीब घराने म पैदा होने वाले जिन्दगी भर गरीबी म जूमने वाले हजारों व्यक्तियों का एक नाम है—प्रेमचन्द। उसकी जिन्दगी करोडों किसानों और मजदूरों की जिन्दगी थी। वह किसानों का किसान था, मजदूरों का मजदूर। वह मुदर्रिस था स्कूलों का सब डिप्टी इसपेक्टर था सम्पादक था कलम का सिपाही था। चाल-ढाल रहन-सहन, आचार विचार, वेश भूषा में वह टिपिकल भारतीय था। गो कि गालिब ने लिखा है कि आदमी को भी मुयस्सर नहीं इसाँ होना लेकिन प्रेमचन्द सबसे पहले इसान थे।

इन सब जिम्मेवारियों का निर्वाह करने वाला प्रेमचन्द एक सरल सीधी रेखा की तरह था। उसमें न कोई वक्रता है और न उतार चढ़ाव जैसा बहुत से पश्चिमी लेखकों के जीवन म देखा जाता है। प्रेमचन्द ने स्वय अपने सम्बन्ध म लिखा है—'मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है जिसम कहीं कहीं गढे तो है पर टीलों पर्वतों घने जगलों गहरी घाटियों और खडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाडों की सैर के शौकीन है उन्हे तो यहाँ निराशा ही होगी। इस पर जीवनी लेखक ने टिप्पणी की है—यानी कि जिसे आना हो समझ बूझ कर आये।

उसने आगे लिखा है—और सच तो यह है कि अगर ऐसी कुछ बात ही न था पडनी तो शायद उस व्यक्ति ने अपने बारे म इतना भी न लिखा होता। कोई पूछता तो शायद वह कह देता मेरी जिन्दगी म ऐसा है ही क्या जो मैं किसी को सुनाऊँ। बिलकुल सपाट समतल जिन्दगी वैसी ही जैसी देश के और करोडों लोग जीते हैं। एक सीधा सादा गृहस्थी के पचडे म फँसा हुआ, तग दस्त

मुदर्रिस, जो सारी जिन्दगी कलम घिसता रहा इस उम्मीद मे कि कुछ आसूदा हो सकेगा मगर न हो सका। उसमें क्या है जो मैं किसी को सुनाऊँ ? मैं तो नदी के किनारे खडा हुआ नरकुल हूँ हवा के थपेडो से मेरे अन्दर की आवाज पैदा हो जाती है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है जो कुछ है उन हवाओ का है जो मेरे भीतर बजीं। मेरी कहानी तो बस उन हवाओ की कहानी है उन्हे जाकर पकडो मुझे क्यो तग करते हो।'

कहना न होगा कि अमृतराय ने प्रेमचन्द की चुनौती को स्वीकार किया और उनके भीतर बजने वाली हवाओ को पकडने तथा उन्हे अर्थ देने की कोशिश की। सपाट जिन्दगी को ऊपर से नहीं बल्कि भीतर से पकडना होता है। कालरिज के विचार से यदि साधारण से साधारण मनुष्य की जिन्दगी को ईमानदारी और सच्चाई से पेश किया जाय तो वह रुचिकर और गम्भीर हो सकती है। किन्तु किसी साधारण व्यक्ति की जीवनी से कलाकार की जीवनी भिन्न होगी क्योकि वह साधारण होने के साथ साथ असाधारण होती है। किसी लोकनायक सेनापति या धर्मगुरु की जीवनी से लेखक कलाकार की जीवनी अलग होगी। इसका कारण यह कि लेखक और कलाकार जीवन को समग्रता मे ग्रहण करता है। इसलिए लेखक की जीवनी के सम्बन्ध मे मुख्यत तीन प्रश्न उठाये जाते है—

(१) क्या यह जीवनी उसके लेखन के मूल्याकन मे सहायक सिद्ध होती है ?

(२) क्या इससे लेखक नामधारी मनुष्य के नैतिक बौद्धिक तथा भावात्मक विकास का अध्ययन किया जा सकता है ?

(३) क्या लेखक की रचना प्रक्रिया के समझने मे यह मूल्यवान् सिद्ध होती है ?

यो तो इन तीनो प्रकार के दृष्टिकोणो से तीन प्रकार की जीवनिया लिखी जा सकती है और लिखी भी गयी हैं। किन्तु सूक्ष्म विचार करने पर ये एक ही प्रश्न के तीन आयाम हैं। इन्हे कलम का सिपाही के सम्बन्ध मे भी उठाया जा सकता है।

जहा तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है यह निश्चित है कि साहित्यिक रचना का जीवनीपरक अर्थापन खतरे से खाली नहीं है। रचना और जीवन का सम्बन्ध-स्थापन सूझ बूझ और समझदारी पर निर्भर है। रचना जीवनी की अनुकृति नहीं है। इस अनुकृति मान लेने पर एमिली ब्रोंटे के सबध मे कहा गया कि उसने हीथक्लिफ (Heathcliff) की अघवासना का स्वय अनुभव किया था। कुछ लोगो का यहाँ तक कहना है कि वुदरिंग हाइटस स्त्री द्वारा लिखा ही नहीं जा सकता। इस प्रकार के ऊल-जलूल तर्कों का उत्तर देते हुए

एक लेखक ने कहा कि इन सिद्धान्तों के आधार पर कहा जा सकता है कि शेक्सपियर पुरुष नहीं, स्त्री था। दांते की जीवनी लिखते समय उसकी रचनाओं के लम्बे उद्धरण दिए गए हैं। अमृतराय ने भी 'कलम का सिपाही' में इस पद्धति को अपनाया है।

जीवनी साहित्य दूसरे प्रश्न को ज्यादा सही रूप में उपस्थित कर सकता है। रचना प्रक्रिया का समझने में उसका किंचित् योग होता है क्योंकि रचना प्रक्रिया को रचना के भीतर से समझना अधिक प्रामाणिक होता है। मेरा ख्याल है कि लेखक की जीवनी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन उसे युगीन सदर्भ में प्रस्तुत करना है। उसमे उसकी रचना, वैचारिकता, भावनात्मक विकास, रचना प्रक्रिया आदि पर प्रकाश पडता है इसमें सदेह नहीं। किन्तु जहाँ तक इन बातों का सम्बन्ध है जीवनी-लेखक और जीवनी के पाठक दोनों को पर्याप्त सतर्क रहना चाहिए।

जीवनी का सम्बन्ध हिस्टिरियोग्राफी से है। अत जीवनी लेखक के लिए आवश्यक है कि उसे तत्कालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का पूरा-पूरा बोध हो। इतिहासकार जिस प्रकार तथ्यों का अनुसंधान तथा उसकी प्रामाणिकता की जाँच करता है, उसी प्रकार जीवनी लेखक भी कलाकार की डायरी, जर्नल पत्र, संस्मरण लेखन आदि की वास्तविकता को परखता है। उन्हें उचित सदर्भ में रखकर जीवनी को प्रामाणिक और रोचक बनाता है।

किन्तु जीवनी लेखक का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है जीवनी की पुनरचना करना। डायरी पत्र आदि को अपेक्षित सदर्भों में रख देना एक बात है और उनकी सहायता से पुनरचना दूसरी बात। यह पुनरचना जीवनी को साहित्य की कोटि देती है। समग्रत विचार करने पर 'कलम का सिपाही' में प्रेमचन्द की जीवनी का पुनर्निर्माण हुआ है यद्यपि कुछ चीजों को औचित्यपूर्ण सदर्भ नहीं मिल सका है।

पर, प्रेमचन्द न डायरी लिखते थे, न जर्नल। इसलिए लेखक ने पत्रों, संस्मरणों और उनके लेखन का उपयोग जीवनी के लिए किया है। प्रेमचन्द के व्यक्तित्व निर्माण में उनके गाँव और गांधीवादी आन्दोलन का विशेष योग है। इसलिए जीवनी की पृष्ठभूमि में तत्कालीन गांधीवादी आन्दोलन (क्रान्तिकारी आन्दोलन आदि भी) का इतिहास भी चलता रहता है। इस पृष्ठभूमि में जीवन चित्र की पूर्णता और प्रभावमयता बढ़ जाती है। पत्र में मनुष्य का नितान्त निजी जीवन अभिव्यक्त होता है। इसके आधार पर साहित्यकार के सुख दुःख के क्षणों को पकड़ा जा सकता है उन स्थितियों को देखा जा सकता है जिनकी प्रतिक्रिया के

रूप म व क्षण ग्रथवद्ध हुए हैं। इसम प्रेमचन्द क जीवन के कई पहलू उजागर होते हैं। सस्मरणो को बहुत विश्वसनीय नही माना जाना चाहिए क्योकि उनम सस्मरण लेखक सस्मरणो को अपना अपनी विशेषताओ और गौरव को प्रति ष्ठित करने लगता है। फिर भी सस्मरणा म प्रेमचन्द की निश्चल सादगी और आदमियत का इजहार होता है। कुछ ऐसे भी हैं जो प्रशस्तिमूलक होकर रह गए हैं। इन समस्त बाता को अमृतराय न प्रेमचन्द क सम्पादकीय कहानिया उपन्यासा आदि से सपुष्ट करने की कोशिश की है।

पृष्ठभूमि के रूप म जिस राजनीतिक उथल पुथल का इतिहास लिखा गया है उसका समारभ सन् १८५७ स होता है। कांग्रेस का १६१० का इतिहास लग भग चौदह पृष्ठो मे प्रस्तुत किया गया है। आठवें अध्याय म अमृतराय ने लिखा है— या तो तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मान लेने क बाद मन की दूसरी वृत्ति के रूप म गोखले का असर बहुत बाद तक शायद ताजिन्दगी बना रहा। गाधी म तिलक और गोखले का अदभुत समन्वय मिलता ही था। पर इसम कोई सन्देह नही कि मुन्शी जी ने देश प्रेम का पहला सबक गोखले म लिया। निगम का एक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अमृतराय न प्रेमचन्द का एक और रूप पेश किया है— 'प्रेमचन्द का राजनीतिक झुकाव गरम दल की तरफ था—वह मिस्टर तिलक के तरफदार थे और मैं मिस्टर गोखले और सर फीरोजशाह मेहता का हामी था। हर वक्त बहस चलती थी, मगर दोनो अपनी जगह कायम रहे। छोटे-मोटे सुधारो को वह काफी न समझते थे और मिंटो माल और माटग्यू चेम्सफोर्ड स्कीम स आश्वस्त न थे। आगे चलकर अमृतराय ने उन्हें स्पष्टत गाधीवादी कहा है। एक ओर तिलक को राजनीतिक गुरु मानना दूसरी ओर ताजिन्दगी गोखले स प्रभावित बने रहना स्पष्टत विरोधात्मक स्थिति है। इस अन्तर्विरोध को प्रेमचन्द के सदर्भ म नही देखा गया है। बहस करना और खुदीराम बोस की तस्वीर टाँग लेना किसी स्थिर वृत्ति के सूचक नही हो सकते हैं। इन्हें जीवन के आविष्ट क्षणो मे सबद्ध किया जाना चाहिए। अमृतराय न राजनीतिक आन्दोलन क अन्तर्विरोध का गाधी जी के व्यक्तित्व मे समजित कर दिया, क्योकि उनकी दृष्टि म गाधी जी के व्यक्तित्व म तिलक और गोखले के व्यक्तित्व का समन्वय था। *किसी के व्यक्तित्व को दो चार आदमियो क व्यक्तित्वो का समन्वय बतला देना* ऊपर ऊपर स जितना सही लगता है भीतर भीतर से उतना ही गलत है। किसी का व्यक्तित्व दूसरो मे प्रभावित भले ही हो किन्तु होता है उसका अपना। यदि प्रेमचन्द के वैचारिक अन्तर्विरोधो को तत्कालीन परिवेश क परिप्रेक्ष्य म समझने की चेष्टा की गई होती तो उनका व्यक्तित्व अधिक सही मायने म प्रस्तुत हो,

पाता।

किसी भी लेखक की जीवनी और उसके लेखन का सम्ब ध जटिल होता है। जीवनगत अनुभूतियाँ रचना प्रक्रिया म परिवर्तित हो जाती है। इसलिए रचना के मूल्यांकन के लिए जीवनगत तथ्य प्राय उपयोगी नही होत, और यदि होते हैं तो आंशिक रूप से। रचना के आधार पर रचयिता को सब समय समझ लेन का दावा निरर्थक है। कि तु कुछ ऐसे सरल व्यक्तित्व होन हैं जो भीतर बाहर से एक होते हैं। उ ह समझने के लिए एक सीमा तक रचनाओं का उपयोग किया जा सकता है। ऐसा करने म भी पर्याप्त अवधानता की आवश्यकता होती है। रचनाओं द्वारा लेखक की विचारणा और चि तन पर प्रकाश पडना स्वाभाविक है। परन्तु लेखक के जीवन म घटी घटनाओं तथा रचनाओं से तालमेल बठाना खतरे से खाली नही है।

अमृतराय न कभी रचनाओं मे जीवन की घटनाओं को देखा है और कभी जीवन की घटनाओं मे रचनाओं को ढूढा है। प्रेमच द की प्रारम्भिक रचनाओं मे उनकी जि दगी की तलाश की गई है, वह सवथा औचित्यपूण है। 'चोरी' नामक कहानी उनके बचपन क नटखट पक्ष को उदघाटित करती है। कि तु 'प्रेमाश्रम' के मनोहर की कथा को प्रेमच द के गोरो की खिलाडी टीम पर हल्ला बोलन स जोड दना जबरदस्ती है। मनोहर किसान के मरजाद की रक्षा का सकल्प लेता है। प्रेमच द न उस खेल म हि दुस्तानी के मरजाद की रक्षा का सकल्प लिया था। देश की अहिंसक समर यात्रा स 'मनुष्य का परम धम' को जोडना निहायत बेतुका है। इस कहानी का हवाला दने के पूव लेखक ने लिखा है—देश अहिंसक समर यात्रा के लिए निकल रहा था। लेकिन इस समय भी कुछ लोग ऐसे है या हम सबके भीतर कोई एक जीव ऐसा है जिसे केवल पट की चि ता है। उसकी मरम्मत करने की जरूरत है और मुशी जी ने पटू शिरोमणि पण्डित मोटराम शास्त्री को अपन तीर का निशाना बनाते हुए एक मजे का चुटकुला लिखा—'मनुष्य का परम धम'। कहना न होगा कि अहिंसा सग्राम और इस चुटकुल म कोई साम्य नही है।

हर रचना को किसी आ दोलन का पूव या पश्चात रूप मान लेना न तो रचना के साथ याय कर पाता है न रचनाकार के साथ और न आ दोलन के साथ। पच परमेश्वर की चर्चा करत हुए लेखक उसे कचहरियो का बहिष्कार करन वाले गाधीवादी आ दोलन का पूव रूप मानता है—'उसी पचायत का अभिषेक मुशी जी की इस सु दर कहानी म है।' 'उसी' शब्द को मैं रेखांकित करना चाहूँगा। उसी शब्द पर जो बल दिया गया है वह कितना गर मौजूं है

इस पच परमेश्वर' का प्रयक प्रबुद्ध पाठक समझ सकता है। कचहरिया म इसका कोई सम्ब ध नही है। इसम इस देश की पचायत-परम्परा स प्रेरणा ली गई है और पच को परमेश्वर की तरह याय करन वाला सिद्ध किया गया ह। वस्तुत यह कहानी इसी आदश की प्रतिष्ठा के लिए लिखी गई थी। अपनी सास्कृतिक विरासत को नजर अदाज कर हर बात को किसी राजनीतिक आन्दोलन म जोडने का फल यही होता है।

किन्तु 'शतरज के खिलाडी' का नया प्रयापन इस कहानी का प्रमचद क समसामयिक परिवेश से प्रभावपूण ढग म जोड देता है। लेखक की टिप्पणी है—नवाबी जमाने की पस्ती क दौर की यह कहानी जो लिखी जा रही है सितम्बर-अक्टूबर १९२४ म, जबकि भारतीय राजनीति भी एसी पस्ती क एक लम्बे दौर स गुजर रही है, जबकि लोगो म उसी तरह राजनीतिक भावो का अध पतन हो गया ह, सब अपन अपन खेल तमाशे म, राग रग म लिप्त है देश की चिन्ता किसी को नही है राजनीति शतरज की बिसात होकर रह गयी है जिस पर सब लोग सारे दल और गिरोह अपनी अपनी चालें चलन मे लग हुए है हिन्दू मुसलमान को नीचा दिखाना चाहता है मुसलमान हिन्दू का जब देना चाहता है। असेंबली म, म्युनिसिपलिटी म, यहा-वहा सब जगह सीटा क लिए गोटिया बढायी जा रही हैं नौकरियो के लिए छीना झपटी हो रही है—और कम्पनी बहादुर का गोरी सल्तनत का, शिकजा किस तरह कसता चला जा रहा है इसकी किसी का फिक्र ही नही।' यहाँ पर उनकी किसी पुस्तक के आधार पर निष्कष निकालन की कोशिश की गई है वहाँ उनक व्यक्तित्व की विशषताओ को बहुत खूबी क साथ उभारा गया है—'रगभूमि प्रेमचद की आज तक की जीवन उपलब्धि का महाकाव्य है और उसम सूरदास ही प्रेमचद है। वह एक आदश सत्याग्रही है लेकिन राजनीतिक आन्दोलन क सीमित अथ म नही, जीवन की एक समग्र दृष्टि क व्यापक अभिप्राय म, और किसी के लिए न हो, प्रेमचद के लिए सत्याग्रह का अभिप्राय यही है जीवन के कुछ सनातन मूल्य—दया, क्षमा, परोपकार, प्रेम, विनय'

पत्रो के माध्यम स प्रमचद क निजी जीवन क साथ साथ बहुत सा अय समस्याओ क सम्बन्ध म जानकारी मिलती है। पढन का उन्ह कितना शौक था इस एक पत्र म देखिए—'मैंन मसनवी मागा था वह आपन न भेजा। कोई नावल गुदडी बाजार म लिया हो तो वह भी करम भेजिए। एक दूसर पत्र म कितनी उदासी भरी है—जिदगी की उम्मीद यहाँ भी कम है। मगर यह चाहता हूँ कि या तो साथ चलें या सोपीक सी तकलीफ आ-तारीर हो। मौत की फिक्र

मार डालती है। कितना चाहता हूँ कि परमात्मा पर भरोसा रखूँ मगर दिल
मूज़ी है समझता नहीं। किसी महात्मा की सोहबत मिले तो रास्ते पर आए।
यही फिक्र है कि मैं आज मर जाऊँ तो इन बच्चों का पुरसाँ हाल कौन होगा।
यह तो हुई घरलू जिन्दगी के बारे में उनकी चिन्ता। एक नवयुवक
साहित्यकार को जो पत्र उन्होंने लिखा है वह यों है— भाई यह संसार चुपके
से राम भरोसे बैठने के लिए नहीं है यहाँ झेंपू और मेरे जैसे शर्मीले आदमियों
का गुज़ारा नहीं है। तुम अपने में यह ऐब न आने दो। है भी नहीं। मैं तो कौड़ी
दाम का नहीं हूँ। इसमें उनका सहज स्वभाव अभिव्यक्त हो उठा है।
जीवनी लेखक ने स्थान-स्थान पर प्रेमचन्द के सम्बन्ध में लिखे गये सस्मरणों
का उपयोग किया है। सस्मरणों का चुनाव करने में सावधानी बरती गई है।
फिर भी कुछ ऐसे सस्मरण सन्निविष्ट हो गए हैं जो प्रशस्तिमूलक लगते हैं।
मौलवी अब्दुस्सत्तार तो अपने सस्मरण में गोया प्रेमचन्द की अच्छाई का प्रमाण
पत्र दे रहे हों। मृत्यु शैया पर पड़े प्रेमचन्द के सम्बन्ध में जो सस्मरण इस पुस्तक
में सगृहीत किए गए हैं वे अत्यन्त मार्मिक हैं। इनमें भी निराला द्वारा लिखे गए
सस्मरणों का विशेष महत्त्व है। भारत में उन्होंने लिखा था— हिन्दी के युगान्तर
साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न अन्तप्रान्तीय ख्याति के हिन्दी के प्रथम साहित्यिक
प्रतिकूल परिस्थितियों में निर्भीक वीर की तरह लड़ने वाले उपन्यास सम्राट के
एकछत्र सम्राट रचना प्रतियोगिता में विश्व के अधिक से अधिक लिखने वाले
मनीषियों के समकक्ष आदरणीय श्रीमान् प्रेमचन्द जी आज महाव्याधि से ग्रस्त
होकर शैयाशायी हो रहे हैं। कितने दुख की बात है हिन्दी के जिन पत्रों में हम
राजनीतिक नेताओं के मामूली बुखार का तापमान प्रतिदिन पढ़ते रहते हैं उनमें
श्री प्रेमचन्द जी की हिन्दी का महान् उपकार करने वाले प्रेमचन्द जी की अवस्था
की साप्ताहिक खबर भी हम पढ़ने को नहीं मिलती। दुख नहीं यह लज्जा की
बात है हिन्दी भाषियों के लिए मर जाने की बात है। उन्होंने अपने साहित्यिकों
की ऐसी दशा नहीं होने दी कि वे हँसते हुए जीते और आशीर्वाद देते हुए
मरते। यह क्या थोड़ा भी सच नहीं है? निराला के दिवंगत होने पर
वज़ीरे आज़म का मौन रह जाना स्वयं में कितना बड़ा व्यंग्य है। निराला को इस
स्थिति का पहले ही में एहसास था— प्रेमचन्द को न तो मंगलाप्रसाद पारितो
षिक मिला न कोई अभिनन्दन। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी नहीं
चुने गए। मैंने न कहा—तुम्हारे लिए भी यही फैसला है जिसने जैसा किया वैसा
पाया। अगर कुछ काम कर सका तो नाम-यश मुझे नहीं चाहिए।
किसी भी विषय पर प्रेमचन्द की राय स्पष्ट दो टूक और ... मायने में

सदा होती थी। हिन्दी-उर्दू के सम्बन्ध में जहाँ कहीं उन्होंने अपनी राय जाहिर की है वह अब भी सही है। अपनी जातीय ज़बान की सबसे बड़ी रुकावट का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया है—' इस कौमी ज़बान के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट अंग्रेज़ी है उसका बढ़ता हुआ प्रचार और हममें आत्मसम्मान की वह कमी जो गुलामी की शर्म को नहीं महसूस करती।' आज भी शिक्षा आयोग के प्रतिवेदनों में यह कमी बार-बार दिखाई दे रही है। बम्बइया फिल्मों पर की गई उनकी टिप्पणियाँ इस ज़माने में भी ताज़ा लगती हैं।

साहित्यकारों के लिए एक ज़रूरी बात यह भी है कि वे नई प्रतिभा को पहचानें और उनके विकास में अपेक्षित योग दें। बनारसीदास चतुर्वेदी के एक प्रश्न 'भविष्य किसका है ?' का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है—

वह कभी-कभी सुन्दर गल्प लिख जाते हैं जो हम लोगों से नहीं बन पड़ती। हमारी जीत अभ्यास में है। नवीनता और विचित्रता उनके साथ है।' इस सदर्भ में जैनेन्द्र के निर्माण में प्रेमचन्द का योग स्मरणीय रहेगा। वीरेश्वर सिंह की नई कहानी पढ़कर मुंशी जी ने लिखा था—' चाँद में आपकी कहानी पढ़कर बड़ा आनन्द आया। मैं आपकी पढ़ाई में विघ्न तो नहीं डालना चाहता लेकिन कभी-कभी कुछ लिखा करें तो एहसान समझूँगा।' यह पत्र बी० ए० के छात्र को लिखा गया था। इससे जाहिर है कि नये पौधे को सींचने में उन्हें विकसित करने में प्रेमचन्द को कितनी खुशी होती थी।

प्रेमचन्द की आलोचनात्मक पकड़ के दो नमूने देखिए— 'हिन्दी में गल्प साहित्य अभी अत्यन्त आरम्भिक दशा में है। कहानी लिखने वालों में सुदर्शन कौशिक, जैनेन्द्र कुमार, उग्र, प्रसाद, राजेश्वरी यही नज़र आते हैं। मुझे जैनेन्द्र और उग्र में मौलिकता और बाहुल्य के चिह्न मिलते हैं। प्रसाद जी की कहानियाँ भावात्मक होती हैं रियलिस्टिक नहीं। राजेश्वरी अच्छा लिखते हैं मगर बहुत कम। सुदर्शन जी की रचनाएँ सुन्दर होती हैं पर गहराई नहीं होती और कौशिक जी बात को बेज़रूरत बढ़ा देते हैं।' नाटकों के सम्बन्ध में उनके विचार हैं— 'नाटककार हमारे पास बहुत ही कम हैं। रोमांटिक स्कूल के प्रसाद हैं बुद्धिवादी स्कूल के पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, हास्यरस के श्री जी० पी० श्रीवास्तव हैं। इस क्षेत्र में सबसे नए भुवनेश्वर हैं जिनके एकांकी नाटकों का संग्रह 'कारवाँ' अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। मेरी समझ में भुवनेश्वर सबसे अधिक प्रतिभा-सम्पन्न हैं बात एक ही है कि वह अपनी प्रतिभा को आलस्य, ख़याली पुलाव पकाने सिगरेट फूँकने इश्क़बाज़ी के चक्कर में बरबाद न कर दें। उनके पास अभिव्यक्ति की असाधारण शक्ति है। " छोटे छोटे वाक्यों में कहानीकारों की

शक्ति और सीमा के बारे म प्रेमचन्द न जो कुछ कहा है वह उनकी पनी दृष्टि और अचूक पकड का द्योतक है। भुवनेश्वर के सम्बन्ध म उनके विचार कितन सगत और तलस्पर्शी है। कारवाँ की तीखी अभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे दो मत नही हैं। इसे प्रेमचन्द न बहुत पहले समझा था। यह उनकी साहित्यिक समझदारी का ठोस प्रमाण है।

व साहित्य म सास लते थे, उसी म जीते थे। साहित्य उनकी जिन्दगी थी और उनकी जिन्दगी साहित्य। दोनो म कोई भेद नही था। निरन्तर लिखते रहना साहित्यिक समस्याओ से जूझते रहना उनका दैनंदिन व्यापार था। उनकी दृष्टि म शुद्ध साहित्य का महत्व नही था। वह जीवन से अपृथक है। उन्होन समय समय पर राजनीतिक समस्याओ के बारे म भी अपन गम्भीर विचार व्यक्त किए हैं जिन्ह जागरण और हस की टिप्पणियो म देखा जा सकता है। 'हस और जागरण का प्रकाशन उनकी अटूट साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। 'हम घाटे पर चल रहा था। उस पर जमानत पर जमानत लग रही थी। कट सिल कर तयार होन पर भी उसकी वी० पी० नही भेजी जा सकी थी। सरकारी आना की प्रतीक्षा थी। फिर भी जागरण के निकालने का लोभ वे सवरण नही कर सके— इस बीच मैंने जागरण' को ले लिया है। जागरण के बारह अक निकले लेकिन ग्राहक सख्या दो सौ स आगे नही बढी। विज्ञापन तो व्यास जी न बहुत दिया लेकिन किसी वजह से पत्र न चला। अब वह बन्द करने जा रहे थे। मुझसे बोले यदि आप इसे निकालना चाह तो निकाले। मैंने उसे ले लिया। हस म कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ। लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि सव साधारण के अनुकूल पत्र हो। इसम हजारो का घाटा ही होगा पर करू क्या यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा घाटा है।

जागरण के उद्देश्य के सम्बन्ध म प्रेमचन्द न जो कुछ लिखा है वह कोरा आदर्श नही है बल्कि वह मुशी जी की खुद ह। दूसरे शब्दो म कह तो कह सकते है कि वह मुशी जी की आतरिक विवशता थी ठीक वसी ही जसी लेखक के सबध मे थी—

वह निर्भीक होगा पर दुस्साहसी नही। वह सत्यवादी होगा सत्य स जो भर न टलेगा पर पक्षपात ने अपना दामन बचायगा। वह बूढा म बूढा, जवानो म जवान और बालका म बालक होगा। वह जिस दृढता से न्याय का पक्ष लेगा, उतनी ही दृढता म अन्याय का विरोध करेगा चाह वह राजा की ओर मे हो समाज की ओर से हो अथवा धम की ओर स। समाज का दुखी और दुबल अग उस सदा अपनी वकालत करते हुए पायगा। वह कोरा न्यायवादी,

गम्भीर और शुष्क न रहेगा। वह मनुष्य केवल आधा ही जिन्दा है जो कभी दिल खोलकर नहीं हँसता : वह हँसने की बातें कहेगा, खुद हँसेगा दूसरों को हँसाएगा ...।"

इस उद्घोष में तीन बातें द्रष्टव्य हैं। अन्याय के स्रोत क्या हैं ?—राजा, समाज और धर्म। उस समय का राजा कितना न्यायी था, यह किसी से छिपा नहीं है। राजा से प्रेमचन्द का अभिप्राय बिलकुल साफ है। समाज भी कम अन्याय नहीं कर रहा था। स्त्रियों के साथ, विधवाओं के साथ समाज के अन्याय की बात सर्वविदित थी। महाजनी समाज और जमींदारों का जत्था जनता का खून चूस रहा था। धर्म के नाम पर अत्याचारों की सीमा नहीं थी। प्रेमचन्द ने जीवन भर इन अन्यायों का विरोध किया। उनका सम्पूर्ण लेखन इनके विरुद्ध लड़ाई नहीं तो और क्या है ? उक्त घोषणा में स्पष्ट कहा गया है कि 'समाज का दुःखी और दुर्बल अंग उसे सदा अपनी वकालत करता हुआ पायगा।' वस्तुतः इसी उद्देश्य को लेकर 'जागरण' का प्रकाशन हुआ था। वे जनता के आदमी थे, दुःखी जनता के। यही उनका धर्म था, यही उनका साहित्य था, यही उनका विचार था। जन-जीवन से अलग करके उन्हें नहीं देखा जा सकता।

अमृतराय ने इस जीवनी में प्रेमचन्द को उनके पूरे परिवेश में देखने की कोशिश की है। जहाँ तक हो सका है लेखक ने पूर्ण तटस्थता बरती है। इस तटस्थता को जगह-जगह उसकी टिप्पणियों में देखा जा सकता है। जब पुत्र पिता की जीवनी लिख रहा हो तो यह काम और भी जोखिम का हो जाता है। लेकिन कुल मिलाकर लेखक ने जिस तटस्थता का परिचय दिया है वह श्लाघ्य है। हार की जीत कहानी पर उसकी टिप्पणी द्रष्टव्य है—' ... कहानी कमजोर है, आदर्शवादी ढंग से उसका समापन होता है। मुंशी जी के कोष में त्याग और सेवा प्रेम के ही पर्यायवाची शब्द हैं। इससे ज्यादा वह कुछ नहीं जानते न उन्हें जानने की कोशिश की। वह गली उनके लिए अनजानी है।'

यों प्रेमचन्द को सही अर्थ में चित्रित करने के लिए जिस राजनीतिक परिवेश को लिया गया है वह जरूरत से ज्यादा विस्तृत हो गया है। उसके स्थान पर साहित्य से सम्बद्ध जीवन विस्तार अधिक संगत प्रतीत होता। फिर भी हिन्दी में इतने श्रम से लिखी गई प्रामाणिक जीवनी यह अकेली है।

भाषा और शैली तो लेखक को प्रेमचन्द से विरासत में मिली है। सारी जीवनी अद्भुत प्रवाहमयता से युक्त है। यह लेखक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवनी-साहित्य के लिए उसने भाषा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है।

—श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

१६

भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास · भारतीय राष्ट्रवाद का रोमांचक सत्य

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का यह इतिहास आज से लगभग छब्बीस वर्ष पहले लिखा गया था। परन्तु उस वक्त यह पुस्तक छपते ही जब्त कर ली गई थी। इसके बाद यह सन् १९६० में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित शहीद ग्रन्थमाला के चौथे पुष्प के रूप में प्रकाशित हुई है। यद्यपि कहने को तो यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है परन्तु जहाँ तक हिन्दी-जगत का सम्बन्ध है, उसके सामने यह पुस्तक पहली ही बार आई है। यह पुस्तक एक ऐसे विषय को छूती है जिसके बारे में हिन्दी ही क्या भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेजी में भी बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। परन्तु इसमें भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह पुस्तक एक ऐसे लेखक द्वारा लिखी गई है जो न केवल हिन्दी के उच्च कोटि के लेखक और पत्रकार हैं बल्कि जिनकी जवानी क्रान्तिकारी आन्दोलन में काम करते बीती है और जिन्होंने बरसों तक काकोरी षड्यन्त्र केस के कैदी के रूप में ब्रिटिश सरकार की जेल यातना सही है। श्री मन्मथनाथ गुप्त को एक और भी विशेष सुविधा प्राप्त है जो क्रान्तिकारी आन्दोलन में अपने वाले अन्य बहुत-से वीरों को नहीं थी। श्री गुप्त बंगाली हैं और उत्तरप्रदेश के सांस्कृतिक गढ़ काशी के निवासी हैं। उनका जीवन काशी और इलाहाबाद की जेलों में बीता है। इसलिए एक ओर जहाँ वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के बड़े-बड़े उत्तरभारतीय नेताओं जैसे श्री चन्द्रशेखर आजाद और श्री भगतसिंह आदि, के सम्पर्क में आए तो दूसरी ओर उनका सम्बन्ध बंगाल के क्रान्तिकारियों में भी रहा है और उन्होंने बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है। इस दृष्टि से भारतीय आन्दोलन का यह इतिहास एक अत्यन्त

प्रामाणिक और समीक्षात्मक इतिहास बन जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक की एक और बड़ी भारी विशेषता है। क्रांतिकारी आंदोलन से उस आंदोलन का अर्थ समझा जाता है जो श्री खुदीराम बोस की फांसी से लेकर सरदार भगतसिंह की फांसी अथवा अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के काल के बीच में हुआ। परन्तु श्री मन्मथनाथ गुप्त ने सन् १९४२ के विद्रोह से आजाद हिन्द फौज के कार्यकलाप को तथा फरवरी, १९४६ के भारतीय नौसेना के विद्रोह को भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है। इस प्रकार भारत में १७५५ से लेकर १९४६ तक जितने क्रांतिकारी आंदोलन हुए उनका सर्वांगीण इतिहास हमको एक स्थान पर मिल जाता है। इस पुस्तक का एक बहुत बड़ा भाग बिल्कुल ही नया रखा गया है—सन् १९४२ के विद्रोह तथा उसके बाद का हिस्सा जिसे लेखक ने लगभग २०० पृष्ठों में पूरा किया है। इस दृष्टि से 'भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास' का यह संस्करण वास्तव में नितांत नई रचना है।

भारतीय क्रान्ति के सम्बन्ध में इस देश में बहुत ही गलत धारणा है। ऐसा ख्याल किया जाता है कि बंगाल, पंजाब और उत्तरप्रदेश के कुछ छुटपुट देशभक्तों ने देशप्रेम के आवेग में आकर कुछ अंग्रेजों की हत्या की अथवा डाकजनी व लूट की कुछ घटनाएं कीं। बड़े बड़े जागरूक व्यक्ति भी भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में इन क्रांतिकारियों के सही योगदान से या उनके काम के माप को ठीक तरह से नहीं समझते। स्वयं क्रांतिकारियों ने अपना काम इतना गुप्त रखा कि जनता को उसका ठीक ठीक पता न था। दूसरे यदि कभी कोई चीज लिखी भी गई या प्रकाश में आई तो ब्रिटिश सरकार ने तुरंत उसको जब्त कर लिया। ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पश्चात अवश्य ऐसा वातावरण आया था जबकि इस इतिहास को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता था परन्तु उस समय हमारे राजनायकों पर और जन मत के अन्य अवयवों पर गांधी जी की अहिंसा का कुछ ऐसा जादू चढ़ा था कि व यह समझने लगे कि भारत यदि स्वतन्त्र हुआ है तो अपने अहिंसात्मक आंदोलन के कारण। गांधी जी के अन्य आंदोलन कितने ही अहिंसात्मक क्यों न रहे हों सन् १९४२ का आंदोलन केवल हिंसात्मक आंदोलन नहीं था क्रांतिकारी आंदोलन भी था। यदि वह तत्काल सफलता नहीं प्राप्त कर सका तो उसका कारण केवल यही था कि जनता को क्रान्ति के लिए आह्वान तो दे दिया गया पर कोई कार्यक्रम नहीं दिया गया। जनता ने जो कुछ किया अपनी स्वेच्छा से किया, और जो किया गया उसका ब्रिटिश शासन के ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

अभी हाल ही में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक पत्रकार सम्मेलन में कहा था कि हम लोगों का जीवन बहुत मुलायम रहा है। हम आग और नरक के बीच में होकर नहीं गुजरे हैं, जो एक देश के विकास के लिए आवश्यक है। सम्भवत उनका यह वक्तव्य इसी कारण था कि उनको इस बात का सही सही अन्दाजा ही नहीं है कि भारत की आजादी के आन्दोलन में भारत के कितने हजारों लाखों नर-नारियों ने नरक-कुण्ड की घोर यातनाएं सही हैं, कितने लोग गोली के शिकार हुए हैं कितने फांसी चढा दिए गए। भारत की स्वतन्त्रता के लिए कितने ही नवयुवकों ने, जो भारत में ही नहीं विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे या व्यापार में लगे हुए अतुल धनराशि कमा रहे थे देश में शान्ति लाने के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

हम श्री गुप्त के अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमें बताया है कि प्रथम महायुद्ध के समय विदेशों में जर्मनी में, अमरीका में, अफगानिस्तान में ईरान में, थाईलैंड में, इण्डोनेशिया में और जापान में भारत के क्रान्तिकारी क्या कर रहे थे और किस प्रकार उन्होंने एक दिन सारे भारत में सैनिक विद्रोह करने का अनुष्ठान किया था। किस तरह से यह प्रयास भारतीय विश्वासघातियों, मुखबिरों भेदियों और कमजोर सहयोगियों के कारण असफल हो गया और किस प्रकार हजारों व्यक्तियों को दण्ड भुगतना पडा इसका भी अत्यन्त रोचक इतिहास इस पुस्तक में है।

इस पुस्तक में इतिहास की प्रामाणिकता है और उपन्यास की रोचकता। इस दृष्टि से यह पुस्तक हिन्दी जगत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो पचासों साल तक याद रहेगा। यदि हम तुलना ही करना चाहें तो केवल एक अन्य ग्रन्थ है जो इसकी बराबरी में रखा जा सकता है। वह ग्रन्थ है श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल का 'बन्दी जीवन'। यह लगभग चालीस वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह मूलतः बंगाल के क्रान्तिकारियों की गतिविधियों पर विशेष प्रकाश डालता है। इसका विवरण मुख्यतया सन् १६२२ तक की घटनाओं तक ही सीमित था। द्वितीय संस्करण में, जो सन् १६३८ में प्रकाशित हुआ, श्री सान्याल ने कुछ संशोधन भी किए। परन्तु यह पुस्तक मुख्यतया उनकी आत्मकथा था जिसके परिप्रेक्ष्य में क्रान्तिकारी जीवन और गतिविधियों का परिचय दिया गया था। श्री मन्मथनाथ गुप्त की पुस्तक की यह विशेषता है कि वह आत्मचरित नहीं है बल्कि विशुद्ध इतिहास है। हां उसकी शैली में अवश्य ही रोचकता है। श्री मन्मथनाथ गुप्त कभी-कभी तो इतने अधिक ऐतिहासिक हो गए हैं कि इसमें कुछ खटका भी। काकोरी केस के सिलसिले में उन्होंने एक जगह लिखा है

'काकोरी ट्रेन डकैती'—मन्मथनाथ ने इसका जो वर्णन लिखा है वह यह है। हमारी समझ में यह तटस्थता नहीं आई। हो सकता है कि काकोरी ट्रेन डकैती का यह वह विवरण हो जो डकैती के थोड़े दिन बाद ही किसी समाचार पत्र में श्री मन्मथनाथ ने लिखा हो और उन्होंने उसे यहां उद्धृत कर दिया है। पर जिस पुस्तक के वे स्वयं ही लेखक हैं और इसी विषय पर लिख रहे हैं तो 'मन्मथनाथ' नाम का उल्लेख कर इस प्रकार वर्णन करना अपनी तटस्थता दिखाने के लिए एक औपचारिकता मात्र ही है। हमारी समझ में तो यदि गुप्त जी इसको सीधे इसी प्रकार लिखते कि 'काकोरी ट्रेन डकैती की घटना इस प्रकार थी या मैंने घटना के तुरन्त पश्चात यह लिखा था' तो पुस्तक की ऐतिहासिक प्रामाणिकता में कोई कमी नहीं होती। यह ठीक है कि इतिहासकार वह व्यक्ति होता है जो घटना से दूर होता है और इसलिए वह प्रत्येक वस्तु का वस्तुवादी दृष्टिकोण से देखता है। श्री मन्मथनाथ उस घटना से इतने सम्बद्ध थे कि वह कितना ही प्रयत्न क्या न करें उनके विवरण में अन्य व्यक्तियों का तो यह कहने का अवसर हो ही सकता है कि इनका इस घटना से निकट सम्बन्ध था। परन्तु इस बात को मानते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि लेखक ने अपनी भावनाओं को दबाकर, जहां तक बना है ऐतिहासिक दृष्टि से इस पुस्तक के तथ्यों को प्रामाणिकता दी है।

इस पुस्तक में कुल ४८ अध्याय हैं। पुस्तक डबल क्राउन साइज के ५३६ पृष्ठों में छपी है। पुस्तक के अध्यायों की सूची ही इसकी व्यापकता का प्रमाण देती है। यह इस प्रकार है

प्रान्तो म क्या हो रहा था, २५–बगाल की कुछ क्रान्तिकारिणिया, २६–धारा का अन्त २७–द्वितीय महायुद्ध और भारत, २८–अगस्त क्रान्ति का जन्म, २९–बम्बई ने क्रान्ति का बिगुल फूका, ३०–उत्तर प्रदेश म क्रान्ति, ३१–उत्तरप्रदेश म मिदनापुर का इतिहास ३२–आसाम क्रान्ति की गिरफ्त म ३३–बगाल म अगस्त क्रान्ति ३४–उडीसा मे आन्दोलन ३५–बिहार मे क्रान्ति ३६–मध्यप्रान्त का आन्दोलन ३८–दिल्ली मे कुछ आन्दोलन ३८–पजाब और सीमा प्रान्त का आन्दोलन ३९–गुजरात सिन्ध, काठियावाड, ४०–महाराष्ट्र और कर्नाटक, ४१–आन्ध्र केरल तामिलनाड दक्षिण के राज्य, ४२–फुटकर स्थानो का आन्दोलन ४३–१९४२ और कम्युनिस्ट पार्टी ४४–अगस्त क्रान्ति मे स्त्रियो का बलिदान ४५–जेलो मे अगस्त-बन्दियो पर अत्याचार, ४६–१९४२ की क्रान्ति पर एक रोशनी, ४७–आजाद हिन्द फौज, ४८–नवम्बर प्रदर्शन, फरवरी प्रदर्शन नौ-सैनिक विद्रोह।

उपर्युक्त सूची को देखने मे ही पता लगता है कि भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन कितना पुराना है तथा कितना सर्वव्यापी रहा। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक बडी भारी विशेषता यह रही है कि इसमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ने बडे मनोयोग के साथ सहयोग किया और साथ ही साथ फासी के तख्तो पर झूले या गोराशाही की गोलियो का शिकार हुए। लेखक ने तो यही बताया है कि भारत म सशस्त्र क्रान्ति के प्रारम्भ मे ही हिन्दू और मुसलमान साथ थे। पुस्तक के प्रारम्भ म ही बताया गया है कि १७९५ म ३ सितम्बर को बगाल सेना के १५वें बटालियन को हुक्म दिया गया कि वह फौरन तमलूक रवाना हो जाए जहा पर फ्रैंच नौसेना से लडने के लिए जहाज तयार थे। ब्रिटिश सरकार उस समय नेपोलियन के साथ युद्ध म रत थी और उसकी पराजय होती जा रही थी। उस समय इस सेना ने जहाजो पर चढने मे इन्कार कर दिया। इस बटालियन को तोड दिया गया, इसका झडा जला दिया गया और सब सनिको का कोर्टमार्शल कर दिया गया। कोर्टमार्शल ने विद्रोहियो के नेता रघुनाथ सिह उमराव गिरि और यूसुफ खा को तोप के मुह पर बाध कर उडा दिया। शेष सिपाहियों को बरखास्त कर दिया गया। इसके बाद १८०६ म मद्रास के वेल्लोर स्थान मे मद्रास सेना के देशी सैनिको ने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह बहुत व्यापक था और लार्ड विलियम बटिक जसे गवर्नर जनरल को इसके कारण अपनी नौकरी मे हाथ धोना पडा। लार्ड बटिक ने कहा था कि वर्षों से मुसलमानो मे जो विद्रोह की आग भडक रही थी, यह उसका परिणाम था। परन्तु लेखक के अनुसार यह विद्रोह नदी दुर्ग आदि ऐसे स्थलो मे फैल गया था जहा पर हिन्दू सेना थी और

हिन्दू और मुसलमान सेना ने सम्मिलित होकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया था। इसके बाद सन् १८५५ में २१ सितम्बर को निजाम की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने अपने अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के नेता मुसलमान थे। लेखक ने इसके पश्चात् वहाबी आन्दोलन का जिक्र किया है और बताया है कि किस प्रकार बरेली के रहने वाले सैयद अहमद नामक एक मुसलमान ने भारतवर्ष में अंग्रेजों के विरुद्ध वहाबी आन्दोलन का प्रचार किया। इस आन्दोलन को बंगाल के तीतू मियां ने स्वीकार कर लिया और बंगाल में तीतू मियां ने किसानों को संगठित कर अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। इसी तरह फरीदपुर के वहाबी नेता शरियतुल्ला तथा उनके पुत्र दूदू मियां ने भी एक विद्रोही गिरोह खड़ा किया। लेखक ने अन्य क्रान्तिकारी मुसलमानों का भी जिक्र किया है। उनके अनुसार पटना के अमीर खां को बंगाल के १८१८ के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार नजरबन्द कर दिया गया। उन पर न्यायाधीश नारमन की अदालत में मुकदमा चला और जब वे मुकदमा हार गए तो अब्दुल्ला नामक एक वहाबी ने रात को नोरमेन पर हमला किया जिसमें नोरमन मारा गया। इस अब्दुल्ला को फांसी हुई। लेखक का कहना है कि १८७८ की ८ फरवरी को जिस समय लार्ड मेयो अंडमान के दौरे में थे, शेर अली नामक कैदी ने मार डाला। यह शेर अली खैबर घाटी का रहने वाला था और मामूली इतिहासों में शेर अली को एक मामूली अपराधी के रूप में दिखाया जाता है। पर वह वहाबी था और उसका उद्देश्य राजनीतिक था। कुछ भी हो यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात अब्दुल्ला और शेर अली ने किया।

इस सम्बन्ध में हमको एक निवेदन करना है। लेखक ने बहुत ही पुराने तथा अज्ञात तथ्यों को हिन्दी जगत के सम्मुख उपस्थित किया है परन्तु कभी कभी साधारण तथ्यों के सम्बन्ध में भयंकर भूलें हो गई हैं। पहले लिखा जा चुका था कि एक वहाबी ने लार्ड मेयो की हत्या की। लेकिन इसी पुस्तक के ३२वें पृष्ठ पर जब लार्ड मिंटो के ऊपर बम की चर्चा की गई तो एक वाक्य आता है "इतिहास के पाठकों को पता होगा कि यही लार्ड मिंटो जो क्रान्तिकारियों के बम से बचे थोड़े ही दिनों बाद अंडमान का निरीक्षण करते हुए एक पठान कैदी की छुरी से मारे गए।' कभी कभी इस प्रकार की भूलें बड़ी खटकती हैं। नाम की ही गलती नहीं थी। एक स्थान पर कोयम्बटूर के पास कसूर का जिक्र आया है। लेकिन थोड़ा दूर पर वह कसूर, कसूर हो गया। क्योंकि कसूर भी पंजाब का एक महत्त्वपूर्ण नगर है इसलिए इस प्रकार की गलती भ्रम पैदा कर सकता है और खटकती

है। प्रूफ की गलतियाँ कभी कभी बडा भयंकर रूप ले गई हैं। उदाहरण के लिए अध्याय २७ को देखिए। इसका शीर्षक है—"द्वितीय महायुद्ध और भारत"। इसमे एक पैराग्राफ है—सर्वहारा क्रान्ति का भय। उसमे लिखा गया है "यदि जर्मनी मे साम्राज्यवादी क्रान्ति होने दी जाती।' इसी तरह और आगे लिखा है कि 'जिन शक्तियों ने लडाई जीती थी वे ऐसी भूल क्व होने दे सकते थे। वे तो रूस मे साम्राज्यवादी राष्ट्र की स्थापना से ही बौखलाए हुए थे। स्पष्टत यह प्रूफ की गलती है क्योंकि 'साम्राज्यवादी' से अर्थ 'समाजवादी' ही हो सकता है और अगली पंक्ति मे यह स्पष्ट भी हो गया है जबकि लिखा है कि 'उन्होंने प्रथम महायुद्ध के बाद समाजवादी रूस पर एक साथ २१ तरफ से हमला किया। इसी तरह इटली में फासीवाद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि साम्राज्यवादी इतने शक्तिशाली हो गए थे। यहा भी उनका मंशा समाजवादियो से ही है। जो पुस्तक तथ्यो की दृष्टि से इतनी महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक हो उसमे इस प्रकार की गलतिया खटकती है और अगले संस्करण म उनका निराकरण अवश्य हो जाना चाहिए। ये ऐसी गलतियां हैं जिनसे अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

इस पुस्तक से हम को पता लगता है कि श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा श्री विनायक दामोदर सावरकर किस प्रकार लन्दन म ही भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को सगठित करते रहे और अनेको व्यक्तियो को इस आन्दोलन मे निमन्त्रित किया। चाफेकर बन्धुओ, सरदार सिंह राणा मदनलाल ढींगरा मादाम कामा और वीरेन चटटोपाध्याय जसे भारत के अत्यन्त मेधावी नवयुवको और नवयुवतियों ने इग्लैंड की शिक्षा दीक्षा के साथ भारत म सशस्त्र क्रान्ति का जो व्रत लिया उसकी गौरवपूर्ण गाथा हम इस पुस्तक मे मिलती है। चूंकि बगाल, महाराष्ट्र और पजाब के लोग पहले विदेशो मे गए तो उन्होंने किस प्रकार वहा से देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का बीडा उठाया यह भी पुस्तक म बडे विस्तार से और मनोरंजक ढग से दिया हुआ है। लाला हरदयाल, श्री रासबिहारी बोस मास्टर अवध विहारी लाला दीनानाथ आदि के आत्मोत्सर्ग की प्रेरणामयी कहानी इस पुस्तक मे मिलेगी।

चन्द्रशेखर आजाद भगतसिंह, शचीन्द्रनाथ सान्याल कन्हाई लाल, श्री राजेन लाहिडी, श्री रामप्रसाद बिस्मिल, श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी, अमर शहीद अशफाकुल्ला, तथा देश की स्वतन्त्रता की लडाई म जो सहस्रो बलिदान हुए, उनकी यह एक कहानी है। इस पुस्तक से पता लगता है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन को, जिसमे सन् १६४२ का विद्रोह भी शामिल है दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कितने अत्याचार किए। किस प्रकार सिंगापुर के हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने

सात दिन तक सफल विद्रोह किया, किस तरह जर्मनी से भारत में सशस्त्र क्रांति के लिए हथियार मंगाए गए और किस प्रकार मुखबिरों के कारण भारत का सशस्त्र विद्रोह सफल नहीं हो सका—इन सबको एक साथ एकत्रित करने के लिए श्री मन्मथनाथ गुप्त बधाई के पात्र हैं।

परन्तु कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जो न जाने क्या गुप्त जी के हाथ से छूट गए। उन्होंने वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंके जाने वाली घटना का उल्लेख किया है। उस सिलसिले में राजस्थान के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री प्रतापसिंह बारहठ का कोई उल्लेख नहीं है। श्री बारहठ राजस्थान के मेवाड़ राज्य के एक बहुत बड़े जागीरदार के पुत्र थे। उन्होंने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ दिल्ली में क्रान्तिकारी काम किया था। दिल्ली षडयन्त्र के सम्बन्ध में वे पकड़े भी गए थे और कुछ ही दिन बाद कोटा षड्यन्त्र के सिलसिले में उनके पिता सरदार केसरी सिंह को आजन्म काले पानी की सजा हुई और उनके चाचा के नाम वारंट निकला। उन दोनों भाइयों की सारी सम्पत्ति जब्त हो गई। प्रतापसिंह ने अपने परिवार पर कष्ट-सहन का ज्ञान करने के बाद भी जो वीरता दिखाई उसकी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बड़ी प्रशंसा की है। २२ वर्ष की उम्र में ही बरेली जेल में उनका स्वर्गवास हो गया। राजस्थान में प्रताप के आत्मोत्सर्ग ने बड़ा उत्साह पैदा किया। परन्तु श्री मन्मथनाथ की पुस्तक में उनका कोई गौरवपूर्ण उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है कि इस प्रकार के अन्य भी कुछ मामले हों उनकी पूर्ति की आवश्यकता है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रारम्भ पर एक शंका की है। उन्होंने लिखा है कि श्री केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस तथा श्री विवेकानन्द ने देश में जो नवजागृति का बीज फूंका, उसने लोगों का आत्मविश्वास जगाया और इसी विचार ने राष्ट्रीयता की उग्र भावनाओं को जन्म दिया। परन्तु उनकी यह शिकायत है कि यह सब तो हुआ। पर साथ ही ये लोग हिन्दू थे, इनकी भाषा हिन्दू थी, इनके व्याख्यानों में ऐसे दृष्टान्तों तथा ऐसे युगों का उल्लेख रहता था, जिसे हिन्दू ही समझ सकते थे। नतीजा यह हुआ कि इनकी वाणियों से पुष्ट होकर जो राष्ट्रीयता बनी, उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया। यह बहुत ही बुरा हुआ और यहीं से मानो जिन्ना की राजनीति के लिए गुंजाइश पैदा हो गई। श्री गुप्त के इस निष्कर्ष में हम सहमत नहीं हैं। हम यह भी नहीं समझ पाए हैं कि उनकी भाषा किस प्रकार हिन्दू थी और उनके कौन-से ऐसे दृष्टान्त थे जिसे हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमान नहीं समझ पाते थे। एक तरफ हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द के भाषणों

ने अमरीका और यूरोप तक के लोगों को भारतवर्ष की ओर आकर्षित किया
और दूसरी तरफ कहा जाए कि उनके भाषण भारतवर्ष के मुसलमानों की
समझ में नहीं आते थे तो यह बात कुछ गले नहीं बैठती। हम यह तो मान
सकते हैं कि श्री दयानन्द ने इस्लाम पर जो आक्षेप किए उनके मानने वाला
में तथा मुसलमानों में कुछ मनोमालिन्य होना स्वाभाविक था परन्तु जहां तक
सनातन धर्म या हिन्दू सम्प्रदायों का सम्बन्ध था उनके साथ तो सभी धर्मों
का बड़ी आसानी के साथ सहअस्तित्व सम्भव था। बहुत प्रारम्भ में गुप्त जी
ने ऐसा लिखा है पर जब उन्होंने वर्णन किया है तो साफ मालूम होता है कि
मौलाना ओबेदुल्ला बरकतउल्ला और अशफाकुल्ला जैसे मुसलमान फिर भी
क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित रहे हैं। साथ ही पंजाब के सिक्खों ने जो
शानदार बलिदान किया उसकी तो कहानी ही अलग है। हमारा तो ऐसा मत
है कि जब तक और जब जब भारत का आन्दोलन क्रान्तिकारी रहा यानी
जनता की शक्ति के बल पर विदेशी सत्ता को हटाने का प्रश्न आया तब-तब
भारतीय आन्दोलन साम्प्रदायिकता से मुक्त रहा परन्तु जब शान्ति और
अहिंसा के नाम पर आन्दोलन में गतिहीनता आ गई तो साम्प्रदायिक शक्तियों
ने अपना सिर उभारा। श्री गुप्त जी भी इस प्रकार का एक संकेत देते हैं जब
वह कहते हैं कि सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में जो स्वामी श्रद्धानन्द
खिलाफत पंथियों का साथ दे रहे थे वही आन्दोलन के समाप्त होने पर शुद्धि
का कार्य करने लगे। इस दृष्टि से हम लेखक के इस मत से सहमत हैं कि
सन् १९४७ के विद्रोह में नेताओं ने ठीक प्रकार के दिशा निर्देश नहीं दिए।

विद्वान् लेखक ने इस बात को अच्छी तरह प्रकट किया है कि किस प्रकार
क्रान्तिकारी आन्दोलन हिन्दू पुनर्जागृति के रूप में प्रारम्भ होकर समाजवाद
की ओर बढ़ता रहा। यह सरदार भगतसिंह ही थे जिन्होंने सबसे पहले देश
में इंकलाब जिन्दाबाद और क्रान्ति चिरजीवी हो का नारा दिया और
अपनी भारतीय गणतन्त्रात्मक स्वातन्त्र्य सेना को समाजवादी सेना का नाम
दिया। यही नहीं सरदार भगतसिंह ने अपने साथियों में किस प्रकार समाज
वाद का प्रचार किया इसका भी बड़ा सुन्दर विवरण है।

पुस्तक की छपाई आदि के सम्बन्ध में हम यही निवेदन करना है कि यह
पुस्तक के गौरव के अनुकूल नहीं है। प्रूफ की गलतियां भयंकर हैं। छपाई
और कटाई में सुधार की बहुत गुंजाइश है। छपाई ठीक नहीं हुई है। परन्तु
सबसे अधिक शिकायत हमें इसकी जिल्दबन्दी से है। ५५० पृष्ठ की इस सुन्दर
पुस्तक की कपड़े की जिल्द होनी चाहिए थी और साथ यदि चित्रों की संख्या

अधिक होती तो पुस्तक का आकर्षण बढ जाता। इन कमियों के बाद भी यह निर्विवाद है कि भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास लिखकर श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भारतीय जनता की बहुत बडी सेवा की है। इस पुस्तक के लेखन के लिए हम उन्हे, और शहीद ग्रन्थमाला के सम्पादन के लिए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को धन्यवाद देते है। हम यह भी आशा करते हैं कि पुस्तक म जो कमिया हैं व अगले सस्करण म दूर कर दी जाएगी।



—श्री अशोक जी

१७

डॉ० रघुबीर का अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दकोश : भारतीय कोश-विज्ञान मे युगान्तर

अंग्रेजी हिन्दी कोशों की परंपरा काफी पुरानी है। गत शताब्दी मे प्रकाशित इस प्रकार के कोशों म फैलन, ग्रियर्सन मथुराप्रसाद मिश्र आदि के कोश उल्लेखनीय हैं। सन् १८७६ मे विलियम क्रुक का ग्राम जीवन और कृषि के शब्द, सन् १८८८ में इलियट, विल्सन और रीड का आजमगढ ग्लासरी १८८५ म ग्रियर्सन का बिहार पेजेंट लाइफ (ग्राम जीवन), सन् १८८७ में पैट्रिक कार्नेगी का कचहरी भूमि व्यवस्था दस्तकारी के शब्दों का और १८९७ मे फैलन और १८८४ म प्लाट के प्रसिद्ध शब्दकोश निकले। इनमे विविध ग्राम धंधों के शब्दों का बहुत ही अच्छा संग्रह था और इस दृष्टि से ये पारिभाषिक शब्दों के संकलन म बड़े सहायक हो सकते हैं। पारिभाषिक या शास्त्रीय कोशों की रचना भी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू हो गयी थी। पं० सुधाकर द्विवेदी ने गणित और ज्योतिष और श्री नवीनचन्द्र राय ने इंजीनियरी विषय की अनेक पुस्तकें रची थी जिनम पारिभाषिक शब्दावली भी थी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इस शताब्दी के दूसरे दशक म कृषि, भौतिकी रसायन आदि विषयो के छोटे छोटे अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश प्रकाशित किए। प्रयाग म पं० दयाशंकर दुबे की अर्थशास्त्र शब्दावली भी इसी समय निकली। प्रयाग की विज्ञान परिषद ने भी वैज्ञानिक शब्दावली की रचना मे योग दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय म आयुर्वेद के साथ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की पढाई भी सन् १९२९ के करीब प्रारंभ हो चुकी थी और इसके लिए हिन्दी म पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी थीं, जिनमे पारिभाषिक शब्द भी थे।

इस शताब्दी के तीसरे दशक तक हिन्दी में विज्ञान, साहित्य और समाज विद्याओं पर काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका था। गुरुकुल कांगड़ी और काशी विद्यापीठ जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं में हिन्दी के माध्यम से उच्च शिक्षा दी जा रही थी और इस हेतु अनेक विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें तैयार हो चुकी थीं।

अनेक देशी राज्यों में भी शासन का बहुत कुछ काम हिन्दी या देश भाषा में हो रहा था और उनकी ओर से भी पारिभाषिक शब्द रचना के प्रयत्न हुए थे। कश्मीर के महाराज रणवीर सिंह ने सेना और शासन के शब्द संस्कृत से संकलित कराने का प्रयत्न किया था। दूसरी ओर हैदराबाद में निज़ाम ने अरबी फारसी के आधार पर उर्दू में पारिभाषिक शब्दों के संकलन का विशाल आयोजन किया था। ग्वालियर आदि हिन्दू राज्यों में भी हिन्दी में न्याय और शासन का काम होता था, परन्तु ये शब्द अधिकांशतः मुसलमानी शासन के समय से चले आए अरबी फारसी शब्द थे।

यों तो नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी शब्द सागर में अन्य शब्दों के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों का भी संग्रह हो गया है, पर इस कोश के प्रकाशन के बाद भी बहुत से शब्द चलन में आए। इसलिए आवश्यकता ऐसे कोश की थी, जिसमें विषयवार या अकारादिक्रम से अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द और उनके हिन्दी पर्याय दिए हों। इस प्रकार के कुछ छोटे कोश भी निकले जैसे डा० सत्य प्रकाश का समाचार पत्र शब्दकोश। किन्तु बृहत् अंग्रेजी हिन्दी पारिभाषिक कोशों की तैयारी के उल्लेखनीय प्रयत्न श्री सुखसंपत राय भण्डारी, डा० रघुवीर म० प० राहुल सांकृत्यायन और अब केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के ही हैं। इनमें सबसे पहला नाम श्री सुखसंपत राय भण्डारी का है। प्रायः अकेला प्रयत्न होने के नाते भी श्री भण्डारी का काम प्रशंसनीय है। उन्होंने पहली बार बड़े पैमाने पर विभिन्न विषयों की अंग्रेज़ी हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली का संकलन करने का उपक्रम किया था। उनकी इस बृहत् २०वीं सदी इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी का प्रकाशन खण्डशः सन् १९३७ में शुरु हो गया। इस कोश की विशेषता यह है कि इसमें नए शब्द गढ़ने के साथ ही प्रचलित शब्दों का भी काफी संग्रह किया गया है और केवल अंग्रेज़ी शब्दों के हिन्दी पर्याय ही नहीं दिए गए हैं, बल्कि उनका अर्थ भी समझाया गया है।

डॉ० रघुवीर का काम सन् १९४२ में शुरु हुआ, परन्तु इसमें गति स्वतंत्रता के बाद ही आई और स्वर्गीय श्री रविशंकर शुक्ल की प्रेरणा से मध्य प्रदेश सरकार ने इस काम में पूरी सहायता दी। सन् १९४७ से ५४ तक सांख्यिकी वाणिज्य अर्थशास्त्र तर्कशास्त्र सरल विज्ञान पक्षी-नामावली आदि अलग अलग

कोशा का और सन् १९५० म ग्रट इग्लिश इडियन डिक्शनरी नामक ८० हजार शब्दो के वृहत कोश का प्रकाशन हुआ। इसी कोश के परिवर्धित सस्करण बाद म निकले और अब भी परिवधन का काम चालू है।

डा० रघुवीर के इस कोश के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी जगत म एक तूफान सा आ गया। उन्होन अग्रेजी शब्दो के जो पर्याय गढ़े वे अत्यत क्लिष्ट और कृत्रिम और बोलचाल स दूर मान गये और रघुवीरी हिन्दी दुरूह और अप्रचलित सस्कृत शब्दो म बोझिल भाषा का पर्याय बन गयी। मजाक के लिए कण्ठ लगोट और अग्निरथ-गमन आगमन सूचक-लोहपट्टिका (सिगनल) जस शब्द गढ गए उल्लेखनीय है कि डा० रघुवीर के कोश म ये शब्द नही हैं बल्कि उन्होने कोश की भूमिका म स्पष्ट कहा है कि हिन्दी पर्याय खोजन म यथासभव छोट और एकहर शब्द दिए गए है बडे समास नही। सिगनल क लिए उन्होन सकेत शब्द रखा है अग्निरथ लोहपट्टिका' नही।

इसलिए डा० रघुवीर क काय का समीक्षा करन म पहले हम उनके मूल सिद्धान्त भी समझ लेने चाहिए। डा० रघुवीर न सस्कृत को अपने कोश के शब्द सकलन का आधार बनाया है। जिन विषयो का साहित्य उन्हे सस्कृत प्राकृत व पाली म मिल सका उनक पारिभाषिक शब्द उन्होन इस स्रोत स लिए। जहा एक शब्द से अन्य शब्द बनान की जरूरत थी वहा उन्होने मूल सस्कृत शब्द या धातु को लेकर उसमे उपसग और प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए—जसे 'ला के लिए विधि और ला स बनन वाले लीगल, लॉफुल लेजिस्लेटिव आदि के लिए विधिवत वध, विधायी आदि शब्द बनाए। यहा यह आलोचना हो सकती है कि प्रचलित कानून' शब्द क्यो नही लिया गया, दूसरे विधि हिन्दी म तरीक या उपाय के अथ म अधिक प्रचलित है। परन्तु कठिनाई यह है कि एक कानून शब्द को लेन म काम नही चल सकता उसस बनने वाल बीसियो शब्द भी उसक साथ लने पडत। इसी प्रकार डा० रघुवीर न अग्रेजी के प्रत्ययो के लिए हिन्दी प्रत्यय निश्चित कर लिए, जस अलमुनियम, प्लेटिनम आदि धातु नाम क अग्रेजी प्रत्यय के लिए उन्होन आतु निश्चित किया और इस आधार पर मगनीशियम के लिए आजातु शब्द बनाया—मग्नाशिया ग्रीक नगर का नाम है इसी स धातु का नाम बना यह तत्त्व जलते समय तज रोशनी छोडता है इसलिए आज अथान चमक शब्द को लेकर उसम 'आतु जोडकर इस धातु का नाम बनाया गया।

भौतिकी और गणित क सूत्र या फारमूला को लेकर बहुत झगडा होता है। कहा जाता है कि य सूत्र अन्तराष्ट्रीय ह इसलिए इनको नागरी अक्षरो म लिखन क बजाय ज्यो का त्यो ले लेना चाहिए। इस सम्बन्ध म डा० रघुवीर का कहना

है कि भौतिकी के सकेताक्षर या सूत्र अंग्रेजी शब्दों के आधार पर या संकेत है जैसे अंग्रेजी का a अक्षर ऐपलीच्यूट और एक्सेलरेशन का, g ग्राम का, दूसरे अंग्रेजी में केवल २६ वर्ण है, इसलिए उनको सकेताक्षरो की कमी पड जाती है जैसे ग्रेविटी के लिए व g कम लिखें, इसलिए वे बडे अक्षर (कपिटल) G लिखने लगते हैं। नागरी अक्षरों में यह कठिनाई नहीं है, क्योंकि मात्रा लगाने से सैकडो अक्षर उपलब्ध हो जाते हैं और अलग अलग संकेत दिए जा सकते हैं। इसी प्रकार वनस्पति और प्राणिशास्त्र नामों के बारे में है। अंग्रेजी में पहला शब्द जाति का नाम होता है, दूसरा विशेषण और तीसरा उपजाति का, जैसे तुलसी का लैटिन शब्द है 'ओसीमम ... ओसीमम सवटस हिन्दी में सामान्य तुलसी हो जाएगा क्योंकि हिन्दी में विशेषण पहले आता है। जो लोग लैटिन शब्दावली को ही रखने पर जोर देते हैं उन्हें याद रखना चाहिए कि जापानी भी वनस्पति और जीव जंतुओं का वैज्ञानिक नाम अपनी भाषा में ही देते हैं और हिन्दी की भांति उनकी भाषा में भी विशेषण विशेष्य के पहले लगता है। हिंदी में नाम देने का लाभ यह है कि इससे पता चल जाता है कि किस वनस्पति या जीव का वर्णन हो रहा है जबकि अंग्रेजी में सामान्य व्यक्ति लैटिन नामों के कारण यह नहीं जान पाता कि किस वस्तु की चर्चा हो रही है। वस्तुत डा० रघुबीर के सारे काम का आधार यही है कि देश में सभी विषयों की पूरी शिक्षा हिंदी और देश की भाषाओं के द्वारा होनी चाहिए और इसीलिए उन्होंने संस्कृत का सहारा लिया है क्योंकि द्रविड भाषाओं में भी संस्कृत के बहुत से शब्द समान रूप से व्यवहार में आते हैं।

डा० रघुबीर ने गणित के सूत्रों या सकेतों के बारे में बड़े विस्तार से विचार किया है। उन्होंने बताया है कि गणित के सूत्र कुछ तो रोमन और ग्रीक अक्षरों से बने हैं जैसे ग्रीक अक्षर 'पाइ' जो व्यास और परिधि के अनुपात ३.१४१६ को प्रगट करता है। डा० रघुबीर इसके लिए 'प्या' सकेत देते हैं। स्मरण रहे कि सबसे पहले व्यास-परिधि के इस अनुपात का हिसाब सन् ४७० ई० में भारत के महान् गणितज्ञ आर्य भट्ट ने ही लगाया था। डॉ० रघुबीर ने गणित के इन सब रोमन और ग्रीक सकेताक्षरों के देवनागरी सकेताक्षर निश्चित किए हैं। भारत की सभी भाषाएँ इन सूत्रों का व्यवहार कर सकती हैं। अक्षर सकेतों के अतिरिक्त जो आकृतिमूलक धन (+), ऋण (—), गुणन (×) और समता (=) आदि के संकेत हैं, वे तो हिन्दी में भी ज्यों के त्यों लिए जाएंगे। भौतिकी और गणित के सूत्रों की डॉ० रघुबीर ने पूरी सूची दी है।

गणित उन शास्त्रों में है सौभाग्य से जिसमें प्राचीन काल में हमारे देश में काफी काम हुआ था। वर्ग मूल का चिह्न (√) भारत में ही अरब लोगों द्वारा

यूरोप में गया। आधुनिक गणित का आधार शून्य (०) है, जिसका आविष्कार भारत में ही हुआ था। इसलिए यदि डॉ० रघुवीर गणित के शब्दों के लिए प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का सहारा लेते हैं तो यह सर्वथा उचित है। *वास्तव में अपने ही आविष्कृत भारतीय अंकों और संकेतों को छोड़कर तथाकथित अंतरराष्ट्रीय अंकों का सहारा लेना राष्ट्र के लिए लज्जा की बात है।* डॉ० रघुवीर ने प्राचीन गणित के अनेक ऐसे शब्दों को दिया है, जो बीजगणित, रेखागणित और अंकगणित में अंग्रेजी शब्दों की जगह प्रयुक्त हो सकते हैं और जो संस्कृतज्ञों को तो ज्ञात है, परन्तु जन-साधारण जिनको भूल चुके हैं। जैसे—न्यूनकोण (acute angle) अधिकोण (obtuse angle), कर्ण (hypotenuse) घात (power) छेदा (logarithma), ज्या (cosine of an angle in a right angled triangle) चरण (quadrant)

गणित की तरह वनस्पतिशास्त्र के लिए भी डॉ० रघुवीर ने प्राचीन आयुर्वेद का सहारा लिया है। अंग्रेजी नाम वास्तव में लैटिन के हैं और अंगरेज छात्रों के लिए भी ये दुर्बोध हैं। उदाहरण के लिए यूफोर्बियाई के बजाय एरंड कुल, रेताकिए के बजाय निंबू कुल, निक्टाजिनाए के बजाय पुनर्नवा कुल, भारतीय विद्यार्थियों के लिए अधिक सहज हैं। कोई कारण नहीं है कि भारत के बच्चे इन भारतीय नामों को छोड़कर लैटिन के अजीबोगरीब नामों को रटें।

वनस्पति और प्राणिशास्त्र वर्णनात्मक विज्ञान हैं धारणात्मक या कल्पनात्मक नहीं। यूरोपीय विद्वानों ने जब लैटिन और ग्रीक नाम खतम कर लिए तो वे उनको तोड़ मरोड़कर नए नाम गढ़ने लगे। कुछ नाम तो ऐसे गढ़े गए जिनका कोई अर्थ ही नहीं निकलता। भारतीय विद्यार्थी इनको केवल रट लेता है समझता नहीं। इनके स्थान पर यदि भारतीय नामों का प्रयोग किया जाए तो विद्यार्थी तुरंत समझ जाएगा। जैसे विदेशी नाम 'ऐसर' के बजाय हंस उसके लिए सहज है। *'हंस प्रजाति के अन्य भेदों के नाम भी उनकी* विशेषता के अनुसार सहज बनाए जा सकते हैं जैसे रक्तपाद हंस। उल्लेख्य है कि जापानी लोगों ने भी ऐसा ही किया है। उन्होंने पाश्चात्य तीन नाम के बजाय दो नाम रखे हैं—जैसे 'क्लोरिस सिनिका सीबोमी' के लिए उन्होंने केवल दो नाम 'इकोतो कवाराहिवा' रखे हैं। सीबोमी जो वैज्ञानिक का नाम है उन्होंने छोड़ दिया है।

स्तनपायी पशुओं के नामों में हिन्दी के तद्भव नामों के बजाय डा० रघुवीर *ने तत्समों को पसंद किया है* जैसे हाइना' (लकड़बग्घा) का उन्होंने 'तरक्षु' प्रजाति रखा है। इसी तरह 'हर्पेस्टेस' (नेवला) को 'नकुल' किया गया है। तर्क यह है कि सिंधी और मराठी में तरक्षु से उत्पन्न 'तरस' शब्द चलता है, इसी

तरह 'नकुल' से निकले हुए नेवला, नूल (काश्मीरी) शब्द है। नेवले के लिए ग्रीक भाषा में कोई शब्द नहीं है इसलिए नया शब्द हर्पेस्टेस अर्थात रेंगने वाला गढ़ा गया। सुतरां, इसका कोई औचित्य नहीं कि हिंदी में ग्रीक शब्द क्या रखा जाए। नकुल वंश के विभिन्न उपभेदों के नामकरण में भी डॉ० रघुवीर ने अर्थानुवाद करने के बजाय उनकी विशेषताओं के सूचक नाम देने की पद्धति अपनायी है जो वास्तव में बड़ी वैज्ञानिक है। यथा नेवले की एक प्रजाति है 'एडवर्डसाइ'। इस प्रजाति का नेवला चितकबरा होता है इसलिए इसका हिंदी नाम हुआ 'बिंदुचित नकुल'। इसका एक और उपभेद किया गया है इसके स्थान के अनुसार, जैसे इपरटस एडवर्डसाई फरजिनियस'। यह मरभूमि में पाया जाता है इसलिए डॉ० रघुवीर ने इसको मरु बिंदु नकुल नाम दिया है। यह पद्धति सर्वथा वैज्ञानिक और बुद्धिसम्मत है। यह आग्रह बेतुका है कि ऐसा न करके इसका पाश्चात्य नाम ही रखा जाए। यह दुराग्रह देश में शिक्षा और विज्ञान के प्रसार में बाधक भी है। अवश्य ही विशेषता के अनुसार भारतीय नामकरण करने में काफी मेहनत और अध्ययन की जरूरत होगी।

लैटिन या ग्रीक नामों को स्वीकार करने में एक और कठिनाई है। कई लैटिन नाम एक-से हैं, अन्तर केवल उनकी वर्तनी या स्पेलिंग में है। इससे विद्यार्थी के चक्कर खाने की गुंजाइश रहती है। जैसे लैटिन में मुस्टेला-वीज़ल (खरगोश के समान जन्तु) और मुस्टेलस-डागफिश' (एक मछली का नाम) है। इन दोनों के वंश को 'मुस्टेलिडाइ' कहते हैं। इसी प्रकार हमीगालस (बिलाव) और हमीगलियस (शाक मछली) है। इसलिए जन्तुओं के नामकरण में संस्कृत या देशी भाषा का सहारा लेना अधिक उचित है। हो सकता है कि ये नाम अपरिचित और कठिन लगें फिर भी लैटिन-ग्रीक नामों से तो हर हालत में वे कम कठिन और ज्यादा सुबोध होंगे। जैसे चूहे की विभिन्न प्रजातियों के लिए तरु मूषिका, गृहमूषिका, क्षत्रमूषिका कण्टमूषिका आदि।

अंग्रेजी या तथाकथित अन्तरराष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों को ज्यों का त्यों लेने के समर्थकों के बोध हेतु डॉ० रघुवीर ने चीनी भाषा में पारिभाषिक शब्द-निर्माण के कुछ उदाहरण दिए हैं। जैसे फिल्म=जान पिएन (मुलायम दफ्ती) वोल्टाज=तिएन मोटरकार=चिच रलवे=त्ये-ताओ (लोहा मार्ग), ट्रेन=लिए चे (गाड़ियों की पाँत) एटलस=यू-तू सीमेंट=युद-वी (पानी मिट्टी), कंक्रीट=हुन निंग तू ए० सी० (बिजली)=चिआओ लिउ, टेलीफोन=तिएन हुआ ची (बिजली वाणी मशीन), टेलीविजन=तिएन शीह (बिजली दृष्टि), हाइड्रोजन=चि इंग, गैस=चि, आक्सीजन=याग।

ध्यान रहे कि चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द के लिए अलग चिह्न है—हाइड्रोजन आक्सीजन आदि गैसों के लिए जो चिह्न बनाए गए हैं, उन सबमें गैस का चिह्न जुड़ा हुआ है।

जो लोग यह शोर मचाते हैं कि अंग्रेजी या तथाकथित अन्तरराष्ट्रीय शब्दों का पल्ला छोड़ देने से हम विज्ञान में पिछड़ जाएंगे उनको चीन या जापान में हुई वैज्ञानिक प्रगति को देखना चाहिए।

डा० रघुवीर के मूल सिद्धान्तों पर विचार करने के बाद अब हम उनके कोश के कुछ नमूने लेकर विचार करना चाहिए। सबसे पहले एक शब्द 'ऐक्शन (action) को ले लें—डा० रघुवीर के कोश में इसके बीस से अधिक प्रयोग लिए गए हैं, जैसे नीगम, क्रिमिनल, पर्सनल, मिक्स्ड आदि। श्री राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित शासन शब्द कोश में इसके करीब १२ प्रयोग दिए गए हैं। ऐक्शन दोनों कोशों में कार्यवाही है राहुल जी ने इसका मूल रूप कारवाई भी दिया है। राहुल जी के कोश में कारवाई के साथ अलग अलग अर्थ में अलग अलग शब्द जुड़ते गए हैं जैसे कानूनी कारवाई दीवानी कारवाई जबकि डा० रघुवीर ने वाद और व्यवहारवाद शब्द दिए हैं। दूसरा शब्द लीजिए इनलैंड रेवेन्यू। डॉ० रघुवीर ने इसके लिए 'अन्तर्देशीय आगम' और राहुल जी ने अन्तर्देशीय आय' लिखा है। साथ ही डा० रघुवीर ने इनलैंड के लिए 'देशाभ्यन्तर' भी दिया है। उल्लेखनीय है कि आगम' शब्द 'आगम निगम' के रूप में हिन्दी में दूसरे अर्थ में प्रचलित है इसलिए अर्थ बदलने से भ्रान्ति होना स्वाभाविक है। दूसरी प्रवृत्ति जिसकी बहुत आलोचना की गयी है सब जगह उपसर्ग लगाने की है जैसे डिफेंस के लिए प्रतिरक्षा। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने इस पर आपत्ति की है कि प्रति उपसर्ग यहाँ व्यर्थ है क्योंकि रक्षा स्वयं आक्रमण के प्रति रक्षा है, रक्षा की प्रतिरक्षा क्या होगी ! यदि साधारण रक्षा और देश रक्षा में अन्तर ही करना हो तो राष्ट्र रक्षा या देश रक्षा शब्द ज्यादा अच्छा होता। परन्तु प्रतिरक्षा' के मामले में अकेले डा० रघुवीर दोषी नहीं राहुल जी ने भी यही शब्द दिया है और शिक्षा मन्त्रालय ने भी अपने कोश में इस शब्द को स्वीकार किया है।

एक प्रचलित शब्द लीजिए डिपाजिट। इसका प्रचलित पर्याय जमा है, डॉ० रघुवीर और राहुल जी दोनों ने इसके लिए निक्षेप को पसन्द किया है। इसका नतीजा यह हुआ कि डिपाजिट एट कॉल' के लिए डॉ० रघुवीर को याचनादेय निक्षेप जैसा शब्द गढ़ना पड़ा, जबकि शिक्षा मन्त्रालय ने 'माँग जमा' जैसे सरल शब्द से काम चला लिया।

एक लाख शब्दों के कोश में से एक-दो शब्दों को लेकर पूरे कोश को बुरा-भला नहीं कहा जा सकता, परन्तु बानगी के तौर पर हम कुछ ऐसे शब्दों को लेंगे, जिनसे डॉ० रघुवीर के कोश की प्रवृत्ति का पता चल सके। एक शब्द लीजिए 'इनकम टैक्स'। डा० रघुवीर ने इसके लिए 'आय कर' को स्वीकार किया है, जो सरल भी है और प्रचलित भी। परन्तु मूल शब्द में अनेक समास भी बनते हैं। जैसे—

इनकम टैक्स डिडक्शन —व्यवकलन (डा० रघुवीर)
कटौती—प्रचलित

इनकम बेयरिंग ब्लाक —आय प्रदायी-खण्ड (डॉ० रघुवीर)
आय वाले खण्ड—प्रचलित

इनकम टैक्स रिटर्न —आयकर प्रतिवरण (डॉ० रघुवीर)
हिसाब—प्रचलित

इनकम टैक्स रिफ़ंड —आयकर प्रत्यर्पण (डा० रघुवीर)
वापसी—प्रचलित

स्पष्ट है कि उपर्युक्त उदाहरणों में डॉ० रघुवीर ने प्रचलित व सरल शब्दों को ले लेने के बदले नए शब्द गढ़ना पसन्द किया, जो अर्थ की स्पष्टता की दृष्टि से भी इनसे बेहतर नहीं।

इसी प्रकार का एक और शब्द 'पोस्ट' है जिसके लिए 'डाक' शब्द प्रचलित है। डा० रघुवीर ने भी शुरू में इसी शब्द को स्वीकार किया जैसे पोस्टेज= डाक, पोस्टेज पेड=डाक व्यय देकर, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने एक विकल्प भी दिया है 'पत्र प्रेष शुल्क' और आगे के शब्दों में उन्होंने 'डाक' के बदले 'प्रेष' को ही अपनाया। जैसे—

पोस्ट कार्ड—प्रेष पत्रक
रिप्लाई—सोत्तर (जवाबी)
पोस्ट पार्सल—प्रेष परिवेष्ट
पोस्टल अधिकारी—प्रेषाधिकारी
पोस्ट इन्श्योरेंस—प्रेषालय आगोप

इन सब उदाहरणों में 'डाक' शब्द का बखूबी प्रयोग हो सकता था। इसको यौगिक बनाने में भी कोई कठिनाई न थी।

इसी तरह का एक और शब्द है 'इन्श्योरेंस'। इसके लिए डॉ० रघुवीर ने प्रचलित बीमा के बजाय आगोप शब्द बनाया है और इसी के वजन पर उन्होंने अग्नि आगोप, स्वास्थ्य आगोप आदि शब्द गढ़े हैं। बेकारी बीमा के बजाय उन्होंने

वृत्तिहीनता आगोप', बीमा दलाल के लिए 'आगोप मध्यग' आदि शब्द गढ़े हैं।
एक बात उनके पक्ष में कही जा सकती है कि इंश्योर्ड के लिए 'आगोपित'
आसानी से बनता है, जबकि बीमा में इन प्रत्यय लगाने में कठिनाई है। परन्तु
हम इस सिद्धान्त को मान चुके हैं कि विदेशी शब्दों का अनुशासन हिन्दी व्याकरण
के अनुसार होगा, इसलिए हमें बीमित या बीमायित, गजटित फिल्मित आदि
शब्द भी बनाने पड़ेंगे।

डाक के अलावा एक और प्रचलित शब्द है रेल। डा० रघुवीर ने इसके
लिए अयोयान (लोहा गाड़ी) या सयान और रेलवे के लिए अयोमार्ग शब्द रखा
है। यह ठीक है कि जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषाओं में भी इसी अर्थ के समास
आइसेनबान चेमिन द फर और जेलज्नाया दरोगा प्रचलित हैं और हमारे देश में
भी बोलचाल में 'धुआँ गाड़ी' शब्द प्रचलित था। पर हम इस तथ्य को भी
अनदेखा नहीं कर सकते कि रेल शब्द भी देश में सभी भागों और भाषाओं में
प्रचलित हो गया है इसलिए तर्क 'अयोयान' के पक्ष में होने पर भी हम रेल
को अपनाना ही पड़ेगा और इसी से अन्य शब्दों का समास करना पड़ेगा।

डा० रघुवीर के कोश में या यों कहिए कि उनकी कार्यपद्धति में एक त्रुटि
है। उन्होंने संस्कृत ग्रंथों में तो शासन विधि और विभिन्न विषयों के शब्दों
की खोज की, परन्तु इस समय देश के विभिन्न भागों में प्रचलित खेतीबाड़ी
दस्तकारी व्यापार महाजनी आदि विभिन्न धन्धों के शब्दों के संग्रह का प्रयत्न
नहीं किया न इस प्रकार के जो प्रयत्न कुछ ग्रियर्सन और अन्य विद्वानों द्वारा
हुए हैं उनका ही लाभ उठाया। उदाहरण के लिए डा० मोतीचन्द्र और
रायकृष्ण दास ने चित्रकला और मूर्तिकला के बहुत-से प्रचलित पारिभाषिक
शब्दों की सूची अपनी पुस्तकों में दी है। बनारस में मल्लाहों में नाव और
नौचालन के बहुत-से शब्द चलते हैं यथा गलही (नाव का आगे का भाग)
गोनरस्सा (मस्तूल) डाँडा (चप्पू) पाता (डाँडे में लगा लकड़ी का चौड़ा
पत्ता जो पानी काटता है) किलवारी (पतवार), सेवाई (लोहे का टुक जिसमें
डाँड डाल कर चलाते हैं) बाहा (रस्सी, जिसमें फँसा कर डाँड चलाते हैं)
गुन (रस्सी, जिसे मस्तूल में बाँध कर नाव खींचते हैं) चट्ट (नाव लगाने की
जेटी) आदि। इसी तरह पनसुइया डोंगी, घटहा (आर-पार जाने वाली फेरी)
बजरा आदि विभिन्न प्रकार की नावों के नाम हैं। इसी तरह देश के और भागों
में समुद्री और नदी की मछलियों व जीव जन्तुओं के नाम हैं। केरल में समुद्री
शब्द जैसे कयल (बैक-वाटर), गढ़वाल कुमायूँ में पहाड़ी शब्द जैसे धार
(रिज) दरड़ (पत्थर का सीढ़ीदार ढलाव) धूरा (ऊँचा पहाड़), धून (लोहा

प्रयस्क) गाड (पहाडी नदी) गडेरा (छोटी नदी), मुणाल (पहाडी रग बिरगा पक्षी) आदि हैं। पर पक्षियो के भी प्रचलित नामा का सग्रह करन का प्रयत्न नही किया गया है यहाँ भी प्राचीन सस्कृत नाम दे दिए गए हैं जस बस्टड के लिए पुराना सस्कृत नाम सारग दिया गया है। इससे यह पता नही चलता कि यह बडा सारस है शुतुरमुर्ग की तरह का जो कच्छ मे पाया जाता है और अब मिट रहा है। इसका कोई स्थानीय नाम जरूर होगा।

रगो को लीजिए। डा० रघुवीर ने रगो के सस्कृत नामो की एक बडी सूची कोश के प्रारम्भ मे दी है परन्तु उनके प्रचलित नामो के सग्रह का प्रयत्न नही किया है। जसे 'ब्राउन ग्रोकर' का अनुवाद वह करते है बभ्रुगैरिक जबकि रगसाजो म प्रचलित नाम है—मलयागिरी, सुनहरा कत्थई। बीवर ग्रे का प्रचलित नाम है करजुआ डॉ० रघुवीर के कोश म इसका नाम नहीं है। बोडो' का वह देते हैं 'कपिशक', जब कि इसका नाम है पतगी क्योकि यह पतग की लकडी के अर्क से बनता है। ब्लड रेड का वह गढते हैं रक्तापीत जबकि वास्त विक चलन मे यह है करेजई —भेड की कलजी का रग। इसी तरह बर्ट अम्बर (Burnt umber) के लिए डा० रघुवीर दग्ध बभ्रु ही देते हैं जब कि असली शब्द है किशमिशी। सस्कृतीकरण की प्रवृत्ति यहा तक चली गई कि है तदभव शब्दो को भी डा० रघुबीर तत्सम बना देते है छुरी को व क्षुरी लिखते हैं। अश्योरेंस का व प्रणाप और इश्योरेंस को वे आगोप कहते हैं जबकि व्यवहार मे दोनो का एक ही अर्थ है और एक शब्द बीमा पहले से प्रचलित है। हमारा उपसर्गों का भडार अग्रेजी स कम नहा है इसका यह अर्थ तो नही कि हम ख्वाहमख्वाह उनका प्रयोग करते चले जाए। हर जगह अग्रजी के अलग अलग शब्दो के लिए हिन्दी के अलग अलग शब्द देने की क्या जरूरत है, न अग्रेजी म ही एसा हो सकता है। हिन्दी के घिया लौकी के लिए अग्रजी म दो शब्द तो नही दिए जाएगे। जिस तरह अग्रजी म लटिन फ्रेंच एग्लो सक्सन आदि अनेक भाषाओ म शब्द आए हैं उसी तरह हिन्दी म भी आए हैं। इसलिए इस प्रकार के शब्दो का बायकाट करके उपसर्ग व प्रत्यय जोड जोडकर शब्द गढते जाना भी उचित नही। जसे अग्रजी का अटैक एग्रेशन इनवजन, इनकर्शन ग्रानसलाट रेड इनरोड असाल्ट और बटरी के लिए डा० रघुबीर ने क्रमश आक्रमण अभ्याक्रमण या अग्राक्रमण अभियान, क्षिप्राक्रमण अभ्याघात सहसाक्रमण, अभि द्रव प्रहार और सप्रहार शब्द दिए हैं जबकि इनके लिए हमला आक्रमण चढाई घुसपठ धावा छापा, अतिक्रमण प्रहार या मार और धमामान आदि शब्दो को काम म लाया जा सकता था। मध्ययुग की फौजी और जगी शब्दावली म

इन सबके लिए अच्छे शब्द मिल सकते हैं। इसलिए मूल प्रश्न कार्यविधि का है। सबसे पहले हमें हिन्दी प्रदेशों के विभिन्न भागों में प्रचलित शब्दों का सकलन करना चाहिए, फिर हिन्दी की सगोत्र भाषाओं से और संस्कृत से लेना चाहिए। अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से आए और आने वाले शब्दों का भी बायकाट सम्भव नहीं है। रेडियो, स्पुतनीक, हाराकीरी, जेट आदि ऐसे ही शब्द हैं। शब्द निर्माण की क्रिया प्रतिदिन नए-नए शब्दों के आगमन के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकती। अखबार और रेडियो के कर्मचारी नए शब्दों के पर्याय के गढ़े जाने और कोश में छप कर आने का इंतजार नहीं कर सकते। उन्हें तो तत्काल शब्द चाहिए, या तो वे उस अर्थ से मिलते जुलते वाले अपने देशी शब्द से काम चलावेंगे, नहीं तो उसी शब्द को लेकर पचा लेंगे।

एक बात और है यह सभी को मालूम है कि इस समय हिन्दी की गाड़ी नयी शब्द निर्माण के प्रश्न पर अटक गयी है। मान लिया गया है कि हिन्दी को विश्वविद्यालय, शासन और व्यापार उद्योग का माध्यम बनाने से पहले उक्त विषयों के सारे शब्द हिन्दी में बन जाने चाहिए। इसी आधार पर शिक्षा मन्त्रालय में काम भी हो रहा है, परन्तु जैसा कि पिछले १०-१५ वर्षों के अनुभव से सिद्ध हो गया है यह काम कभी खतम होने वाला नहीं, इसलिए यह शर्त भी कभी पूरी होने वाली नहीं कि पहले शब्द बन जाएँ, तब काम शुरू हो।

दूसरी तरफ यह मत है कि हमें हिन्दी में काम तुरन्त शुरू कर देना चाहिए और जो शब्द न बन सकें उन्हें अंग्रेजी से ही फिलहाल ले लेना चाहिए। इससे यह होगा कि हिन्दी में पढ़ाई लिखाई और कामकाज शुरू होने से चिन्तन हिन्दी में होने लगेगा, नए विचारों के साथ नए शब्द भी आएंगे, कुछ अंग्रेजी के शब्द भी रह जाएंगे, कुछ बाद में हटाए जा सकते हैं। तमिल में सैकड़ों वर्षों से प्रचलित शब्दों को हटाने का प्रयत्न हुआ है। यह भी स्मरण रहे कि डा० रघुवीर और शिक्षा मन्त्रालय के कोशों के बनने के पहले भी हिन्दी में विभिन्न विषयों पर ग्रंथ लिखे जा रहे थे और अब भी सारे लेखक इन कोशों का ही सहारा नहीं लेते। सैकड़ों हजारों शब्द अखबारों के दफ्तरों में, कारखानों में और बाजार में गढ़ लिए गए और चलने लगे और आज भी ऐसा हो रहा है।

परन्तु उपर्युक्त सिद्धान्त को मान लेने के बाद भी डॉ० रघुवीर के कोश की महत्ता और उपयोगिता में लेश-मात्र की कमी नहीं होती। डॉ० रघुवीर ने जिन सिद्धान्तों को स्वीकार किया उन्हीं पर शिक्षा मन्त्रालय का हिन्दी निदेशालय भी काम कर रहा है। डॉ० रघुवीर के कोश ने आगे के कोशकारों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनको इस बात का श्रेय है कि उन्होंने पहली बार एक

जगह ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया और इस कार्य की पद्धति निर्धारित की।

कोई भी पर्याय ढूंढते समय डॉ० रघुवीर का कोश प्रकाश स्तम्भ का काम करता है। उनके कोश से हम अर्थ का बोध हो जाता है और अधिक उपयुक्त शब्द खोजने में मदद मिलती है। इस रूप में डा० रघुवीर का कोश नींव का पत्थर है। उनके उपसर्ग प्रत्यय जोड़े हुए शब्दों की हँसी भले ही उड़ाई जाए किन्तु शब्द निर्माता को सहारा इसी क्रिया का लेना पड़ता है। हाँ उनके काम की पूर्ति अवश्य की जा सकती है। सभी प्रचलित शब्दों का संग्रह करके गढ़े हुए दो शब्दों के स्थान पर उनका प्रयोग करना उचित है फिर भी हजारों शब्द ऐसे रहेंगे जिन्हें गढ़ना ही होगा प्रचलित शब्दों को भी यौगिक बनाना ही होगा और इस कार्य में डा० रघुवीर का कोश हमेशा पथ प्रदर्शन करेगा।



श्री राजेन्द्र द्विवेदी

१८
हिन्दी साहित्य कोश : महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ

(१)

हिन्दी साहित्य के अनुदिन वर्धमान भंडार को देखते हुए यह सर्वथा वाछनीय था कि आक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑफ इंगलिश लिट्रेचर की तरह का एक विशाल सन्दर्भ ग्रन्थ अविलम्ब हिन्दी में भी निकले। साहित्यिक वैविध्य के साथ यह भी अपरिहार्य हो जाता है कि साहित्य सेवियों का कार्यक्षेत्र भी अपने अपने कुछ विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित होता जाए और इसी कारण शेष भंडार को हस्तामलक रखने के लिए आज के युग में सन्दर्भ ग्रन्थों का तैयार किया जाना युग की माँग बन गया है। विद्या को कंठ में लेकर चलने वाले प्राचीन युग के आचार्यों के लिए भले ही ऐसा सम्भव रहा हो पर आज यह कदापि सम्भव नहीं है और वस्तुतः विद्या के सर्वश्रेष्ठ सुरभित भंडार आज सन्दर्भ ग्रन्थों में ही सँजो कर सवार कर रखे जाते हैं। समग्र ज्ञानकोष पर आपका अधिकार होना आवश्यक नहीं। आवश्यक यह है कि आपके पुस्तकालय में श्रेष्ठ सन्दर्भ ग्रन्थों के अद्यतन संस्करण उपलब्ध रहें। बस जब आवश्यकता पड़ी समाधान कर लिया।

युग की इस माँग की पूर्ति की दिशा में 'हिन्दी साहित्य कोश' (दो खण्डों में) का प्रादुर्भाव हिन्दी जगत की एक बहुत बड़ी घटना है। उसकी प्रगति की इयत्ता का यह एक निश्चित मानदंड और मील प्रस्तर है। पिछले पचास साठ वर्षों में हिन्दी साहित्य के सृजनात्मक और आलोचनात्मक सभी पहलुओं में और अध्ययन अध्यापन अनुसंधान के सभी क्षेत्रों में लेखकों साहित्य-सेवियों और विद्वानों की एक साधनारत शृंखला के अथक योगदान से व्यापक विस्तार तो आया ही है, साथ ही उसमें विविधतापूर्ण सम्पन्नता और एक महान् साहित्य की उपलब्धियाँ

के लिए अपरिहार्यत अपेक्षित गरिमा और गहराई का भी सन्निवेश हुआ है। इन सब उपलब्धियो के सम्यक निरूपण के लिए एक सुनियोजित साहित्य कोश की आवश्यकता की इस हिन्दी साहित्य कोश द्वारा बहुत सीमा तक पूर्ति हो गई है।

इस साहित्य कोश के प्रथम भाग की योजना इस प्रकार है हिन्दी साहित्य कोश' के विषय विस्तार को सीमित रखते हुए इसमे हिन्दी साहित्य की प्राचीन और नवीन पारिभाषिक शब्दावली का प्रामाणिक अर्थ साहित्यिक गतिविधि को सचालित और प्रभावित करने वाले विविध वादो और प्रवृत्तियो का ऐतिहासिक और शास्त्रीय परिचय शिष्ट तथा लोक-साहित्य के विविध रूपो का विवेचन साहित्यिक भाषा तथा बोलियो का भाषावैज्ञानिक परिचय तथा हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बन्धित अन्यान्य भाषाओ और उनके साहित्यो का सामान्य ज्ञान प्राप्त कराने का प्रयास किया गया है। इस कोश मे सामान्यत नीचे लिखे विषयो की पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दावली को लिया गया है

१ प्राचीन साहित्यशास्त्र—रस ध्वनि अलकार रीति छन्द आदि।
२ पाश्चात्य साहित्यशास्त्र—प्राचीन तथा नवीन।
३ साहित्य के विविध वाद तथा प्रवृत्तियाँ—प्राचीन तथा आधुनिक।
४ साहित्य के विविध रूप—प्राचीन तथा नवीन प्राच्य तथा पाश्चात्य।
५ हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल युग तथा धाराए।
६ साहित्यिक सन्दर्भ मे प्रयुक्त दार्शनिक मनोवैज्ञानिक राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धान्त।
७ लोक-साहित्य—शास्त्रीय विषय तथा प्रचलित रूप।
८ आधुनिक भारतीय भाषाओ तथा सस्कृत फारसी और अग्रेजी के साहित्यो का इतिहास।
९ हिन्दी भाषा उसकी जनपदीय बोलियाँ प्राचीन तथा भारतीय आर्य भाषाओ और सम्बद्ध आर्य भाषाओ का परिचयात्मक विवरण।

सम्पादको का यह दावा नही है (सम्भव भी नहीं है) कि इन विषयो की सम्पूर्ण पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दावली को इस कोश मे निक्षेप कर दिया गया है। कुछ बातो के बारे मे अभी सर्वसम्मत निर्णय न हो सकने से विषयगत परिनिष्ठितता नही आई है तो कुछ बातो के बारे मे प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। सम्पादको के लिए यह भी आवश्यक था कि विषय निर्वाचन और प्रतिपादन के लिए अपने आदर्श और प्रतिमान स्वय निश्चित करें और अपने मार्ग का स्वय निर्माण करें। पहले भाग की टिप्पणियाँ अपने से ऊपर अधिकारी

विद्वानों द्वारा लिखी गई है। इसमें विविध क्षेत्रों के विद्वानों का समुचित प्रतिनिधित्व हुआ है और इस दृष्टि से भी कोश की सामग्री यथासम्भव प्रामाणिक और उपयोगी बन सकी है।

दूसरे भाग में साहित्य के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाली नामवाची शब्दावली को लिया गया है जिसमें नीचे लिखे वर्गों के नाम प्रमुख रूप में आए हैं

१ लेखक
२ कृतियाँ
३ प्रधान पात्र (रचनाओं के)
४ प्रमुख साहित्यिक संस्थाएं
५ प्रमुख पत्र पत्रिकाएं
६ पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्र तथा कथा संदर्भ (हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त)

इन नामों में अनूदित रचनाओं और अनुवादकों के नाम छोड़ दिए गए हैं। लेखकों में ऐसे लेखकों को ही लिया गया है जिनका जन्म १९१५ ईसवी तक हो चुका था और उनकी भी वही कृतियाँ ली गई हैं जिनका प्रकाशन १९५० ईसवी तक हो चुका था। इस प्रकार स्थूल रूप से इसमें १९५० तक प्रकाशित सामग्री को लिया गया है। कोश का मुख्य केन्द्र साहित्य और साहित्यकार ही रहे पर उनके साथ हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वानों प्राध्यापकों प्रचारकों, सेवियों तथा विभिन्न विषयों के माध्यम से लिखने वाले विद्वानों को भी प्रस्तुत कोश में सम्मिलित किया गया है।

सम्पादकों ने माना है कि दूसरे भाग का कार्य-क्षेत्र पहले कार्य की तुलना में ज्यादा कठिन था। बहुत-से लेखकों तथा ग्रंथों के बारे में अभी तक स्पष्टता स्थिरता नहीं है। प्राचीन मध्ययुगीन और कुछ आधुनिक लेखकों के बारे में हमारे पास कुछ कम प्रामाणिक सामग्री है। तिथियाँ तथा जीवनवृत्तों के बारे में स्थिति ज्यादा अनिश्चित है। इन दृष्टियों से दूसरे भाग की सामग्री का संकलन सम्पादन ज्यादा दु साध्य और श्रमसाध्य कार्य रहा है और उसकी सामग्री के बारे में विनेपत बहुत कुछ कहा जा सकेगा। इस भाग में संसार में ऊपर टिप्पणी लेखकों का योगदान है जिनमें से अधिकांश प्रतिष्ठित विद्वान् हैं।

हिन्दी साहित्य कोश के दोनों भागों को देखकर पहला प्रभाव यही पड़ता है कि एक महान् और उपयोगी भवन के निर्माण की योजना बनाते समय और आधार शिला रखते समय वास्तुपतियों के सामने उस भवन की आवश्यकताओं और प्रसार का पूरा क्षेत्र सर्वथा स्पष्ट न था और उसका निर्माण कर आगे बढ़ चुकने

के बाद ही यह अनुभव किया गया कि कुछ अत्यंत उपयोगी बातों की व्यवस्था करने के लिए शीघ्र ही एक दूसरा उपभवन भी बनाना पड़ेगा। यह उपभवन यद्यपि पाँच वर्ष बाद तैयार हुआ और इसके लिए मूल भवन में कुछ हेर फेर करना सम्भव न था फिर भी कुशल स्थापतियों ने दूसरे उपभवन को पहले के साथ इतनी दक्षता से जोड़ दिया कि सहसा यह भान न हो पाए कि दोनों की योजना एक साथ नहीं बनाई गई। दूसरे भाग की सम्पादकीय भूमिका में इस स्वीकार भी किया गया है

'हिन्दी साहित्य कोश (जो अब द्वितीय संस्करण में भाग १ के रूप में प्रकाशित होने जा रहा है) के प्रकाशन के समय हम अनुभव कर रहे थे कि प्रस्तुत प्रयास में हम कुछ अन्य अत्यंत उपयोगी विषयों को सम्मिलित नहीं कर सके और उसी समय मन में यह भी विचार था कि हिन्दी साहित्य के लेखकों रचनाओं प्रधान पात्रों तथा पौराणिक संदर्भों का एक दूसरा भाग तैयार करने पर ही यह कार्य पूर्ण हो सकेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि पहले भाग की भूमिका लिखते समय सम्पादकों के सामने यह स्पष्ट न था कि इस कार्य की पूर्णाहुति होने से पहले एक दूसरा भाग भी आवश्यक होगा अन्यथा दूसरे भाग के बारे में यथावश्यक उल्लेख पहले भाग में भी होना ही चाहिए था। इस सम्बन्ध में यह बात निर्विवाद रूप से मानी जाएगी कि ऐसे महान् ग्रन्थों की पूरी योजना सर्वांगीण रूप में पहले-पहल न बना लेने में बड़ी गड़बड़ी की गुंजाइश रहती है। बस तो छोटे से-छोटे ग्रन्थ के लेखक भी अपने पूरे ग्रन्थ की सर्वांगीण योजना बनाने के बाद ही अपना काम शुरू करते हैं पर ऐसे महान् ग्रन्थ में तो यह अपरिहार्य रूप से आवश्यक हो जाता है।

योजना न बनाने का ही यह प्रतिफल है कि पूरा ग्रन्थ विषयानुसार दो खण्डों में विभाजित है। विषयानुसार जिल्दों का विभाजन किसी भी बड़े आयोजन में एक आम बात है और इसके विरोध में वस्तुतः कुछ कहा भी नहीं जा सकता। बड़े संग्रह ग्रन्थों में ऐसा प्रायः होता ही है परन्तु इस तरह का कोई भी कोश-ग्रन्थ आज तक नहीं बना है। कोश ग्रन्थों में जिल्दों का विभाजन विषयानुसार नहीं होता बल्कि वर्णक्रम के अनुसार ही होता है। कोशों में विषय और निरूपण की समग्र मान्यताओं को छोड़कर आज की दुनिया में केवल वर्णक्रम का ही सहारा लिया जाता है। बस संस्कृत कोश ग्रन्थों में वर्णक्रम का महत्त्व न था और शब्दों का संग्रह करने में वर्णक्रम की ओर ध्यान न देते थे बल्कि शब्दों का संकलन समान विषय की दृष्टि से किया जाता था। स्वयं अमरकोश

म स्वरवर्ण और भूमिका आदि के क्रम से सामग्री को सज्जित किया गया है वर्णक्रम यदि नहीं माना भी जाना था तो नामायवर्ग आदि म शब्द के अंतिम वर्ण के क्रम की ओर ध्यान रखकर एक ही अक्षर म अंत होने वाले शब्द इकट्ठे सजाए जाते थे। पर आज कोश ग्रंथो मे निरूपण विषयानुसार न होकर वर्णक्रम के अनुसार होता है। इस प्रसग मे यदि समग्र ग्रंथ का दो भागों मे निपटाना प्रयोजनीय था तो उदाहरण के लिए अ स लेकर ज तक के शब्द पहले खण्ड मे आते और झ से म लेकर ह' अक्षरों म शुरू होने वाले शब्द दूसरे खण्ड मे। इस प्रकार स जिल्दो का विभाजन होने पर ही पूरे ग्रंथ को सुगठित रूप मे योजनाबद्ध कहा जा सकता था। किन्तु हिन्दी साहित्य कोश के विषय म ऐसा नहीं हुआ।

जैसा मैंने ऊपर कहा बाद म पूरे कौशल के साथ दोनों खडों को इस प्रकार जोड दिया गया जिससे परस्पर किसी प्रकार की असगति या असबद्धता न आने पाए। पहले खड म व्यक्ति नामो का उल्लेख बिलकुल न करने स यह काम ज्यादा कठिन भी न था लेकिन एसी स्थिति म एकाध खामी रह जाना बहुत ही सभव था और ऐसा हुआ भी। जब नाम वाली शब्दावली का पहले खड म कोई सबध नही है, तो फिर उस खड म 'अरघरी' नाम का उल्लेख क्या? स्पष्ट है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी जो हो चुका था सुधार योग्य न रहा था।

(२)

पहले भाग म सभी प्रमुख भारतीय भाषाओ पर टिप्पणिया दी गई हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओ के अलावा सस्कृत, पालि प्राकृत अंग्रेजी और फारसी भाषाएँ भी शामिल हैं। अग्रजी सबधी टिप्पणी छ स्तभों तक चलती है। स्वभावत हिन्दी सबधी टिप्पणी सबसे बडी है और वह लगभग बारह स्तभ तक व्याप्त है। इन टिप्पणियो के अतगत प्रत्येक भाषा के भाषागत विकास और सौष्ठव की चर्चा करते हुए उसके साहित्य की प्रमुख धाराओ और उसके प्रमुख साहित्यकारो और साहित्यिक कृतियो का उल्लेख किया गया है। किन्तु इन भाषाओ की सूची म सिन्धी का अभाव खटकता है। सामान्यत य टिप्पणिया सपादकों की व्यापक दृष्टि की ही परिचायक हैं अन्यथा हिन्दी साहित्य कोश म केवल हिन्दी या ज्यादा से ज्यादा प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओ का ही उल्लेख एक दृष्टि स पर्याप्त माना जा सकता था। इस बारे म हिन्दी के साहित्यकारों को सदैव यही व्यापक और अखिलभारतीय दृष्टिकोण अपनाना होगा। वह दिन दूर नही है जब अन्य समग्र भारतीय भाषाओ के साहित्य की

महान् कृतियों के अनुवाद हिन्दी में अविलंब उपलब्ध हो जाया करेंगे और इस प्रकार हिन्दी साहित्य समग्र भारतीय साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों से समृद्ध रहेगा। साथ ही इसका परिणाम यह होगा कि किसी भी भारतीय भाषा भाषी को किसी भी दूसरी भारतीय भाषा के साहित्य से परिचय प्राप्त करने के लिए हिन्दी का आश्रय लेना होगा और हिन्दी शृंखला भाषा के रूप में अपने दायित्व का समुचित निवहन करके ही रहेगी।

हिन्दी साहित्य की प्राचीन और मध्यकालीन प्रवृत्तियों की मीमांसा करने वाली टिप्पणियों के साथ साथ उसकी आधुनिकतम प्रवृत्तियों पर भी टिप्पणियों को संकलित किया गया है। इस प्रसंग में कुछ साहित्यिक दार्शनिक धारणाओं को भी लिया गया है। अभिव्यंजनावाद पर तीन स्तंभ की टिप्पणी है तो अतियथार्थवाद सम्बन्धी टिप्पणी भी प्राय इतनी ही बड़ी है। अस्तित्ववाद की साहित्यिक प्रवृत्ति का विवरण भी तीन स्तंभों में दिया गया है। अद्वैतवाद अनात्मवाद आत्मावाद अनीश्वरवाद अविकृतपरिणामवाद और अरविंद दर्शन आदि पर भी पृथक् पृथक् टिप्पणियाँ प्रथित की गई हैं यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध साहित्य से नाममात्र का या उतना ही है जितना समाज शास्त्र की किन्हीं अन्य इकाइयों से। यह ठीक है कि एक साहित्यकोश दर्शनकोश मानविकी कोश या समाजशास्त्र कोश का स्थानापन्न नहीं हो सकता फिर भी साहित्यिक चिंतन को प्रभावित करने वाली दार्शनिक विचारधाराओं का एक साहित्यकोश में निरूपण अनुचित भी नहीं ठहराया जा सकता।

इस दृष्टि से कोश की प्रकृतिगत एकरूपता की रक्षा के उद्देश्य से सम्पादक मंडल की ओर से प्रत्येक शब्द या शब्द समूह के लिए सामान्य और विशिष्ट रूपरेखाएं अवश्य प्रस्तुत की गई थीं। हाँ रुचि दृष्टि और विषयगत अध्ययन की दृष्टि से व्यक्तिगत लेखकों ने अपने अनुकूल ही इन रूपरेखाओं का उपयोग किया अतः सम्पादक के हाथों में विभिन्न टिप्पणियों के आकार विस्तार तथा प्रस्तुतीकरण की पद्धति और शैली में विविधता होना स्वाभाविक है। फिर भी एकरूपता के लिए संपादक सजग रहे हैं और टिप्पणियों में पर्याप्त संशोधन-परिवर्धन भी किए गए हैं। ऐसे विशिष्ट और उपयोगी आयोजना में यह स्वाभाविक भी है कि महत्त्वपूर्ण शब्दों का विषय प्रतिपादन और विषयौचित्य की दृष्टि से सम्यक् विस्तार किया जाए, ज्यादा महत्त्वपूर्ण विषयों के परिपूर्ण निरूपण के लिए पृष्ठों का संकोच बिलकुल न किया जाए बल्कि उनका सर्वांगपूर्ण विवेचन ही टिप्पणी लेखन का लक्ष्य रखा जाए। इससे एक लाभ यह भी होता है कि सम्बन्धित संदर्भ ग्रन्थ के पाठक या अनुसंधित्सु की ■ याश्रयता

समाप्त या कम हो जाती है और उसे समूची महत्वपूण सामग्री उपयुक्त रूप मे
एक ही स्थल पर सकलित और सवारे हुए रूप मे उपलब्ध हो जाती है। साथ ही
कम महत्त्वपूण विषयो का औचित्यपूण विवचन ही सम्पादक का लक्ष्य होता है,
जिससे ग्रथ की सतुलित मर्यादा और विस्तार का भी निर्वाह होता है। इस बारे
म प्रस्तुत कोश ग्रथ बहुत दृष्टियो मे सराहनीय है।

टिप्पणियो की लबाई विषय के महत्व पर आधारित रही है। इस प्रकरण
सम्बन्धी शब्दो की व्याख्या म लगभग चालीस स्तभ दिए गए हैं और नाटक के
लिए तीस स्तभ। इस प्रसग म स्थालीपुलाक न्याय से कुछ अन्य बडी बडी
टिप्पणियो का भी नामोल्लेख किया जा सकता है आलोचना और आलोचना
भेद २८ स्तभ उपन्यास (कुल मिलाकर) २६ स्तभ, कहानी २१ स्तभ ध्वनि
२० स्तभ महाकाव्य १४ स्तभ अष्टछाप ६ स्तभ। टिप्पणियो के इस विषय
सापेक्ष विस्तार म सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विषय के सम्यक निरूपण
के लिए स्थान सकोच आडे नही आया है और यथावसर महत्त्वपूण विषयो का
विवेचन सागोपाग और सविस्तार किया गया है। इस प्रकार के कोश ग्रथो मे यह
नितान्त आवश्यक भी है क्योकि ये कोश ग्रथ केवल पारिभाषिक शब्द का सक्षेप मे
अभिप्राय बताने वाले ही नही होते बल्कि उससे सम्बधित विचारधारा और
परिप्रेक्ष्य की भी यथातथ्य और प्रामाणिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

आत्मकथा सबधी टिप्पणी पढकर सपादकीय कौशल का एक और नमूना
सामने आता है। हिन्दी म आत्मकथा साहित्य के तथाकथित अभाव की दृष्टि
म इस टिप्पणी सम्बधी सामग्री को जुटाने सजाने म काफी दक्षता की अपेक्षा थी
जहा अग्रेजी म कई जीवनगाथाओ का कई जिल्दो का राष्ट्रीय कोश तक उपलब्ध
है वहा हिन्दी म उत्कृष्ट आत्मकथाओ की सख्या अब भी अगुलियो पर ही गिनी
जा सकती है। आत्मकथा की विधा पर दृक्पात करते हुए इस टिप्पणी म हिन्दी
की कुछ प्राचीन आत्मकथाओ का उल्लेख किया गया है और इस प्रकार हिन्दी मे
आत्मकथा साहित्य के सूत्रपात की झाकी दी गई है। अत म बडे कौशल के साथ
सहायक ग्रथो की सूची के रूप म हिन्दी की उत्कृष्ट आत्मकथाओ की एक प्रामा
णिक सूची दे दी गई है।

इसी प्रकार एकाकी सम्बन्धी टिप्पणी भी बडी ही रोचक और महत्त्वपूण
है। प्रारम्भ म एकाकी के विकास का जिक्र करते हुए पश्चिम के प्राचीन नाट्य
रूपो मिरेकल्स और मोरलिटीज का सकेत किया गया है और फिर उन्नीसवी
सदी के 'कर्टेन रेजर' का। इस टिप्पणी के लेखक ने यह माना है कि हिन्दी
साहित्य म भी आधुनिक एकाकी का रूप इसी पश्चिमी रूप के निकट है। इस

लिए उसने संस्कृत नाट्य-कला के सिद्धांतों के अनुसार इसके स्वरूप का प्रतिपादन नहीं किया है। एकांकी के रूप विधान की चर्चा करते हुए उसने त्रिकसंगति का भी उल्लेख किया है। यह चर्चा बड़ी ही व्यापक और विस्तृत है और एकांकी के अनेक पहलुओं पर रोचक सामग्री प्रस्तुत करती है। रंगमंच के तत्त्वों का भी समुचित प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत के नाट्य सिद्धांतों की चर्चा भले ही न की गई हो, किंतु संस्कृत के एकांकी नाटकों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का उपयुक्त विवरण दिया गया है और उसके बाद लेखक ने भारतेंदु युग के एकांकी नाटकों की परम्परा का विस्तृत विवेचन किया है। वर्तमान युग के लगभग सभी प्रमुख हिंदी एकांकी लेखकों की ओर उनके प्रमुख एकांकी नाटकों की चर्चा इस सिलसिले में की गई है। कुल मिलाकर यह विवेचन बड़ा ही रोचक और जानकारीपूर्ण है।

इसी प्रकार 'कहानी' सम्बंधी टिप्पणी भी बड़े ही मनोयोग से लिखी गई है। एकांकी नाटक की भांति ही जहां एक ओर प्राचीन पौराणिक कहानियां, पुराण, रामायण, महाभारत, अवदान, जातक, बृहत्कथा, पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों का उल्लेख किया गया है, वहां चासर की 'कैंटरबरी टेल्स' का भी उल्लेख है। आधुनिक कहानी के विकास का परिप्रेक्ष्य भी पश्चिम में अंकित करते हुए क्रमशः उसे हिंदी कहानी के विकास की ओर लाया गया है। वेद और पुराणों की कथाओं के बाद स्वभावतः संस्कृत की कथा और आख्यायिका की विधाओं का निरूपण है और द्वात्रिंशत्पुत्तलिका और शुकसप्तति आदि कथाओं का भी ब्यौरा दिया गया है। मध्यकालीन कथाओं और प्रेमाख्यानों की भी चर्चा की गई है किंतु लेखक के विचार से हिंदी के आधुनिक काल की कहानी कथा के विकास में एक नवीन दिशा है। हिंदी कहानी के प्रसंग में 'रानी केतकी की कहानी' से लेकर रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' तक की अनेक कहानियों का जिक्र है। लेखक ने बंग महिला की 'दुलाई वाली' कहानी को हिन्दी में प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी माना है। हिंदी की परवर्ती कहानियों को अनेक भाव वर्गों में बांट कर निरूपित किया गया है। लेखक के विचार में आधुनिक काल की कहानी वर्णन से चित्र, चित्र से विश्लेषण और विश्लेषण से सूक्ष्म विश्लेषण की ओर बढ़ रही है।

इन दो समृद्ध टिप्पणियों के बाद स्वभावतः जब हमारी दृष्टि 'आधुनिक काल' शब्द पर दी गई टिप्पणी की ओर गई तो कुछ निराशा हुई। हिंदी के समग्र साहित्य में आधुनिक काल का विशिष्ट महत्त्व है और उससे सम्बंधित टिप्पणी को तीन स्तंभों में चलते चलते निपटा देना कभी भी उपयुक्त नहीं कहा

सकता । फिर केवल आकार का ही प्रश्न नही है, आधुनिक काल की पीठिका, परिप्रेक्ष्य विकास और समृद्धि के एकाग का जिक्र भी इस टिप्पणी म नही हो पाया है । लेखक न यह चेष्टा अवश्य की है कि वह इस काल के स्थूल मील पत्थरो का निरूपित कर दे और भारतेन्दु आचाय द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पत रहस्यवाद छायावाद प्रगतिवाद प्रयोगवाद आदि के नाम चलते चलते आ गए हैं । साथ ही रानी केतकी की कहानी से लेकर प्रेमचन्द कृत गोदान तक नवीन नवीन रूप धारण करने वाली इस काल की कहानी की चर्चा भी एक वाक्य म कर दी गई है । किन्तु यह टिप्पणी न तो कोई उपयोगी जानकारी ही देती है और न सम्यक् वत विषय का ही सम्यक निर्वाह करती है ।

इसी प्रसग कामेडी और ट्रेजेडी इन दो शब्दो की टिप्पणियो का भी उल्लेख किया जा सकता है । दोनो ही के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का सम्यक नित्रहन किया गया है । कामेडी के भेदो और उपभेदो की भी सम्यक चचा की गई है किन्तु उसके विकास का निरूपण करन की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया । इस प्रसग मे शेक्सपियर की कामेडी के सम्बन्ध म कुछ चचा भी उपादेय रहती । ट्रेजेडी सम्बन्धी टिप्पणी इस बारे म ज्यादा उपयुक्त है । ट्रेजडी शब्द की विभिन्न आचार्यों द्वारा की गई व्याख्याओ के अलावा उसके प्रमुख भेद और उपभेदो को भी वर्णित किया गया है और साथ ही जहा एक ओर अरस्तू के कथार्सिस का चित्रण है वहा दूसरी ओर जोला ना और चेखव की ट्रेजेडी विषयक धारणाओ का भी निरूपण कर दिया गया है । शेक्सपियर के ट्रेजेडी विषयक दृष्टिकोण का विस्तृत निरूपण यद्यपि यहा भी नही हो पाया है तथापि अन्य दृष्टियो स यह टिप्पणी प्राय परिपूर्ण है ।

गान' शब्द की टिप्पणी को भी बडे सक्षेप म निपटा दिया गया है । यद्यपि अमरकोश के उद्धरण द्वारा गीत और गान को समान घोषित किया गया है, तथापि गान की इस टिप्पणी का गीत की टिप्पणी स परस्पर सम्बन्ध नही बताया गया । गान की सकल्पना की अधिकाश बातो को गीत शब्द की टिप्पणी के अधीन लिया गया है परन्तु केवल गान शब्द की टिप्पणी देखने वाले का सम्यक समाधान नही होता ।

टिटोवाद शब्द पर नीचे लिखी टिप्पणी दी गई है —

यूगोस्लाविया के मार्शल टिटो साम्यवादी होते हुए भी राष्ट्रीय क्षेत्रो म अन्तरराष्ट्रीय कामिनफाम स यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी की स्वतन्त्रता चाहते थे । यही सिद्धान्त टिटोवाद का मूल आधार है । ट्राटस्कीवाद की भाति सभी प्रगतिवादी इस भी निन्दा-वचन के रूप म प्रयुक्त करते हैं ।"

इस टिप्पणी पर टिप्पणी निरर्थक होगी।

इसी प्रकार की एक दूसरी टिप्पणी है 'ट्राटस्कीवाद' शब्द पर। इसका भी अविकल उद्धरण देने का मोह संवरण नहीं कर पा रहा हूँ 'ट्राटस्की सोवियत क्रांति की सफलता के उपरांत यह चाहता था कि सोवियत शक्तियां अन्य पूंजीवादी देशों पर आक्रमण करें। वह क्रांति को रोकना नहीं चाहता था। इसी क्रांति को चिरंतन क्रांति (permanent revolution) के रूप में उसने व्यक्त किया है। कुछ समय तक प्रगतिवादी आलोचक इस शब्द को निंदा-वचन के रूप में प्रयुक्त करते रहे हैं।"

अच्छा यह होता यदि इन दोनों टिप्पणियों का ही समावेश इस ग्रंथ में न किया जाता। समाजवाद और साम्यवाद का हिंदी साहित्य से सम्बन्ध है, किन्तु उनकी ऐसी व्यक्तिनिष्ठ सामान्य प्रशाखाओं पर अलग टिप्पणी देना 'हिंदी साहित्य कोश' के लिए ग्राह्य नहीं ठहराया जा सकता।

'ढोला मारू' सम्बन्धी टिप्पणी बड़ी ही संक्षिप्त, किन्तु बहुत उपयुक्त है। चार छोटे छोटे पराग्राफों में इस सम्बन्ध में उपलब्ध समूची सामग्री को बड़ी योग्यता के साथ लेखबद्ध कर दिया गया है। इस टिप्पणी का अनुसमर्थन 'ढोला' शब्द पर अलग दी गई टिप्पणी भी करती है और दोनों टिप्पणियों को मिलाकर पूरी बात स्पष्ट हो जाती है। किन्तु यहां पर भी यह प्रश्न उठता है कि क्या ढोला मारू से पृथक ढोला शब्द का कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी है? यह ठीक है कि ढोला एक अलग प्रकार का लोक-काव्य है, किन्तु वह भी तो ढोला मारू की कहानी पर ही आधारित है। इन दोनों टिप्पणियों को एक शब्द के अंतर्गत ही काफी उपयुक्त रूप से निपटाया जा सकता था।

हिंदी के मध्यकाल में संत कवियों तथा अन्य कवियों द्वारा सूक्तिकाव्य का भी निर्माण किया गया था। नीतिकाव्य शब्द के अंतर्गत कई प्रमुख सूक्ति-रचयिताओं को लिया गया है। इनमें कबीर, नरहरि, तुलसीदास, घाघ, रहीम, वृंद, गिरिधर आदि की सूक्तियों का विशेष परिचय दिया गया है।

'गर्बा' (गुजराती) और बाउल (बंगला) जैसे भारतीय लोक गीतों पर भी टिप्पणियां हैं। पर काश, भारत के सभी प्रमुख लोक गीतों का नामोल्लेख इसी रूप में कर दिया जाता, तो ज्यादा उपयोगी होता। 'भुजरिया' जैसे कम प्रचलित शब्दों की भी उपयुक्त साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में चर्चा की गई है।

सम्पादन कौशल के ही एक उदाहरण के रूप में अर्थ दोष शब्द-दोष और रस-दोष विषयक टिप्पणियां भी लिया जा सकता है। इन मूल शब्दों के ही

अतगत समग्र अथ-दोषो, शब्द-दोषो और रस दोषो को इकट्ठे निपटा दिया गया है और फिर प्रत्येक व्यक्तिगत दोष का नाम वणक्रम के अनुसार यथास्थल देकर उनके आगे इस विवेचन का निर्देश कर दिया गया है। पर इस बारे मे खटकने वाली बात यह है कि 'काव्य दोष' जसे मूल शब्द की चचा के अत म कही भी यह उल्लेख नही किया गया कि दोष भेदो का विस्तृत निरूपण इस कोश म अमुक शब्दो के अतगत देखा जा सकता है। सारी बात पाठक की कल्पना शक्ति पर छोड दी गई है, जो इस प्रकार के कोशो की रचना के सिद्धान्त विरुद्ध है।

ऊपर दशनशास्त्र के कुछ शब्दो की टिप्पणियो की चर्चा की गई थी। उसी प्रसग मे राजनीतिशास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्दो को भी लिया जा सकता है। राजनीतिशास्त्र के ऐसे प्रमुख शब्दो की एक अच्छी खासी सूची ही बनाई जा सकती है अराजकतावाद उदारवाद, जनतन्त्र, पूजीवाद, व्यक्तिवाद, समष्टिवाद, समाजवाद, समूहवाद, मातृनिष्ठ समाज, पितृप्रधान समाज आदि। यह ठीक है कि इनम स कई विचारधाराओ का साहित्य से सीधा सबध है, पर यह बात भी नही भुलाई जा सकती कि यह साहित्य कोश है समाजशास्त्र या राजनीतिशास्त्र का कोश नही।

इस साहित्य कोश के प्रधान सपादक के रूप मे एक भाषाशास्त्री को देखकर यह अनुमान लगाना अथहीन न था कि यह साहित्य कोश साहित्य शब्द का सकुचित अथ न लेगा और इसम भाषाशास्त्र की शब्दावली को भी सम्मिलित किया जाएगा। इस सदभ ग्रथ म भाषाशास्त्र की शब्दावली—भाषा, भाषण भाषा परिवार, वाक्य विचार, रूप विचार ध्वनि ध्वनि विचार, अथ विचार, व्युत्पत्ति शास्त्र, शब्द समूह, बोलिया आदि पर भी टिप्पणिया शामिल करना सवथा उचित होता। कम से कम 'लिपि' पर तो एक उपयुक्त टिप्पणी नितान्त अपेक्षित थी। इस शब्दावली को शामिल करने से इस कोश ग्रथ म एक सर्वांगपूणता आती और सदभ ग्रथ के रूप म सग्रहणीयता के नाते उसका महत्त्व और भी बढ जाता। पता नही क्यो, योजना से इस शब्दावली के बाहर होते हुए भी 'भारत यूरोपीय' शब्द पर एक टिप्पणी दी गई है। इसी विषय के अन्य सगत शब्दो पर टिप्पणिया के अभाव म इस मात्र एक शब्द का ग्रहण कसा ही भ्रामक और अपूण लगता है, जसी प्रथम खण्ड म 'भरथरी' शब्द पर टिप्पणी। क्या हम सुधी सपादक से यह आशा करें कि इस साहित्य कोश का एक तीसरा खड और सपादित किया जाएगा, जिसका सबध भाषाशास्त्र से होगा? डा० धीरेन्द्र वर्मा जसे साधन सपन्न व्यक्ति के लिए यह ज्यादा दुसाध्य भी नही है। इस प्रकार विषय निरूपण की दृष्टि से जब ये तीन खड निकल जाए तो फिर अगले सस्करण म इन तीनो

खंडों का विषयाश्रित विभाजन खत्म करके सभी का मात्र वर्णक्रम में समावेश किया जाना चाहिए और तदनुसार उपयुक्त खंडों में इसे बाँटा जाना चाहिए।

इस प्रसंग में कुछ छोटी मोटी बातों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। 'आदर्शवाद' शब्द दो बार दो अर्थों में (एक बार प्रत्यय-वाद के पर्याय के रूप में और एक बार अंग्रेजी आइडियलिज्म के पर्याय के रूप में) आया है पर उसके आगे संख्या नहीं दी गई है। दूसरी ओर गज़ल शब्द दो बार संख्या देकर आया है, पर उसका अर्थ दोनों जगह पर एक ही है। अंग्रेजी के कुछ अप्रचलित शब्द भी यथारूप दे दिए गए हैं—जैसे रिव्यू आर्टिकल पती ब्रूजुआ।

इस कोश में यह शिकायत तो सम्भव बनी रहेगी कि अमुक शब्द को बहुत संक्षेप में निपटा दिया गया है या अमुक शब्द की व्याख्या बहुत ज्यादा विस्तार के साथ की गई है। फिर भी 'अनुकरण' जैसे शब्द को जिस पर अरस्तू का प्रसिद्ध काव्य सिद्धान्त आधारित है आधे स्तंभ में निपटा देना बहुत खटकता है। मुद्रण के बारे में एक बात विशेष रूप से कही जा सकती है कि मूल शब्दों के लिए जो बारह प्वाइंट का काला टाइप चुना गया है उसी टाइप को उस शब्द के अंतर्गत आने वाले उपशीर्षकों के लिए भी प्रयुक्त करना उपयुक्त और औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए 'अपभ्रंश' शब्द के अधीन ध्वनि-विकास, व्याकरण और शब्द भंडार शीर्षक भी उसी टाइप में दिए गए हैं जिस टाइप में मूल अपभ्रंश शब्द। इस तरह के और भी असंख्य उदाहरण हैं। इसके लिए कोई औचित्य नहीं है और इसने काफी गड़बड़ी पैदा कर दी है।

(३)

नामवाची शब्दावली वाले दूसरे भाग में कुछ शब्दों की टिप्पणियाँ तो निश्चय ही बड़ी रोचक और उपयोगी हैं। अनेक में इन नामों को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में ही लिया गया है। उदाहरण के लिए 'अंगद' संबंधी टिप्पणी को लें। इसमें डेढ़ स्तम्भ में नीचे लिखे ग्रंथों का उल्लेख किया गया है वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक दूतांगद अंगद पैज, रामचरितमानस रामचंद्रिका और रावण महाकाव्य। इसी प्रकार 'दशरथ' संबंधी टिप्पणी के अंतर्गत इन ग्रंथों का उल्लेख है दशरथ जातक, वाल्मीकि रामायण दशरथ कथानक, जैन साहित्य, स्कन्दपुराण, रघुवंश, रामचरितमानस, साकेत और कौशल किशोर आदि।

इस ग्रंथ में प्रमुख लेखकों के प्रमुख ग्रंथों के प्रमुख पात्रों पर भी टिप्पणियाँ हैं। प्रसाद, प्रेमचन्द आदि के सभी प्रमुख पात्र इसके अंतर्गत आ गए हैं और

उन पर उनके चरित्र चित्रण की दृष्टि से बडी उपयोगी टिप्पणिया दी गई हैं।

कुछ टिप्पणिया को बडे ही सीमित शब्दो मे और सक्षिप्त रूप मे बडी कुशलता क साथ निपटाया गया है। उदाहरण के लिए 'पद्म' शब्द के छ अर्थो का निरूपण मात्र सात पक्तियो मे बडी दक्षता के साथ कर दिया गया है। 'गुरु ग्रथसाहिब' सबधी टिप्पणी भी बडे मनोयोग के साथ लिखी गई लगती है और बडी ही सुदर है।

'कालयवन' शब्द पर एक छोटी सी उपयुक्त टिप्पणी है जिसमे उससे सम्बद्ध पौराणिक कथा को सीमित शब्दो मे निपटा दिया गया है। सूरसागर' के जिन पदो मे इस कथा का उल्लेख है, उसकी ओर भी उपयुक्त सकेत द दिया गया है।

'कुणाल' पर एक बहुत ही छोटी टिप्पणी है, जो इस प्रकार है ' सम्राट अशोक का प्रथम पुत्र, जिसकी आँखें उसकी सौतेली मा तिष्यरक्षिता ने अपनी वासनापूर्ति न करने के कारण ईर्ष्यावश फुडवा डाली थी। इसका प्रामाणिक वृत्त अप्राप्य है। काल्पनिक कथा-सघटनो के आधार पर पण्डित सोहनलाल द्विवेदी ने हिन्दी मे कुणाल नामक खण्ड काव्य की रचना प्रस्तुत की है।' यह सक्षेप कुछ उपयोगी तो है परन्तु कहानी पूरी तरह स्पष्ट नही होती।

'कुकुरमुत्ता निराला की एक विवादास्पद कृति है और इस शब्द से सम्बन्धित टिप्पणी म उस भ्रम की ओर उपयुक्त सकेत किया गया है। निराला की व्यग्य प्रधान कविताओ के इस सग्रह की अन्य कविताओ का भी सक्षिप्त परिचय द दिया गया है।

जयशकर प्रसाद सम्बन्धी टिप्पणी इस खण्ड की एक बडी ही उपयोगी और महत्वपूर्ण टिप्पणी है और होनी भी चाहिए थी। आकार की दृष्टि से भी प्रसाद को जो चार स्तम्भ दिए गए ह व ठीक ही है और इससे कम मे उनके जसे बहुमुख और विविधतामयी प्रतिभा वाले लेखक का निरूपण हो भी नही सकता था। प्रसाद की आरम्भिक कविताओ से लेकर 'कामायनी तक उनक सभी काव्य ग्रथों का समुचित और सक्षिप्त परिचय दिया गया है हा, उनके नाटक उपन्यास और निबन्ध केवल एक छोटे से पराग्राफ में निपटा दिए गए हैं जिसम प्रत्येक का रच मात्र भी परिचय पाठक को नही मिल पाता और यह केवल एक छोटी सी सूची बनकर रह जाती है। यह बात अलग है कि इस सूची म से कुछ ज्यादा महत्व पूर्ण कृतियो का परिचय अलग स दिया गया है, किन्तु एक तो समग्र कृतियो की अलग टिप्पणिया नही ह और दूसरे यह कोई कारण नही है कि सामान्य टिप्पणी न भी उनके बारे म कुछ मोटी मोटी बातें न बताई जाए। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य शिल्प और व्यक्तित्व पर सक्षेप म दो बडे बडे पराग्राफो मे प्रकाश डाला

गया है। यह ठीक है कि प्रसाद के इस व्यक्तित्व की भाँकी को मात्र दो पैराग्राफो के सीमित स्थान मे नही दिया जा सकता, फिर भी इन दोनो पैराग्राफो म उनके व्यक्तित्व के प्राय सभी महत्त्वपूर्ण अगो पर प्रकाश डाला गया है।

'जवाहरलाल नेहरू' पर भी डेढ स्तम्भ की एक टिप्पणी है जिसका औचित्य लेखक के शब्दो मे इस प्रकार है। 'भले ही जवाहरलाल जी ने अधिक तर अग्रेजी में लिखा हो, वे हिन्दी के भी अच्छे लेखक है। उनके मूल हिन्दी निबन्ध 'सरस्वती' तथा 'विशाल भारत' म प्रकाशित हुए है। अपनी रचनाओ द्वारा इन्होने हिन्दी साहित्य को समृद्धि और नवचेतना दोनो दी हैं। उनकी अपनी विशिष्ट शैली है अपना वाक्य विन्यास और शब्द चयन है। भाषा और साहित्य के सदभ मे भी वे घोर जनतत्रवादी हैं और जनतन्त्र म अविचल आस्था के कारण ही जनभाषा म भी उनका अटूट विश्वास है।

'तुलसीदास' पर साढे पाच स्तम्भो की टिप्पणी है और अन्त म १० ११ गिने चुने सहायक ग्रन्थो की सूची भी दी हुई है। फिर वही प्रसग उठाया जा सकता है कि इतने कम स्थल म तुलसीदास के साथ न्याय नही किया जा सकता और अनेक दृष्टियो से लेखक को बहुत सक्षेप स काम चलाना पडा है फिर भी न केवल तुलसी से सम्बन्धित सभी पुस्तको की सूची और उनके जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित समस्याओ की करीब करीब पूरी पूरी भाकी आ गई है बल्कि तुलसी के कृतित्व के विशिष्ट मानदण्डो का भी सक्षिप्त निरूपण कर दिया गया है। प्रबन्ध और मुक्तक ब्रज और अवधी तथा तत्कालीन अनेक काव्य रूपो का प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी रचनाओ पर उपयुक्त परिप्रेक्ष्य म समुचित आलोचना की गई है और इस टिप्पणी को पढने वाला तुलसी स सम्बन्धित मोटी-मोटी बातो स सुपरिचित हो जाता है। किसी कोश-ग्रथ म किसी भी टिप्पणी का यही एकमात्र गुण माना जाना चाहिए।

तुलसीदास सम्बन्धी टिप्पणी की कहानी बहुत कुछ 'रामचरितमानस सम्बन्धी टिप्पणी से पूरी होती है जिसका विस्तार लगभग सात स्तम्भो म है। यह प्रसन्नता की बात है कि इस टिप्पणी के लेखक न रामचरितमानस की विशेषताओ का निरूपण वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण आदि के प्रसगो से उसकी तुलना करते हुए किया है साथ ही उसने तुलसी की मौलिकता और उनके शिल्प व अन्य गुणो पर भी उचित प्रकाश डाला है। रामचरितमानस की कथा का सक्षेप भी कुछ विस्तार के साथ ही दे दिया गया है। टिप्पणी का आरम्भ रामचरितमानस के रचना सवत् और रचना-शैली का उल्लेख करते हुए हुआ है और उसका अत रामचरितमानस की

लोकप्रियता का उल्लेख करके ।

'धनिया' सम्बन्धी टिप्पणी काफी संक्षिप्त है और 'गोदान' में होरी की इस व्यवहार कुशल और निर्भीक अर्द्धांगिनी के चरित्र का सम्यक निर्देश करती है। उसकी अदूरदर्शिता, प्रतिशोध भावना, पति के प्रति स्नेह और जाति समाज आदि के प्रति निर्भीक होने की भावनाओं का संक्षेप में उल्लेख कर दिया गया है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाम से हिंदी में अनेक नाटक और काव्य ग्रंथ उपलब्ध हैं, इनका निरूपण तीन अलग शब्दों के रूप में किया गया है। पहले शब्द के अन्तर्गत संस्कृत के इस नाटक के अनेक हिंदी अनुवादों का (जिनकी कुल संख्या छः बताई गई है) परिचय दिया गया है। बाद के दोनों शब्दों में अन्तर्गत क्रमशः नानक दास और ब्रजवासी दास के प्रबोधचन्द्रोदय का (दोनों ही छन्दोबद्ध हैं) अलग अलग परिचय दिया गया है। इस प्रकार तीन हिस्सों में इस टिप्पणी को बाँट देने की प्रणाली का औचित्य कुछ कम ही समझ में आता है। या तो समग्र अनुवादों को अलग अलग कृति मानते हुए उनका अलग अलग परिचय दिया जाना चाहिए था अन्यथा इन सभी को एकमात्र प्रबोधचन्द्रोदय शब्द के अन्तर्गत निपटा देना चाहिए था। जसवन्त सिंह के अनुवाद को उच्चकोटि का आध्यात्मिक अनुवाद बताया गया है और लोग उनके प्रबोधचन्द्रोदय से बहुत ज्यादा परिचित भी हैं किन्तु उनके प्रबोधचन्द्रोदय का परिचय अलग से नहीं दिया गया।

'महाभारत' शब्द पर एक तीन स्तम्भ की टिप्पणी दी गई है, किन्तु इस छोटे से आयाम में ही महाभारत के १३ प्रमुख हिंदी अनुवादों की अलग अलग चर्चा की गई है और इसके अलावा भी दो-तीन नए संस्करणों की चर्चा है। इस प्रकार हिंदी में महाभारत के महत्वपूर्ण अनुवादों की भारी इस टिप्पणी के अन्तर्गत देखने को मिल जाती है। खेद यही है कि संस्कृत महाभारत पर जो सामान्य बात कही गई है वह अत्यन्त संक्षिप्त है और भारतीय संस्कृति में इस महाग्रन्थ के महत्व पर जरा भी प्रकाश नहीं डाल पाती।

'सुरसपत्तिराय भंडारी' पर नीचे लिखी टिप्पणी दी गई है

जन्म १८६५ ई० में हुआ। कई पत्रों—'वेंकटेश्वर समाचार', 'सद्धर्म प्रचारक' 'पाटलिपुत्र' आदि का सम्पादन किया। सात भागों में प्रकाशित इनके अंग्रेजी हिंदी कोश की पर्याप्त सराहना हुई। विविध विषयों पर लिखी इनकी १८ पुस्तकें हैं।" इस टिप्पणी में भी थोड़ा-सा विस्तार अपेक्षित था।

इस खण्ड में सम्भवतः सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण टिप्पणी 'सूरदास' पर है। 'सूरदास' 'सूरसागर' और 'सारावलि' इन तीनों शब्दों पर कुल मिलाकर १७-१८ स्तम्भ दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि सूरदास के जीवन

वृत्त और उनकी कृतियों पर काफी व्यापक रूप में प्रकाश डाला जा सकता है। ऐसी स्थिति में तुलनाएं ज्यादा उपयोगी नहीं होतीं, फिर भी इतना तो सहज ही कहा जा सकता है कि जहां तुलसीदास के जीवन और जन्म और निधन तिथि आदि के बारे में लगभग एक स्तम्भ दिया गया है, वहां सूरदास के लिए लगभग छः स्तम्भ। इसी से सूरदास सम्बन्धी टिप्पणी का अपेक्षाकृत महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। सम्भवतः यही कारण है कि सूरदास के जीवन पक्ष की ओर जितना ध्यान दिया गया है, उतना उनके कृतित्व पक्ष की ओर न दिया जा सका और उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य की चर्चा को एक स्तम्भ में ही पूरा कर देना पड़ा। फिर भी सूरदास विषयक बहुत ही उपयोगी सामग्री इस साहित्य कोश में एकत्र की गई है।

इस भाग में हिन्दी की प्रमुख संस्थाओं को भी लिया गया है जिनमें से उल्लेखनीय हैं—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति नई दिल्ली, हिन्दुस्तानी अकादेमी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा आदि।

प्रमुख नामों की टिप्पणियों का आकार क्या है इसकी कुछ बानगी इस प्रकार मिल जाती है: सूरसागर ६ स्तंभ, रामचरितमानस ७ स्तंभ, सूरदास ८ स्तंभ, प्रेमचन्द ७½ स्तंभ, राधा ६ स्तंभ, रामचन्द्र शुक्ल ६ स्तंभ, तुलसीदास ५ स्तंभ, रामधारीसिंह दिनकर ४ स्तंभ, जयशंकर प्रसाद ४ स्तंभ, दयानन्द ३ स्तंभ। इस प्रसंग में भूमिका के एक अंश का उद्धरण बहुत कुछ प्रासंगिक है और सारी स्थिति को स्पष्ट कर देता है: सामान्यतः लेखकों तथा कृतियों पर प्रस्तुत की गई टिप्पणियों का एक सीमा तक सानुपातिक विस्तार उनके सापेक्ष महत्त्व तथा उपलब्धि का संकेत दे सकता था। कार्य शुरू करते समय यह बात ध्यान में थी। परन्तु इस सिद्धान्त का निर्वाह कई कारणों से नहीं किया जा सका। इनमें लेखकों पर प्राप्त सामग्री, उनकी रचनाओं की संख्या तथा सहयोगी लेखकों की शैलियों की विभिन्नता प्रमुख कारण माने जा सकते हैं। इस स्थिति में प्रस्तुत टिप्पणियों के आकार से लेखकों के महत्त्व या मूल्यांकन का कोई भी निश्चित सम्बन्ध नहीं है यह मानकर चलना चाहिए। इस उद्धरण को केवल इस परिप्रेक्ष्य में पढ़ना चाहिए कि इसमें अनाहूत आलोचना से बचने की संपादकीय कला भी झाँक रही है।

पहले भाग की ही भांति इस भाग के बारे में भी इस बात के कहे जाने की गुंजाइश है कि अमुक अमुक महत्त्वपूर्ण नामों को नहीं लिया गया है या अमुक टिप्पणियों को बहुत संक्षेप में निपटा दिया गया है। यह बात विशेषतः 'उपनिषद्'

जैसे शब्दों पर दी गई अत्यन्त संक्षिप्त और अधूरी टिप्पणियों के बारे में कही जा सकती है। वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, आरण्यक, ब्राह्मण, जातक आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों पर टिप्पणियों का सर्वथा अभाव भी बहुत खटकता है। और, इस बात की धार तब और पैनी हो जाती है जब यह बात इस परिप्रेक्ष्य में देखी जाती है कि कुछ नगण्य पुस्तकों पर भी विस्तृत टिप्पणियाँ दी गई हैं, जैसे जान कवि की 'कथा बिजरखाँ साहिजादे व देवल दे की' पर तीन स्तंभ लम्बी टिप्पणी दी गई है और 'चन्दरबदन औ माहियार' पर चार स्तंभ की।

गंगा यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी और सिन्धु नदियों पर टिप्पणियाँ दी गई हैं पर मन्दाकिनी, सरयू, सोन बेतवा, गोमती, काली, सतलुज, व्यास, रावी चिनाब, झेलम आदि ऐसी अनेक नदियों को नहीं लिया गया है, जिनका हिन्दी साहित्य में काफी उल्लेख है। भारत के अनेक पहाड़ों का हिन्दी साहित्य में उल्लेख है पर इस कोश में एक भी पर्वत नहीं लिया गया है। रंभा, तिलोत्तमा और उर्वशी पर टिप्पणियाँ हैं, पर मेनका पर नहीं। सुकरात का एक स्तंभ दिया गया है पर अरस्तू का नामोल्लेख नहीं है। पिरामिड पर एक छोटी सी टिप्पणी है पर अनेक कविताओं के प्रेरक ताजमहल को छोड़ दिया गया है। अंगद सम्बन्धी टिप्पणी में इस भ्रामक वाक्य को देखिए—"वाल्मीकि कृत अंगद चरित्र ही परवर्ती राम काव्यों के लिए आधार रहा है।' यहाँ 'कृत' का अर्थ है वाल्मीकि द्वारा निरूपित लेकिन स्पष्ट ही वाल्मीकि किसी अंगद चरित्र काव्य के प्रणेता नहीं हैं। इस कोश में क० मा० मुन्शी और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी पर टिप्पणियाँ देखकर अचम्भा होता है, जबकि रवीन्द्र, बंकिम शरद सुब्रह्मण्यम् भारती आदि पर कोई टिप्पणी नहीं है।

जिन विद्वानों पर टिप्पणियाँ दी गई हैं उनके बारे में भी प्रामाणिक सामग्री संकलित करने के लिए कभी-कभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शम्भुनाथ 'शेष' के बारे में यह वाक्य कि "कई वर्ष पूर्व अकस्मात् आपका देहान्त हो गया' या बचनेश मिश्र के बारे में यह वाक्य कि 'कई वर्ष पूर्व आपका देहान्त हो गया" इसके उदाहरण में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। शेष' के बारे में सामग्री साप्ताहिक हिन्दुस्तान की पुरानी फाइलों से या दिल्ली के पुराने साहित्य-सेवियों से प्राप्त की जा सकती थी और निधन तिथि तो आकाशवाणी से ही प्राप्त हो जाती। इसी प्रकार बचनेश के बारे में काफी सामग्री फर्रुखाबाद की किसी हिन्दी संस्था से प्राप्त की जा सकती थी।

(४)

ऊपर 'हिन्दी साहित्य कोश' के दोनो खडो के बारे मे जो पृथक पृथक विस्तृत चर्चा की गई है उसके अलावा भी बहुत सी ऐसी बातें हैं जो दोनो खडो के बारे में सामान्य रूप से कही जा सकती है। यह ठीक है कि अनेक स्थलो पर सहायक ग्रथो का यथावत उल्लेख कर दिया गया है। 'आत्मकथा' के नीचे अवदात्त ग्रथ सूची का पीछे उल्लेख किया गया था। पर सच पूछा जाए तो ग्रथ-सूची का उल्लेख करने में बहुत कृपणता दिखाई गई है। 'कृष्ण' पर आठ स्तभो की विस्तृत टिप्पणी दी गई है, पर सदर्भ ग्रथों का उल्लेख बहुत ही अधूरा है। यह बात अनेक ऐसे शब्दो के बारे में भी कही जा सकती है जिनके नीचे सहायक ग्रथ सूची दी तो गई है पर अधूरी दी गई है। इसके अलावा असख्य ऐसे शब्द हैं, जिनके नीचे ग्रथ सूची दी जानी चाहिए थी पर दी नहीं गई है। यही बात अन्त सदर्भ या परस्पर-सदर्भ के बारे मे भी कही जाएगी। पीछे 'काव्य दोष' शब्द के अन्तर्गत शब्द-दोष, अर्थ दोष और रस दोष शब्दो का उल्लेख न करने का जिक्र किया गया था। यही बात लेखको और उनकी कृतियों और उनके पात्रो सम्बन्धी टिप्पणियों के बीच परस्पर सदर्भ के सर्वथा अभाव के बारे मे भी कही जा सकती है। मान लीजिए मैंने प्रेमचन्द की टिप्पणी पढ़ी। उस टिप्पणी के अत में ही मुझे पता लग जाना चाहिए कि गोदान, सेवासदन निर्मला रगभूमि, कायाकल्प आदि पर अलग से टिप्पणियाँ दी गई हैं जो मुझे यथास्थान देख लेनी चाहिए। इसी प्रकार गोदान सम्बन्धी टिप्पणी के नीचे ही उसके प्रमुख पात्र होरी, धनिया आदि की टिप्पणियों को यथा स्थान देख लेने का सकेत मुझे मिलना चाहिए। इसी प्रकार प्रेमचन्द या जयशकर प्रसाद शब्द के अत में इन दोनो के बारे में अब तक लिखे गए सभी प्रमुख ग्रथो की सूची भी दी जानी चाहिए। हमे विश्वास है कि कोश के नए सस्करण में इन सभी बातो की ओर समुचित ध्यान दिया जाएगा।

किन्तु इन छोटी मोटी त्रुटियो का जो उल्लेख ऊपर किया गया है उसे केवल नए सस्करण में सभावित सुधारो के लिए दिए जाने वाले सुझावो के रूप में ही देखा जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि इन छोटे मोटे अभावो से इस महान् कृति का महत्त्व घट जाता है। हम आरभ में ही यह स्वीकार कर चुके हैं कि 'हिन्दी साहित्य कोश' का प्रणयन हिन्दी साहित्य जगत् की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। इतने भारी काम मे, कम से कम पहले सस्करण मे कुछ छोटी मोटी भूलो का आ जाना बहुत बड़ी बात नहीं है। महत्त्व तो इस

बात का है कि इतने विशाल पमाने पर इतनी महान् योजना बनाई गई और उसे बडी कुशलता के साथ कार्यान्वित किया गया। यह हमारा दृढ विश्वास है कि 'हिन्दी साहित्य कोश' का स्थान हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अध्ययन मे बडा साधक रहेगा और उससे हिन्दी साहित्य के एक बडे भारी अभाव की बहुत भारी मात्रा म पूर्ति हुई है। इस प्रकार के सदभ ग्रथो से ही किसी भी साहित्य को समृद्ध कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने मे 'हिन्दी साहित्य कोश' का निश्चय ही एक बडा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ० भोलानाथ तिवारी

१९
हिन्दी विश्वकोश : एक महत्प्रयास का आरम्भ

ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में संदर्भ ग्रंथों का कितना महत्त्व है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमारा भारतीय वाङ्मय अन्य अनेकानेक क्षेत्रों की भांति संदर्भ ग्रंथों के क्षेत्र में भी पर्याप्त अग्रणी रहा है। अत्यंत प्राचीन काल से ही यहां निघंटुओं, कोशों एवं अनुक्रमणियों आदि की परंपरा मिलती है। किंतु आधुनिक पद्धति पर बनाए जाने वाले संदर्भ ग्रंथों की परंपरा सच्चे अर्थों में यहां यूरोपीय संपर्क के बाद ही प्रारंभ हुई। विश्वकोश के क्षेत्र में बंगाली भाषा अग्रणी हुई। श्री नगेंद्रनाथ वसु ने बंगला विश्वकोश का संपादन किया जिसका प्रकाशन १९११ में पूर्ण हुआ। श्री वसु ने ही अनेक हिंदी विद्वानों के सहयोग से बंगला विश्वकोश के आधार पर २५ भागों में 'हिंदी विश्वकोश' प्रकाशित (१९१६ से १९२५ तक) किया। आगे चलकर मराठी, गुजराती आदि में भी कुछ ऐसे प्रयास हुए। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—जो एक प्रकार से विश्वकोश ही है—के प्रथम दो भाग भी हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हुए।

स्वतंत्रता के उपरांत सभी भारतीय भाषाओं में विश्वकोश की योजनाएँ बनीं। प्रस्तुत विश्वकोश भी उसी शृंखला में है। इसे केंद्रीय सरकार की सहायता से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने प्रकाशित किया है।

इस तरह, प्रस्तुत हिंदी विश्वकोश हिंदी का तीसरा विश्वकोश है, यद्यपि इसे प्रथम भी कह सकते हैं, क्योंकि स्वतंत्र रूप से हिन्दी का यह पहला विश्वकोश है। प्रथम दो, जैसा कि संकेत किया जा चुका है, मूलतः बंगला, मराठी पर न्यूनाधिक रूप से आधारित थे।

१९६५ तक हिंदी विश्वकोश के पांच खंड प्रकाशित हुए हैं। पहला १९६०

में दूसरा १९६२ में, तीसरा १९६३ में चौथा १९६४ में तथा पाँचवाँ १९६५ में। यों तो जब तक इसके सभी खंड प्रकाश में नहीं आ जाते तब तक इसका समुचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता किन्तु जो खंड आ चुके हैं और उनके आधार पर जो प्रवृत्तियाँ सामान्यतः दिखाई पड़ रही हैं, उन्हें लेकर मोटे रूप से कुछ बातें अवश्य कही जा सकती हैं। किन्तु उन बातों का लेन के पूर्व यह मन्तव्य है कि हिन्दी में विश्वकोश अभी अपनी शैशवावस्था में है। विश्व के प्रसिद्ध विश्वकोश 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के प्रथम संस्करण (जो १८वीं सदी में प्रकाशित हुआ था) को जो लोग देख चुके हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि विस्तार प्रामाणिकता शुद्धता तथा कोशोचित शैली आदि की दृष्टि से उसके प्रथम या प्रारंभिक संस्करणों एवं वर्तमान संस्करणों में आकाश पाताल का अंतर है। वस्तुतः विश्वकोश एक सुदीर्घ परम्परा के पश्चात ही अपेक्षित स्वरूप ले पाता है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत हिन्दी विश्वकोश से हम बहुत अधिक आशा नहीं कर सकते और इसमें यदि अनेक कमियाँ मिलती हैं तो उसके लिए हम केवल सम्पादक मंडल या टिप्पणी लेखकों को ही उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते। उसका बहुत कुछ दोष हमारे यहाँ अपेक्षित परम्परा एवं वातावरण की कमी आदि पर भी है।

सभी प्रकार के कोशों में सबसे पहले हमारा ध्यान प्रविष्टि (entry) पर जाता है। वस्तुतः प्रविष्टि वह मूल है जिसके सहारे पाठक कोश या विश्वकोश का उपयोग करता है। इसलिए इसके चयन में बहुत सतर्कता अपेक्षित है। कोश के विस्तार को दृष्टि में रखते हुए यह चयन होना चाहिए ताकि कोई कम आवश्यक प्रविष्टि व्यर्थ में स्थान न पा जाय या आवश्यक प्रविष्टि छूट न जाय। इस दृष्टि से प्रस्तुत कोश में कदाचित अपेक्षित सतर्कता नहीं बरती जा सकी है। उदाहरण के लिए 'उपकला' एवं उपचर्या आवश्यक हैं किन्तु 'उपग्रह' से अधिक आवश्यक नहीं कहे जा सकते। प्रस्तुत विश्वकोश में 'उपकला तथा उपचर्या' तो है, किन्तु 'उपग्रह' नहीं है। इसी प्रकार 'उष्णप्रदेशीय आयुर्विज्ञान' है, किन्तु 'उष्णकटिबंध' नहीं है। विश्वकोश के पाँचों खंडों में कुल प्रविष्टियाँ चार हज़ार से ऊपर हैं, जिनमें इस प्रकार की अव्यवस्थाएं शताधिक हैं।

'ताजमहल' विश्व की किसी भी भाषा के विश्वकोश के लिए अनिवार्यतः आवश्यक प्रविष्टि मानी जा सकती है भारतीय भाषाओं के विश्वकोश—और उनमें भी हिन्दी के विश्वकोश—के लिए तो कहना ही क्या ? आश्चर्य है कि प्रस्तुत विश्वकोश में 'ताजमहल' नहीं है। इसी प्रकार आधुनिक चित्रकला उपमा (उपमान दिया गया है), ओस, कत्थक, कथाकली कुटीर उद्योग, किशोरावस्था (adolescence) मुहासा या कोहरा केशिका (capillary),

कमरा, कलोरी, गुरुद्वारा, घाटी (Valley) चलचित्र (movies), छत्रक या कुकुर-(Mushroom), छापामार युद्ध, छुईमुई (Mimosa pudica) जीवन बीमा (Life insurance), तितली, जेब्रा टेलिवाजन, ट्रांजिस्टर, त्रिवेणी आदि अनेक अनिवार्य प्रविष्टियाँ भी इसम नही हैं। इनका छूट जाना विश्वकोश की उपादेयता के लिए निश्चित रूप से बहुत घातक है।

प्रविष्टियाँ वर्णानुक्रम से होनी चाहिए। इसकी भूलें भी प्रस्तुत विश्वकोश म मिल जाती हे। कुछ उदाहरण पर्याप्त होग। खड तीन म खल्द', खाद और उवरक, 'खादी' आदि शब्द क्रमानुकूल नही हैं। इन भूलो के कारण कई शब्द जो इस कोश मे है पाठक को नही मिल पात। कहना न होगा कि इस प्रकार गलत क्रम म दी गई प्रविष्टियो का होना-न-होना बराबर है क्योकि उन्ह पाना बहुत कठिन है।

प्रविष्टियां ऐसी होनी चाहिएँ कि एक ही सामग्री की पुनरुक्ति न हो। यदि सबद्ध प्रविष्टियो का अलग अलग देना अपरिहाय हो तो स्थान बचाने की दृष्टि से सामग्री एक स्थान (जहाँ वह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त हो) पर दी जानी चाहिए और दूसरे स्थान पर उसके अन्यत्र होने का सकेत कर दिया जाना चाहिए। कोश मे इस बात का भी समुचित ध्यान नही रखा गया है। उदाहरण क लिए कीट और कीट विज्ञान दोनो ही प्रविष्टियो म लगभग एक ही सामग्री *काफी विस्तार से दी गई है। इसी प्रकार ढोर के अतगत गाय तथा विभिन्न* गो जातियो के विवरण तथा गाय के अतगत विभिन्न गो जातियों के विवरण म काफी निवाय पुनरुक्ति है तथा कहा कहीं तो परस्पर विरोध भी है।

विश्वकोश मे प्रविष्टियों का निर्देश (Cross reference) भी बहुत आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि किसी जीव या वस्तु आदि के लिए एक से अधिक शब्द प्रचलित हैं तो दोनो को यथास्थान देकर अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित शब्द के साथ अपेक्षित सामग्री देकर दूसरे शब्द के साथ केवल सदभ दे देना पर्याप्त होता है। *ऐसा न करने पर कभी-कभी अपेक्षित सामग्री के न मिलने की आशका* रहती है। प्रस्तुत कोश म इस प्रकार की गडबडियाँ बहुत अधिक हैं। उदाहरण के लिए इसम कपोत तो है किन्तु कबूतर नहीं है। वस्तुत 'कबूतर का होना अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक था। टिप्पणी उसी के साथ होनी चाहिए थी। कपोत यदि आवश्यक ही था तो उसके साथ दे 'कबूतर पर्याप्त होता। किन्तु यहाँ तो कबूतर' है ही नहा। यह असभव नही कि देखने वाला कबूतर' न पाकर यह समझ ले कि प्रस्तुत कोश म यह नही दिया गया है। उसका ध्यान 'कपोत' की

ओर जाए ही, यह आवश्यक नही है।

प्रविष्टियों म एकरूपता का भी प्रस्तुत कोश म विशेष ध्यान नही रखा गया है। उदाहरण के लिए एक ओर तो 'अवधी भाषा और साहित्य', 'असमिया भाषा और साहित्य' 'चेक भाषा और साहित्य', या 'चीनी भाषा और साहित्य' जसे सयुक्त शीषक हैं, तो दूसरी ओर बिना किसी विशेष कारण के 'जापानी भाषा' और 'जापानी साहित्य' दो अलग अलग शीषक है। एकरूपता की दृष्टि से इन्हे एक साथ रखना अधिक उचित था।

प्रविष्टियों की वतनी की ओर भी अनेक स्थलो पर उचित ध्यान नही दिया गया है। उदाहरण के लिए हिन्दी मे 'कुरान' शब्द चलता है न कि 'कुरआन'। यह ठीक है कि मूल शब्द 'कुरआन' ही है किन्तु इसका कोष्ठक मे उल्लेख पर्याप्त होता। इसी प्रकार हिन्दी मे 'कोहनूर' चलता है, न कि 'कोहेनूर', या 'कधार' चलता है न कि 'कन्दहार'। इस प्रकार की अव्यवस्थाएँ और भी है। 'काजी' और 'कागज' म पहले मे शुद्ध उच्चारण देने का प्रयास है तो दूसरे म सामान्य। सवत्र एक प्रकार की वतनी अपेक्षित थी।

हिन्दी वतनी म एकरूपता (बहन बहिन, पहचान-पहिचान, अमेरीका अमेरिका दिल्ली दहली आदि) का अभाव है। हिन्दी विश्वकोश म भी यह अनेकरूपता है यद्यपि सपादन के समय इसे कम किया जा सकता था। यदि केवल एक उदाहरण द्वारा इस अनेकरूपता को अपने विराटतम रूप मे दिखाना चाहे तो 'ह्वेनसांग' शब्द को ले सकते हैं। प्रस्तुत विश्वकोश के दूसरे खड के पृष्ठ सख्या ४१६ से ५०७ तक अर्थात केवल ८८ पृष्ठो म, मुझे इसकी पाँच वतनियाँ मिली हैं

(१) हुयेनसाग (खड २ पृ० ४४५)
(२) युवान्च्वाड (खड २, पृ० ४१६)
(३) युवानच्वाग (खड २, पृ० ४२५)
(४) युवान्च्याग (खड २ पृ० ५०७)
(५) हुएनत्साग (खड २ पृ० ६५०)

यो इसक अद्यावधि प्रकाशित खडो म कम स कम ४ ५ और भी वतनियाँ मर देखन म आई ह

(६) युवानच्याउ (खड २, पृ० ३३८)
(७) ह्वेनसाग (खड १, पृ० ००८)

(८) ह्वेन-त्साग (खंड १, पृ० ४७८)
(९) ह्वेनसाग (खंड ३, पृ० ४९८)

असभव नहीं कि इस शब्द की उपर्युक्त नौ के अतिरिक्त कुछ और भी वर्तनियाँ इस विश्वकोश म हो। पाठक कदाचित इस बात की उत्सुकता स प्रतीक्षा करेंगे कि प्रविष्टि के शीर्षक के रूप म इसकी वर्तनी प्रस्तुत विश्वकोश मे किस तरह की रखी जाती है।

चालुक्य (खंड ३ पृष्ठ ६६) चौलुक्य (खंड ३ पृ० ७०) जैसे कई अन्य नामों म भी वर्तनी की एसी अनेकरूपताएँ हैं।

यो तो छापे की भूलें किसी भी पुस्तक म सवथा निवाय नहीं ह किन्तु विश्वकोश म इस दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सतकता अपेक्षित ह। प्रस्तुत कोश म इस प्रकार की कुछ भूलें बहुत खटकती हैं। उदाहरणाथ विवरण का 'विवरण (उपनिषद् म) मरकारा' का मेरकारा' (कुर्ग मे) पिरल का पिरोल (दही म) आदि। खंड ४ म पृ० ४० पर गोवधनराम माधवराम त्रिपाठी की जन्म तिथि १८५५ दी गई है जब कि उनके बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने की तिथि १८०५। स्पष्ट ही, प्रूफ की गलती के कारण ही जन्म के ५० वर्ष पूर्व बी० ए० कर लेने की यह उलटबांसी बन गई है।

जहा तक विषयानुसार प्रविष्टियो का सबध है मुझे एसा लगा कि भौगोलिक नामो को सर्वाधिक लिया गया है। यो विश्वकोश म भौगोलिक नामो का होना बुरा नहा, किन्तु अफ्रीका अमेरीका के बिल्कुल छोटे छोटे नगरो पर लेखो ने इस विश्वकोश म कुछ असतुलन-सा पदा कर दिया है, इसमे सदेह नही। हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलत यह विश्वकोश है भूगोल का गजेटियर नहीं।

इस प्रकार भूगोल पर ध्यान तो अधिक दिया गया है, किन्तु भौगोलिक नामो पर जो टिप्पणियाँ दी गई हैं उनम अनेकानेक स्थलो पर सक्षिप्ति, प्रामाणिकता व्यवस्था तथा एकरूपता आदि का अभाव मिलता है। मेरा भौगोलिक ज्ञान बहुत अप्रौढ है किन्तु मुझे भी अनेक टिप्पणियो म गलतियाँ मिली। इस प्रकार की कुछ अव्यवस्थाओ एव अशुद्धियो आदि की ओर यहाँ सकेत करना अनुचित न होगा। नगरो के वणन म कहीं तो १९०१ की जनसख्या दी गई है कहीं १९५१ की तो कहीं १९६१ की। नगरो की परस्पर दूरी का निर्देश कहीं मील द्वारा किया गया है तो कहीं किलोमीटर द्वारा। कुछ राज्यो के चित्र दिए गए हैं किन्तु कुछ के नहीं। राज्य ही क्यो देशो म भी यह अव्यवस्था है।

उदाहरणाथ दक्षिणी अमेरीका के विवरण के साथ उसका चित्र दिया गया है, कि तु उत्तरी अमेरीका के साथ कोई चित्र नही है। 'अन तपुर नगर को मद्रास म बतलाया गया है, कि तु है यह कदाचित आध्रप्रदेश मे। 'गुटूर' को भी मद्रास (खड २ पृ० २४६) म बतलाया गया है, कि तु वह भी आ ध्र म है। 'गजाम' मे बुरहानपुर की स्थिति कही गई है कि तु यह खडवा म है। वहाँ सभवत बरहाम पुर है। इसी प्रकार जिद गुडगाँव, कुग, कुल पवत आदि मे भी ब्यौरे आदि की गलतियाँ है।

विवरणात्मक एव तथ्य विपयक अशुद्धियाँ या कमियाँ और भी अनेक प्रकार की है। वस्तुत आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न विपयों के विशेपज्ञो या उनसे सबद्ध व्यक्तियो के पास सबद्ध विपया की टिप्पणियाँ भेजकर सशोधित करा ली जाय। यहाँ मैं कुछ विभिन्न प्रकार की भूलों की ओर सकेत कर रहा हूँ। यदि पाठक क्षमा करें तो मैं अपन मे ही प्रारम्भ करूँ। खड ३ म (पृ० १२ पर) मेरा पता तेहरान विश्वविद्यालय, तेहरान (ईरान) दिया गया है, जब कि मैंने तेहरान विश्वविद्यालय आज तक कभी देखा भी नहीं। मैं था ताशकद विश्व विद्यालय, ताशकद (सोवियत सघ) मे। 'कालिदास' मे आया है गद्य के लिए वह शौरसेनी का उपयोग करता है और पद्य के लिए महाराष्ट्री का।' यह वक्तव्य भ्रामक है क्याकि स्त्री एव निम्न श्रेणी के पात्रा मे ही यह बात मिलती हैं। जो पात्र सस्कृत बोलत हैं, उन पर यह नही लागू होती। 'गुणाढ्य म वृहत्कथाश्लोकसग्रह को क्षेमे द्र कृत कहा गया है कि तु यह रचना ध्रुव स्वामी की है। क्षेमेन्द्र की रचना का नाम वृहत्कथामजरी है। चक्रवाक' मे कोकनद को उसका पर्याय कहा गया है। वस्तुत चक्रवाक का पर्याय 'कोक' है। कोकनद या अथ तो लाल कमल होता है। 'काव्य म दडी के 'काव्यादश' से काव्य तावदिष्टायव्यवच्छिन्ना पदावली' उद्धृत किया गया है। ठीक श्लोकाश कदाचित् है—शरीर तावदिष्टाय यवच्छिन्ना पदावली। कोसल म दक्षिण कोसल का कोई उल्लेख नहा ह। गुग म सिक्को के दस गुग्मा की चर्चा अनावश्यक न हाती। कुक्कुट युद्ध म ईरान, चीन आदि म इसके अस्तित्व की चर्चा है, कि तु प्राचीन भारत की कोई चर्चा नही है, जबकि इसके प्रचलन के पर्याप्त प्रमाण मिलत हैं। गणेश म उनकी पूजा परम्परा आदि म अनाय तत्त्व की ओर सकेत नही है। गुण म व्याकरण म प्रयुक्त गुण-वृद्धि नही है। आदि आदि।

किसी भी ग्रथ म एक दूसर क विराधी तथ्य पाठक का उलझान वाले हात है। विश्वकोश जसे प्रामाणिक माप्त ग्रथ म तो यह बात और भी अनपेक्षित है।

किंतु प्रस्तुत कोश में अनेक स्थलों पर विरोधी तथ्य दिए गए हैं। उदाहरण के लिए खंड २, पृष्ठ २९६ पर कंचनजंगा को '२८१४६ फुट ऊँचा, गौरीशंकर के बाद संसार का दूसरा सर्वोच्च पर्वत शिखर' कहा गया है। किंतु खंड ४ पृ० ४६ पर गौरीशंकर की ऊँचाई २[illegible]४० फुट कही गई है। यदि गौरीशंकर की ऊँचाई २३४४० फुट है, तो २८१४६ फुट ऊँचे कंचनजंगा से वह अधिक ऊँचा कैसे है? इसी प्रकार कन्नौज तथा कान्यकुब्ज में, एवं ढोर तथा गाय के अंतर्गत गो जातियों के वर्णन आदि में भी परस्पर विरोधी बातें हैं। गुंटूर को एक स्थान पर मद्रास में कहा गया है (खंड २ पृ० २४९) किंतु दूसरे स्थान पर आंध्र में (खंड ३, पृ० ४४५)।

सभी प्रकार की रचनाओं में संतुलन का ध्यान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत विश्वकोश इस कसौटी पर भी खरा नहीं उतरता। कई विवरणों में उचित संतुलन का अभाव खटकता है। उदाहरण के लिए 'उपन्यास' पर एक कॉलम की सामग्री है तो 'कहानी' पर साढ़े तीन कालम की। इसी प्रकार 'अटलांटिक महासागर' का विवरण लगभग ५० पंक्तियों में है, तो 'इंगलिश चैनल' का ४५ पंक्तियों में।

इस कोश में विषय प्रतिपादन में एकरूपता का उचित ध्यान भी नहीं रखा गया है। उदाहरण के लिए रसायनशास्त्र की कुछ प्रविष्टियाँ देखी जा सकती हैं। एक ओर जर्मेनियम का प्रतिपादन पर्याप्त उच्च कोटि का है। उसमें संकेत (symbol) परमाणु क्रमांक (atomic number) तथा परमाणु भार (atomic weight) आदि सभी का उल्लेख है किन्तु 'ऑक्सीजन', 'क्लोरीन', 'आयोडीन' के प्रतिपादन बड़े अधूरे हैं। उनमें संकेत परमाणु क्रमांक परमाणु भार आदि अत्यंत आवश्यक बातें छोड़ दी गई हैं जिनके अभाव में ये टिप्पणियाँ बड़ी सतही हो गई हैं। इस प्रकार की कमियाँ अन्य कई विषयों में भी हैं।

पीछे संकेत किया जा चुका है कि प्रस्तुत कोश में 'ज़ेब्रा' नहीं है। देखते देखते 'चित्रगर्दभ' प्रविष्टि मिली। ज़ेब्रा के लिए 'चित्रगर्दभ' शब्द का प्रयोग, और वह भी प्रविष्टि के शीर्षक के रूप में, किया गया है। प्रश्न यह उठता है कि यदि कोई ज़ेब्रा देखना चाहे तो वह कैसे जान सकता है कि कौन सा शब्द उसे देखना चाहिए। 'चित्रगर्दभ' ज़ेब्रा के लिए हिन्दी में प्रचलित तो क्या, अल्प प्रचलित शब्द भी नहीं है। शब्द निर्माण एवं उसके प्रयोग की इतनी अधिक छूट कम-से-कम कोशकार को मेरे विचार में नहीं लेनी चाहिए। खैर मैं इस झगड़े में न पड़कर कि 'चित्रगर्दभ' ज़ेब्रा का उपयुक्त प्रतिशब्द है या नहीं केवल यह कहना

लेखक दोनों ही हिन्दी संसार की ओर से बधाई के पात्र हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि आगामी संस्करणों में इसमें अपेक्षित सुधार हो जायेंगे और अंतत यह विश्वकोश भी उस ऊँचाई को प्राप्त कर सकेगा जो विश्वकोशों के लिए काम्य होती है। यह जानकर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ब्रिटेनिका, अमेरिकाना, चैम्बर्स तथा सोवियत आदि सुप्रसिद्ध विश्वकोश भी अभी तक पूर्णत त्रुटिरहित नहीं हैं यद्यपि उनके पीछे सुदीर्घ परंपरा है। ऐसी स्थिति में हिन्दी विश्वकोश की कमियों के निवारण के लिए यत्नशील तो हमें होना है किन्तु उनसे निराश होने का कोई कारण नहीं।

चाहिए कि 'विप्रलम्भ' के साथ ही यदि सामग्री दी थी, तो भी 'देखें' यथास्थान अवश्य देना चाहिए था और वहाँ दे० विप्रलम्भ संकेत होना चाहिए था। वस्तुत इस प्रकार का यह अकेला उदाहरण नहीं है। ऐसे अनेक शब्द प्रस्तुत विश्वकोश में दिए तो गए हैं किन्तु उनके लिए प्रयुक्त प्रतिशब्द हिन्दी के प्रचलित शब्द नहीं हैं अत उन्हें संयोगवशात् तो पाया जा सकता है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन्हें खोज पाना सर्वथा असंभव है। 'गर्दभ' और 'गदहा' दोनों ही कोश में नहीं हैं। संभव है किसी अन्य शब्द के अन्तर्गत इस पर सामग्री हो, किन्तु वह किस काम की ? इसी प्रकार 'उल्लू' या 'उलूक' भी नहीं है।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का अभाव है। जो थोड़े बहुत बने भी हैं उनके बारे में मतैक्य नहीं है। एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए कोई व्यक्ति या कोई संस्था एक हिन्दी शब्द के पक्ष में है तो दूसरी संस्था या दूसरा व्यक्ति दूसरे के। यही नहीं जिनके बारे में मतैक्य है उनका भी समुचित प्रचार नहीं हुआ है। इसीलिए यह बहुत आवश्यक है कि हिन्दी विश्वकोश जैसे संदर्भ ग्रन्थों में इस प्रकार के सभी पारिभाषिक शब्दों के साथ कोष्ठक में अंग्रेजी पर्याय भी दिए जायें। प्रस्तुत विश्वकोश में इस बात का कुछ ध्यान रखा तो गया है किन्तु काफी स्थानों (जैसे उपचर्या आदि) पर अंग्रेजी पर्याय नहीं भी है और इस अभाव के कारण अनेक स्थलों पर पाठक के समक्ष कठिनाई आना स्वाभाविक है। अनेक प्रविष्टियों के साथ अंग्रेजी शब्द दिया भी गया है तो एकरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए 'उद्यान' के साथ कोष्ठक में लिखा है अंग्रेजी में हॉर्टिकल्चर तो 'उद्यान विज्ञान' के या 'ऊर्जाजिन' के साथ कोष्ठक में केवल हॉर्टिकल्चर नागरी में है, और 'कंठार्ति' के साथ कोष्ठक में रोमन में laryngitis है। इन तीन के अतिरिक्त कहीं-कहीं एक चौथी पद्धति भी है। उदाहरण के लिए 'कंटमुंडी' के साथ कोष्ठक में नागराक्षर में 'अकांथोसेफाला' तथा रोमन में Acanthocephala है। इसी प्रकार 'कपोतक' के साथ डव Dove दोनों हैं। इन चारों के स्थान पर एक पद्धति ही अपेक्षित थी। कदाचित् केवल रोमन में देना पर्याप्त होता।

छपाई आदि के विषय में भी दो शब्द कहे जा सकते हैं। छपाई में भी एकरूपता नहीं है। चौथे खंड के शीर्षक अपेक्षाकृत छोटे टाइप में हैं। साथ ही प्रविष्टियों के बीच रिक्त स्थान भी कम है। विश्वकोश स्थायी महत्त्व के होते हैं, किन्तु प्रस्तुत विश्वकोश की जिल्द इतनी सामान्य है कि बहुत जल्द वह फटने लगती है।

अंत में इतना और जोड़ देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि उपर्युक्त कमियों के बावजूद प्रस्तुत हिन्दी विश्वकोश ने हिन्दी में उपयुक्त और प्रामाणिक विश्वकोश की एक अच्छी आधारशिला रखी है जिसके लिए संपादक तथा टिप्पणी

लेखक दोनो ही हिदी ससार की ओर स बधाई क पात्र है। हम आशा करनी चाहिए कि आगामी सस्करणो म इसम अपेक्षित सुधार होत जायग और अतत यह विश्वकोश भी उस ऊँचाई को प्राप्त कर सकेगा जो विश्वकोशो क लिए काम्य होती है। यह जानकर हम आश्चर्य नही होना चाहिए कि ब्रिटेनिका अमरिकाना चैम्बर्स तथा सोवियत आदि सुप्रसिद्ध विश्वकोश भी अभी तक पूर्णत त्रुटिरहित नही है यद्यपि उनके पीछे सुदीर्घ परपरा है। ऐसी स्थिति म हिदी विश्वकोश की कमियो के निवारण क लिए यत्नशील तो हम होना है किंतु उनस निराश होन का कोई कारण नही।

